

**DUE DATE SLIP****GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj )

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DTATE	SIGNATURE

# अरुणरामायण

# अरुणरामायण

पोद्दार रामावतार ग्रहण



सहानुभूति :

प्रधानमंत्री भोमती इन्दिरा गांधी, श्रीसरयनारायण सिंह, राज्यपाल, मध्यप्रदेश-  
स्व० आचार्य रामलोकनरथ, आचार्य पं. विरबनाथ प्रसाद मिश्र, आ. मेजर आर. पी-  
पादार स्व श्री बी. एम. सिंघी

★

प्रकाशक \* किरणकुल प्रकाशन, समस्तीपुर (बिहार, भारत)

(C) पोदार रामावतार अरण

आचार्य-शिल्पी नृपेन राय

मुद्रक केदारनाथ, एम. ए, वैदनाथ प्रेस, पन्ना-४

प्रकाशन वर्ष १९७३ ई०

मानस-चतुश्शताब्दिमहोत्सव

बिहार सरकार के सहयोग से प्रकाशित

मूल्य : बीस रुपये

पन्द्रह रुपये

ARUN RAMAYAN

BY : Poddar Ramavatar Arun



बाह्यकार

## निवेदन

यदि सुश्रुण पूर्वैरिति जहति रामस्य चरित  
गुणैरेताषड्भिर्नजंगति पुनरन्यो जयति कः ।

—मुरारि

(अर्थात्, पूर्ण के कवियों ने रामचरित्र को जूठा कर दिया है, यदि इसलिए अर्धोचीन कवि रामचरित को अपनी रचना का आवार बनाना छोड़ दें, तो यह बतलाए कि इतने गुणों से युक्त विषय में कौन ऐसा चरित्र है, जिसको अपनी रचना का विषय बनाया जाय ।)

भारतवर्ष ही नहीं, ससार के अनेक देश आदिकवि मर्त्यि वाल्मीकि की रामायण के श्रेणी हैं। अपनी कालजयी कृति के माध्यम से महाकवि ने उदात्त मानव-चरित्र और भारतीय सभ्यता का जो आदर्श उपस्थित किया, वह आज भी जन-जीवन के लिए प्रेरणादायक है। सस्कृत के उस आदि महाकाव्य ने देश और विदेश के काव्यकारों को इतना अधिक प्रभावित किया कि समय-भ्रम पर अनेकानेक भाषाओं में रामकथा की मौखिक रचनाएँ होती रही। भारतीय सभ्यता और सस्कृति पर अभी भी रामायण का व्यापक प्रभाव है। महारवि कबन की रामायण समित भाषा की प्रतिनिधि रचना है। गोस्वामी तुलसीदास का विश्व विख्यात 'रामचरितमानस' तो असंख्य जनता का कण्ठहार ही है। पूर्ण विकसित अवधी भाषा में लिखी गई वह रामकथा अपने आप में अद्भुत शक्ति से सम्पन्न है। उसके समान पवित्र काव्यप्रथ कदाचित् दूसरा नहीं लिखा गया।

खड़ी बोली (हिन्दी) में भी राम-काव्य की अनेक रचनाएँ हुईं जिनमें स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' प्रमुख है। सचमुच वाल्मीकि की रामकथा में इतनी काव्यात्मक शक्ति है कि उसके प्रायः सभी पात्र बालानुसार अपने आप को प्रकट कर नवीन चेतनाएँ प्रदान करते रहे हैं। 'हरि अनन्त, हरि-कथा अनन्ता'—वह कर स्वयं सत तुलसीदास ने भी यही सारस्वत संकेत दिया है।

तीस वर्षों तक अनवरत काव्य-लेखन के पश्चात् मेरे प्रौढवय कवि ने यह अनुभव किया कि 'देश-काल के अनुरूप हिन्दी (खड़ी बोली) में भी सम्पूर्ण रामायण की रचना की जा सकती है। इस घोर वैज्ञानिक और अनास्था के युग में भी रामकथा के माध्यम से भारत अपना सांस्कृतिक संदेश सुना सकता है। यद्यपि रामायण का कथा-क्षेत्र मूलतः भारतवर्ष ही है, फिर भी विश्व की प्रमुख विचार-धाराओं को यथासाध्य समाहित किया जा सकता है। वाल्मीकि और तुलसीदास की काव्य-वाणी में भी कालधर्मी ग्रहण-शीलता है। साहित्य का शाश्वत प्रवाह युग के अनुकूल नया मोड़ लेता ही है।'—इस रचना के प्रारम्भ के पूर्व मेरे हृदय और मस्तिष्क में कुछ इसी प्रकार की कल्पनातरंगें उठीं किन्तु रामायण के विशाल पट-विस्तार को देख कर मैं बहुत दिनों तक स्तब्ध रहा। वहाँ वाल्मीकि और तुलसी और वहाँ मैं ! हिमालय के सामने एक साधारण टीला ! हे राम, युगबोध ने मेरे मन-प्राणों में ऐसी प्रेरणा क्यों भर दी ?

'अरण्यरामायण' के अनेक उत्तम स्थल, पूर्ववर्ती महान काव्य-साधकों के कृपा-फल हैं। कुछ स्वतन्त्र कल्पनाएँ और अनुभूत विचार मेरे अपने भी कहे जा सकते हैं किन्तु भाव-भाषा में राम-वाक्यानु रूप प्राजलता कहीं ! लगता है, पूर्व की सिद्ध-प्रसिद्ध कृतियाँ आकाश-ज्योति-सी अवतीर्ण हुईं किन्तु यह रचना नीचे से ऊपर की ओर जाने के लिए लालायित है। कुछ भी है, रामकथा तो है। राष्ट्रभाषा (हिन्दी) की प्रथम सरल सुबोध रामायण तो है। कमल नहीं तो कुमुद ही सही। रामायण के प्रेमी इसे स्नेह-दृष्टि से देखेंगे, ऐसा मेरा आत्म-विश्वास है।

आज वह रावण नहीं किन्तु उसका रावणत्व कहीं नहीं व्याप्त है ? इस रामायण के राम और भरत लोकतंत्र के चारित्रिक उदात्तक और निखिल मानवता के आध्यात्मिक उद्घोषक हैं। सीता क्षति-चेतना की लीला-प्रतीक है। रामकथा के माध्यम से इस काव्य में विश्व-भानव की व्यापक भावना सरलता के साथ अभिव्यक्त हो गई है। कहीं-कहीं भविष्य के चित्र भी इसमें आभासित हैं।

लेकिन, केवल भौतिक आधार से ही राम-कथा रामायण नहीं कहला सकती। नमक के बिना दाल कितनी फीकी लगती है।

१. 'श' का नामकरण बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) के सदस्य विद्वानों ने किया।—हे०

आध्यात्मिकता से रहित राम काव्य मे ज्योति-रस कहाँ ! राम को मात्र पराक्रमी पुरुष मान लेने पर हृदय मे वह पवित्र स्पन्दन कदाचित् सभाव्य नहीं जिसमे अलौकिक रस की आनन्ददायिनी प्राप्ति होनी है। प्रस्तुत रचना मे भी यथासाध्य उस प्राजल परम्परा का मर्यादा-मधुर समावेश हो गया है। ज्ञान, भक्ति और कर्म से भिन्न होकर रामकथा ऊर्वमुखी कैसे हो सकेगी ? वस्तव्य-सजग इस राम-काव्य मे रसमय शील-सौन्दर्य गंगा-प्रवाह-सा अद्युष्ण रहे, इसलिए एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग हो सका है। सामान्य जन भी इसकी भाव-भाषा का रसास्वादन कर सकें, ऐसी लेखन-शैली बनी रही। कही-कही सरलता पर सहज साहित्यिकता का छटा छा गई है, जो काव्य-धर्म के अनुकूल है। रामकथा यद्यपि प्राचीन है फिर भी किंचित् नवीनता के कारण सम्भवतः यह कृति एक टटके फूल के समान प्रतीत हो !

मानस-चतुश्शताब्दिमहोत्सव के ऐतिहासिक अवसर पर इस रामायण की रचना पूरी हुई, यह मेरे लिये एक स्मरणीय घटना है। गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति मेरी यही साहित्यिक श्रद्धाजलि है। मेरे अनेक मित्र और शुभचिन्तक इस रामकाव्य के प्रणयन और प्रकाशन मे मुझे उत्साहित करते रहे। उनके प्रति सादर आभार प्रकट करता हूँ। मेरे चारो सहोदर भ्राताओ ने सब प्रकार से मेरी सेवाएँ कीं। इस जन्म मे मैं इनसे उक्त्य नहीं हो सकता। न जाने किस प्रेरणा से मेरे परमपूज्य स्वर्गीय माता-पिता ने मेरा नाम रामायण रखा था। ईश्वर ने मुझसे रामायण की रचना करवा कर मेरे कवि-जीवन को मानो पावन प्रसाद ही दिया है।

कविनिवास,  
समन्तीपुर (बिहार)

—पोदार रामायणकार अरुण

रामनवमी, बुधवार, ११ अप्रैल, १९७३ ई०



## प्राक्कथन

मानस-धनु जनी के अवसर पर 'अरणरामायण' का प्रकाशन एक अवसरोचित शुभकार्य है। इसे हम तुलसी और उनके मानस के प्रति अरण की रचनात्मक श्रद्धाजलि मान सकते हैं। ऐसी रचनात्मक सारस्वत श्रद्धाजलि अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा श्रद्धा के आत्मबल को, मानो, गीर्वाणवासी द्वारा और भी बाल्यातीत बना देती है। पूरे रामचरित को प्रतिपाद्यानुरोधी छन्द में बोधकर 'अरणरामायण' खड़ी बोली की प्रथम रामायण के रूप में अवतरित हुई है।

'अरणरामायण' की गणना 'चरितकाव्य' की श्रेणी में की जा सकती है, जिसकी परिपाटी छायावादी युग से, भावमूलकता या चित्तवृत्तिमूलकता की प्रधानता के कारण, लगभग धीम हो गई है। इधर जो भी प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य समाहित हुए हैं, वे प्रायः मनस्तत्त्व-प्रधान ही रहे हैं, चरितकाव्य की तरह वर्णन-प्रधान नहीं। चूंकि वर्णन स्थूल विस्तार को जन्म देता है, इसलिए अब कृषित कथा-तत्त्व या किसी प्रसिद्ध कथा के अर्थवान पक्ष-विशेष का ही परिमृदुल निबन्धन कर प्रबन्ध-रचना करना श्रेयस्कर माना जाने लगा है। किन्तु, अरण ने कथा-तत्त्व को गुठली को युगानुगुल छोटा न बनाकर राम की पूरी चरित-कथा को तुलसी के मानस के अनुरूप बाण्डवद्ध रूप में उपस्थित किया है। फलस्वरूप, 'अरणरामायण' के पूर्वार्द्ध में वर्णन की ही समृद्धि है तथा मनस्सात्त्विकता और शैचारिकता का सस्पर्शमुक्त स्तरारोह में मिल पाता है।

कथा-संग्रहण की दृष्टि से यह कह देना अनुचित या अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'अरणरामायण' में रामकथा के प्रस्तास्यद और प्रसिद्ध अंशों के परिहार का कोई सजग प्रयास नहीं है। यद्यपि इसमें कवि ने शसुटा, गकानुर इत्यादि जैसे नये चरित्रों की सृष्टि की है तथा अहल्या-चरित्र के प्रतीकार्य की गाँठ को नये ढंग में खोला है, तथापि कथा-कलन में कवि ने किसी पूर्व-निर्धारित परिच्छेद अथवा चयनशील दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष रूप में काम नहीं लिया है जैसा कि मूल्य-गर्भित कवि-मनीषा अपने विश्व-बोध और चिन्तन-निष्कर्ष के अनुरूप प्रायः किया करती है। इसीलिए 'अरणरामायण' में सीता की अग्निपरीक्षा, गर्भिणी अवस्था में सीता-वनवास और सीता के पाताल-प्रवेश इत्यादि जैसे प्रसंगा का भी समावेश हो गया है, जो निश्चय ही व्याज के वस्तु-निष्ठ मूल्यासन-प्रधान युग में मर्यादा-सुस्योत्तम की चारित्रिक महिमा के विरुद्ध बुद्ध प्रश्न-चिह्न लगा देने हैं। सब पूछिये तो ये प्रसंग रामकथा के प्रसिद्ध अंश

हैं तथा राम और विन्मुक्ता सीता के महत्त्व को घटाने के लिए तथा उनके चरित्र में विकृति या असंगति लाने के लिये परवर्ती लेखकों द्वारा जैन-बौद्ध प्रभाव-काल में रामकथा के साथ जोड़ दिये गये हैं। 'अनामकम जातकम्', 'दशरथ जातकम्', 'पञ्चमचरित्र', गुणाढ्य की 'बृहत्कथा', 'कथासरित्सागर' इत्यादि के अनेक सन्दर्भ इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अरण को रामकथा से सबद्ध प्रसिद्ध चरित्रों तथा स्थानों का अच्छा ज्ञान है और उसने रामकथा को पूरी तरह पचाकर एक हृदयंगम कर इस रामायण की रचना की है।

'अरणरामायण' की विशेषता यह है कि एक पुराने या सनातन कथावृत्त की सीमाओं का निर्वाह करने हुए भी इसमें वर्तमान समय और समकालीन समाज के सन्दर्भ से जुड़ी हुई अनेक सार्थक बातें कही गई हैं, जो अरण को एक युगद्रष्टा 'गणमत्र प्रणेता' कवि सिद्ध करती हैं।

'अरणरामायण' की सार्थकता समकालीन जीवन-प्रसंगा के साथ मुरदत इस रूप में जुड़ती है कि कवि ने रावण को धैर्यात्मिक सम्यता का पक्षधर प्रतीक बना दिया है तथा धैर्यात्मिक और प्रौढयोगिक शक्ति को आत्मुरी शक्ति के रूप में ग्रहण किया है। कवि की मान्यता है कि सभी अमुर नाम्थिक से और नैसर्गिक शक्ति-नियम, अर्थात् 'प्रकृति-तत्र' के हृदय विरवासी थे। 'अरणरामायण' में राम, सीता और रावण को व्यक्ति-विशेष न मानकर मूल्य प्रतीक बनाने की चेष्टा है—

अपने में सीमित नहीं राम, सीता, रावण  
हम तीनों महाकाल के जीवनमय चिन्तन  
सीता ही निर्णायिका विश्व-जीवन-रण की  
है यही विजयिनी ज्योति सजग प्राणी मन की।

(मुन्दर काण्ड, पृष्ठ ८५१)

'विष्णु-सुग्य' राम और अमुर रावण 'डायनेक्टिस आब धैर्य' के दो प्रतीक मूल्य हैं, जो अन्तिम विजय के पूर्व सब स्यभग तुल्यवाक्य प्रतीत होत हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रावण काचन भौतिकता में हीन भोगी जीवन-मूल्य तथा अविशेषी प्रकृति-तत्र में अघट विरनास का प्रतीक है। इसने विपरीत राम कृषि-सत्कृति की मर्यादा, शोक-वस्थापन और पूर्णांग निव-सत्य के प्रतीक हैं। इन दो प्रतीक मूल्यों के द्वन्द्व में सौम्य निर्णायिका शक्ति की प्रतीक सीता है। इसलिए सीता को—निर्णायिका शक्ति की हारने तथा स्वायत्त की अन्त्य और उद्दण्ड चेष्टा रावण की ओर से निरन्तर होती है। रावण को सीता का शक्ति-रहस्य मानूम था। तभी तो 'अरण रामायण' के रावण ने सीता का हरण 'ज्योति-शक्ति' के रूप में किया है और मन्दोदरी से स्पष्ट कहा है—

सीता अब मेरी है, मेरी है—मेरी है  
 मैंने ही शक्ति-कमलिनी की चोरी की है ।

(पृष्ठ ४५०)

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कवि ने रावण को, मुख्यतः, तांत्रिक बना दिया है और उसके योद्धा या राजनैतिक रूप को गौण बना दिया है ।

उपरोक्त प्रतीकात्मक के वितन्वन के लिए अरण ने रावण के 'अशोक वन' को 'तंत्रोद्यान' कहा है और रावण से यह कहलया है कि उसका अनोखवन 'तत्र-रश्मि से रश्मित' है । दूत के रूप में हनुमान के लौटते समय सीता ने भी हनुमान से यही कहा है कि ये रावण की तत्र-सिद्धि-कारा में ध्यानमयी यो-श्री-श्री बन्दिनी हैं । इतना ही नहीं, चूँकि 'अरण रामायण' के रावण का चरित्र तत्र प्रधान है, इसलिए सीता हनुमान को—'रुद्रासित्त व्योम-प्राण' हनुमान को, जिनका बहुत ही समर्थ वर्णन कवि ने किष्किन्धाकाण्ड में किया है, यह बतला देती है कि युद्ध में विजय-श्री की प्राप्ति हेतु राम के लिए दुर्गा-शक्ति की सिद्धि आवश्यक है । इस प्रसंग में लका काण्ड के अन्तर्गत 'अरण-रामायण' में महाशक्ति के लिए प्रयुक्त सम्बोधना और गूढ़ विगोपणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि कवि को शक्ति-साधना से सबद्ध साहित्य का परिपुष्ट ज्ञान है ।

यह भी ध्यातव्य है कि 'अरणरामायण' के राम ने शक्ति-पूजा के सन्दर्भ में दुर्गा और काली—दोना के प्रत्यक्ष ध्यान-रूप में सीता का ही मुख देखा है । इस प्रकार 'अरणरामायण' की सीता अनेक प्रतीक-सन्दर्भों से भरी हुई शक्ति-स्वरूपा बन गई है । एव ही भूमिजा सीता-शक्ति के भिन्न-भिन्न वर्णन विश्व कहीं दुर्गा और काली के रूप में कभी राम के समक्ष तथा कभी रावण के समक्ष विकीर्ण हैं । साराज यह कि 'अरणरामायण' की सीता केवल चिन्मयी भू-चेतना की प्रतीक नहीं, साक्षात् वाद्याशक्ति है ।

अरण ने इस रामायण की रचना में पदमय्या की मसृणता, ध्वनि-सकार-शब्द-कौशल तथा कल्पना-शक्ति की विलास-भंगिमा का पूरा उपयोग किया है । कोमल प्रसंगा, जैसे राम-जानकी के प्रथम दर्शन के सरस प्रसंग में कवि की सुकुमार सगीत-सान्द्र पक्तियाँ तुरत हृदय-द्रुति पैदा करती हैं ।

मुझे विश्वास है कि 'शब्द-तपस्वी' अरण की यह रामायण सहृदय पाठकों द्वारा मानस चतुःघटी ने अवसर पर तुलसी और उनके राम के प्रति अर्पित की गई स्वतात्मक श्रद्धावर्णियों की माला में 'सुमेरु' की तरह स्वीकार की जायगी ।

उद्भूत प्रिया,  
 १७-१-७३  
 पटना-६

—डॉ सुन्दर विमल

निदेशक, विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना ।

## अरुणरामायण

बालकाण्ड	१
अयोध्याकाण्ड	१०१
अरण्यकाण्ड	३२३
कव्चिन्धावाण्ड	४००
सुन्दरकाण्ड	४३४
लंकाकाण्ड	४६८
उत्तरकाण्ड	५६५-६४२

सीता—

परिणीता को

अरुणरामायण

## वालकाण्ड

जय जगतभारती गणपति, जय हे विष्णुप्राण,  
जय जन्मभूमि जननी जय हे भारत महान्  
जय महाहिमालय, महामिन्धु, जय विन्ध्याचल  
जय गंगा-गोदावरी-नर्मदा-यमुना-जल ।  
जय वेद-उपनिषद्-ग्रन्थ-पुराण-काव्य अक्षय  
जय आदि महाकवि वाल्मीकि की जय-जय-जय  
जय सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की चारित्रिक जय  
जय विश्व-चेतनामय भारत की ज्योतिष जय ।  
तप, त्याग, शील, श्रद्धा, समता, ममता की जय  
आमुरी शक्ति पर महाविजय-क्षमता की जय  
ईश्वर-स्वरूप मर्मादा-पुरुषोत्तम की जय  
ईश्वरी-स्वरूपा नारी सर्वोत्तम की जय ।  
जय, जय, जग की जय, मानवता के मग की जय  
सद्धर्म-ध्वज जीवन-वर्तव्य मुभग की जय  
समयानुसार सत्कर्म-आघनाओ की जय  
शाश्वत गुण-गरिमामयी भावनाओ की जय ।  
उज्ज्वल त्रिकालदर्शी आदर्श कथा की जय  
सलग्न विश्व-मंगल मे व्यक्ति-व्यथा की जय  
कल्याणकारिणी काव्य-मतेज सृष्टि की जय  
जनगण-मन-हित प्रेरणा प्रदीप्त सृष्टि की जय ।  
कालानुकूल करणामय मनीषन की जय  
उत्तमान्त चेतना-आप्त उद्बोधन की जय  
जीवन की जय, जीवन की जय, जीवन की जय  
मानवता-मुस्रित व्यापक नव चिन्तन की जय !

भौतिक, आध्यात्मिक गति के शुभ्र मिलन की जय  
 मृत्यानुकूल सचित समस्त माधन की जय  
 आघारित सदाचार पर जो, उस रण की जय  
 आनन्द-निनादित समनामय शासन की जय  
 मानवता की जय ही जीवन की महाविजय  
 पशु-पक्षी-हित भी बने नहीं मानव निर्दय  
 आलोकित शौर्य करे जीवन-नम का विनाश  
 फैले पृथ्वी पर सत्य-मजग उज्ज्वल प्रकाश !  
 उत्प्रेरित करे अतीत कि मुघरे वर्तमान  
 जगमगा उठे इतिहास-ज्योति में प्राण-प्राण  
 चारित्रिक महिमा धारण करे दिव्य-मानव  
 सात्विकता को तज कर न बने वह फिर दानव  
 व्यापक विश्वास-चेतना को नर नजे नहीं,—  
 कर्तव्य-विमुख हो प्रभु को केवल भजे नहीं  
 केवल कर्मों में ही न उलव जाए जीवन,  
 आत्मिक प्रशान्ति के लिए करे नर आराधन  
 अपने को ममले वह भीतर से—बाहर से  
 आत्माभा को भी देखे वह अन्तरतर से !

—वाल्मीकि-कमल पर रख कर पावन तुलसी-दल  
 अर्पित कर कुछ अपना भी, कौन काव्य-विह्वल ?  
 चेष्टा यह अनधिकार किसकी ? वह कौन बाल ?  
 कैसे वह पार करेगा काव्याम्बुधि विशाल ?  
 नास्तिक युग में आस्तिक दुस्साहस यह किसका ?  
 मांसो में कैसे शुचि सौरभ सहसा गमका ?  
 किम काव्य-तपस्या का पुनीत फल मिला आज ?  
 वामना-पक में कैसे पकज खिला आज ?  
 किसकी यह अनुकम्पा कि प्राप्त पावन प्रसाद ?  
 मन ने कैसे कर लिया ग्रहण दिव्यात्मवाद ?  
 उर्मिल उर में विद्या-विवेक की किरण नहीं  
 वैष्णव-विधानमय भक्ति-निष्ठ आचरण नहीं  
 जग का सामान्य ज्ञान भी ज्ञात नहीं मन को  
 हस की शुभ्रता प्राप्त नहीं बक-जीवन को !



जो जंमा, बंसी ही उमकी रमय रचना  
 जंमा रम, बंसी ही हो जाती है रचना  
 मात्स्विकता का मयोग मद्गुणो से सम्भव  
 शुचिता-विहीन होना न हृदय-पूजित अभिनव ।  
 मगगचरण मे वही मित्र-प्रार्थना नही  
 खड और दुष्ट को भी कोई वन्दना नही ।  
 स्वयं ही है मत्रको महदयता का अभाव  
 मन नही जानता है मेना प्रभु । भक्ति-भाव  
 होगा दुराव नो बनना तुम्ही सहारा है ।  
 बन जाना तुम्ही कृपा का मरम किनारा है ।  
 जब तुम्ही महायक होंगे तो सत्र होंगे ही  
 ईश्वर है । तुमसे घडा कौन भू पर मंठी ?  
 मनु ही नहा तो उमका कोई वन्दन क्यों ?  
 मित्र ही मित्र तो फिर वृत्रिम अभिनन्दन क्यों ?  
 दुष्टता किमी ने की न कभी तो क्यों चर्चा ?  
 है उचित कि हो व्यापक जनगण को ही अर्चा  
 ईश्वरमय मारी सृष्टि, दृष्टि यह चिर मुन्दर  
 मागर में उठनी ही रहनी है नित्य लहर  
 जीवन-ममीर मौरभ-ज्ञाके ले आते हैं  
 अम्णोदय मे उड गण मग्नीन हो जाते हैं ।  
 नैव लेते हैं काठे वाद-दल रवि को भी  
 महना पडना है व्यग्य-वाण प्रिय बवि को भी  
 छोटी-सी भूड हुई कि धूल उडने लगती  
 एक ही वान पर तो आँसु मुडने लगती ।  
 पृण्योदय मे ही कटिन काम बन पाता है  
 मन्मग-गम मे हृदय शुद्ध हो जाता है  
 म्वि उठता है मन का पवज पाकर विवेक  
 ज्योति ही ज्योति भर देता है विद्याम एक ।  
 रामायण-रूपक एक नित्य-गीत-प्रकाश  
 डममे अमत्य का पतन, मत्य का शुचि विकाम  
 प्रत्येक पाप जीवन-श्रतीक तम-ज्योति-भरा  
 यह क्या न केवल अपितु विद्व-चेतना-धडा ।

एक ही नृष्टि मे राम और रावण का रण  
 जैसा जिसका मन, वैसा कम और चिन्तन  
 अत्यन्त कठिन है अमृत और विष का मन्थन  
 उद्घाटित करता सत्य पारदर्शी लोचन  
 पाना न महज उर का प्रकाश बौद्धिक बल से  
 मिलता न आत्म की विभा कभी विद्या-छत्र से  
 निर्मल उर-मन्दिर मे जलता है भक्ति-दीप  
 बिखराते हैं जल-मुक्ता पावन नयन-नीप ।  
 गुण और दोष से भरा हुआ सत्तार सकल  
 होते रहते हैं भांति-भांति के बल-बल-छल  
 मानन-विवेक स्थिर रहता हरि-अनुकम्पा से  
 हिल जाना है विश्वाम चतुरना-शका ने ।  
 निर्मल चरित्र-मी ही निर्मल रचना उत्तम  
 कृति वही सदा मुन्दर, न भरे जो मन मे तम  
 धी के टेढे मोदक मे भी उत्कृष्ट स्वाद  
 पावन आनन्द मिटा देता मन का विपाद ।  
 निर्गन्ध पुष्प-सी ज्योतिहीन कल्पित कृतिया  
 मिलती उज्ज्वलता मे सारस्वत शकृतियां  
 पूजा के फूल पवित्र स्वयं हो जाते हैं  
 स्वाती के घन सात्विक दृग मे ही आते हैं ।  
 दो वाक्यों की वन्दना श्रेष्ठ खल-पुस्तक न  
 उत्तम है केवल एक हम माँ-माँ बक मे  
 माँ-माँ कागो मे बोधल क्या छिपने वाली ?  
 झरती है शरद्-काल मे ही तो नेपाली ।  
 प्रत्येक दृष्टि से पावन उज्ज्वल गगा-जल  
 मन को निर्मल कर देती है कविता निर्मल  
 नुरसरि-समान ही राम-वथा का बान्वादन  
 पावन चरित्र-वर्णन सुन, होता मन पावन  
 शुचिता की अमृत-नदी मे सात्विक शद-स्नान  
 उर को उज्ज्वल कर देता है श्रीराम-ध्यान  
 जितनी जिसकी रचि, उतनी आभा मिलनी है  
 ज्योति की कमलिनी प्रेम-चून्त पर खिलती है !

राम की कथा से पावन कोई कथा नहीं  
 इसके पढ़ने में होती मन में व्यथा नहीं  
 यह पाप, ताप, मन्ताप दूर कर देती है  
 राम की कथा उर में प्रकाश भर देती है ।  
 गिर-मिद्ध राम की विश्व-कथा वाणी-विमुग्ध  
 यह कामधेनु का ज्ञान-भक्ति-विज्ञान-दुग्ध  
 यह कल्पवृक्ष-सी इच्छा-रस देने वाली  
 आनन्द-सूणिमा की यह पावन उजियाली  
 भारत के लिए अमृत-जैना यह वाक्य-कला  
 माण्डिकता ही इस रचना का सर्वोत्तम रस  
 प्रत्येक वाक्य में राम-ज्योति का महावेग  
 हर घटना में प्रभु की प्रणम्य लीला विशेष ।  
 आध्यात्मिक-भौतिक शक्तिशाल इसमें द्वारा  
 मुन राम-कथा, फट जाता मन का अधियारा  
 राम के स्पर्श में मरू मुरमरि के समान  
 ही गई अयोध्या प्रभु की पाकर चिर महान

सम्राट् चक्रवर्ती दशरथ का चीयापन  
 उन पुत्र-विहीन अवधपति का चिन्तित जीवन  
 हैं तीन-तीन रानियाँ विन्तु, प्रिय तनय नहीं  
 चिन्ता के तम में किसी सूर्य का उदय नहीं ।  
 रविवदन-वृक्ष में पतझर का आभास व्याप्त  
 विद्वाम और आशा न हुई अबतक समाप्त  
 यज्ञ पर यज्ञ दशम्य बरते ही जाते हैं  
 एतान्न क्षणों में दुग्धी प्राण अनुल्लसते हैं ।  
 छोटी गनी कैंकरी में बँ बह उठने  
 ऐश्वर्य-शीनि पाकर भी है मैं दुग्धी प्रिये ।  
 इस राजभवन में व्यथा एक मूनपन भी  
 छिटकी न अभी तक चन्द्र-छटा मेरे मन की ।  
 होने वाली है चिन्तक-मभा हिमालय पर  
 मुनता है बिन्दु-चक्र की ग्रह-गति अति हिनकर

द्युतिदर्शी ऋषि-मुनि वहाँ पधारंगे निश्चय  
 करने वाले है वे भविष्य-फल का निर्णय  
 अच्छा होता यदि हम भी गिरि पर जा पाते—  
 मेवा-कतंव्य वहाँ भी स्वयम् निभा पाते  
 है मेरी दृष्टि टिकी गंगा के उद्गम पर  
 सुनता हूँ सुधि मे कभी-कभी निर्झर का स्वर !  
 वैदिक मंत्रों का भी सुनता हूँ महोच्चार  
 आती है साम-गान को भी ध्वनि बार-बार  
 सुधि-किरणों में मिटने लगता दुख-अन्धकार  
 लगता कि सुन रहा है अब मैं गिव की पुकार  
 लगता कि कथा कोई कह रहे स्वयं शकर  
 पार्वती बजानी है वीणा उम हिमगिरि पर  
 लगता कि वमन्न मनाना वन में महोल्लास  
 है खडा देववृक्षों के ही मैं आसपास !  
 लगता कि स्वर्ग-अप्सरा बजाती है मृद ग  
 लगता कि उठ रही पर्वत पर सुरभित तरंग  
 कैलासशिखर मुधि में दिखलाई पडता है  
 हिम ही हिम चारों ओर वहाँ पर झरता है ।  
 लगता कि नुदूर अतीत काल का मैं ही मनु  
 तप करते-करते सूख गया है मेरा तनु  
 शतरूपा है मेरी रानी कीसल्या ही  
 कर चुके विष्णु-वरदान प्राप्त हम मनचाही ।  
 सुधि पर सुधि आती-जाती उस अतीत की अश्रु  
 कर रही आज कल्पना पुराण क्षितिज को नव  
 मिट-मिट कर भी प्राचीन ज्योति आ ही जाती  
 उस तट की दिव्य लहर इस तट से टकराती  
 है वर्तमान से जुड़ी भविष्य-अतीत-लहर  
 है चिर अभंग, है चिर अदृष्ट काल की डगर  
 एकात्म-भाव में अथ-इति है आवद्ध सदा  
 सुख में दुख, दुख में सुख, प्रमोद में भी विपदा !  
 सुख के निबु ज में भी दुख की झकार एक  
 दुख में ही सुख-सुधि का कोई उपहार एक

करता है कोई-कोई ही चिनि-अमृत-पान  
 सुनता है कोई-कोई ब्रह्मानन्द-गान  
 ज्ञानेन्द्रिय के दश रथ का मैं भी परिचालक  
 धर्मानुमार ही है मैं यहाँ प्रजा-पालक  
 फिर भी मेर जीवन में सुत का है अभाव  
 है सभी सुखों पर व्याप्त एक दुःख का प्रभाव ।  
 सन्तान प्राप्त करने पर भी दुःख-अन्न नहीं  
 दुःख में निहीन कोई भी हर्ष-जन्म नहीं  
 सुख-दुःख का कालचक्र चलता ही रहता है  
 दुःख को सुख, सुख को दुःख छलता ही रहता है ।  
 इस स्थिति का ज्ञान सुमित्रा रानी को भी है  
 उसका तन-मन मुग्य का ही। मात्र न लोभी है  
 कैंकेयी । तुम भी राग्य-वायं में व्यस्त सदा  
 युवती होकर भी उठा रही तुम सख्य व्यथा ।  
 सत्कर्मों से होना ही है आनन्द प्राप्त  
 सेवा-भावना सुध्दागे मन में मदा व्याप्त  
 रानी । तुम तीनों की तीनों उपकारी हो  
 तुम तीनों दशरथ के उर की फुलवागी हो  
 तुम सभी घमं-मलग्न विन्नु सुत नहीं एक ।  
 मेरे मानस में दुःख की केवल यही रेख  
 यह दुःख मुयको ही नहीं, समस्त प्रजा को भी  
 कैंकेयी । कहता हूँ मैं तुम से बात मही  
 जाना है मुझे हिमाचल पर श्रवि-दर्शन-हित  
 मेरी अदम्य इच्छा की वीणा मुधि-स्रष्टन  
 अग्रिम घटना द्रष्टा मुनि बना दिया बग्ते  
 उनके मुग्य में भविष्य के नग्य-यास्य दारते ।  
 करना पड़ सकता मुझे यज्ञ मुन-त्राप्ति-हेतु  
 तपसी ऋषि ही रच बनते है प्राणात्म-मेतु  
 आध्यात्मिक अब कोई उपाय करना ही है  
 ऋषि-मुनि की महावृथा में दुःख हूना ही है ।

समतल पर जहाँ शुभ्र गंगा की श्वेत धार  
सग्निवट जहाँ शुचि शचीतीर्थ,—वह हरिद्वार,—  
तन-मन को स्नान-ध्यान से किया शुद्ध नृप ने  
मन में प्रशान्ति भर दी एकान्त विष्णु-जप ने ।  
फिर बटे और आगे वे—आगे वे गिरि पर  
उस तपोभूमि पर मिले उन्हें काँशिक मुनिवर  
विनयी भूपति ने किया उन्हें विधिवत् प्रणाम  
बिनना पवित्र वह गंगातट का पुण्य धाम  
ले गए उन्हें ऋषि विश्वामित्र और ऊपर  
जुँची चोटी से दीर्घ पडा हिमगिरि मुन्दर  
दिव्यगई पडा मान्द्य नभ में नूनन तारा  
कर दिया दूर ऋषि ने नृप-मन का अँघियारा  
बोले महर्षि 'ग्रह-योग अतुल लग्ने वाला  
फँस मकता आलोकपुरष नव उजियाला  
आमुरी शक्ति का हो सकता है महानाश  
फँस मकता कोई विशिष्ट मानव प्रकाश  
पर शनि के कारण होंगे उसको विविध कष्ट  
वह ज्योति-वीर कर देगा दनुजों को विनष्ट  
हे दशरथ ! आप करें पुत्रेष्टि-यज्ञ मत्वर  
सभव है, मिले आपको ही वह फट सुन्दर ।  
यज्ञ के लिए अत्र ऋषि वसिष्ठ ने करें बात  
रगता कि आप ही देखेंगे वह विष्णु-प्रात  
निज उर में भर विश्वाम, अयोध्या लौटें अब  
हम दोनों की फिर भेंट न जाने होगी कब ?'

नृप ने सब कार्य किए काँशिक-कथनानुसार  
मिट गया एक दिन उनके दुःख का अन्धकार  
नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष, पावन प्रिय चंद्र मान  
अभिजित मुहूर्त में हुआ अवतरिन वह प्रकाश  
मुन्दर दोपहरी शिव सुगन्ध से भरी-भरी  
भू पर वासन्ती छटा अधिक् निखरी, बिखरी

सरयू की धारा में तरंग-उल्लास आज  
घरनी पर उतरा-उतरा-आ आकाश आज ।  
श्रुति-वीणा की झंकार ममस्त दिशाओं में  
फूल ही फूल मानो आनन्द-लताओं में  
ज्योतिर्मय पुत्र-प्राप्ति में कौमल्या विभोर  
है नहीं रहस्य-प्रदीप्त हृषं का ओर-छोर ।  
माता की गोदी में रोता-आ फूल एक  
ममता के कारण मलिन मधुर मन का विवेक  
गिणु के पाते ही भूल गई जननी मपना  
वात्मल्य-भाव कितना पवित्र—कितना अपना ।  
जननी-अगुलि ने प्रथम अश्रु को उठा किया  
पहला चुम्बन ने गाँठो को गुदगुदा दिया ।  
अधरों की पट्टी हमी मातृ-दय में छाई  
पावन प्रमदना अग-अग में छितराई ।  
अनिशय आनन्द-विभोर आज सुखभय दगरय  
फूल ही फूल में शोभित उनका इच्छा-पथ  
मुन पुत्रजन्म-भवाद, हृदय-वन में शबोर  
हृषं ही हृषं की मन में वामन्ती हिलोर ।  
मादर सूचना वमिष्ठ पुरोहित को मत्वर  
गूँजने लगे प्रिय वाद्यवन्द पर भगल म्बर  
सम्पूर्ण नगर में महोत्सव छा गया नुरत  
दौड़ने लगे हर पथ पर मुन्दर रथ ही रथ  
घर-घर में जन्मोत्सव के गायन मगमम  
हर ओर आज आनन्द-नरगित जय ही जय  
लगना कि पुत्र का जन्म आज सबके घर में,—  
इतनी प्रमदना नर-नारी के अन्तर में ।  
गिणु के सुदिव्य मुख-दर्शन में वमिष्ठ पुरुचिन  
ले स्वर्णवलय-आरती, युवनियां गीत-मुदिन  
जो जिम प्रकार में थी, वंसी ही आई वह,—  
चंती मभीर-मी वार-वार लहराई वह ।  
कंबेयी और मुमिष्ठा की भी गोद भरी  
अनुपम प्रमदता पर प्रमदना फिर गिणरी

अवसर आने पर मुख ही सुख मिलने लगता,—  
 सूखी टहनी पर भी प्रसून खिलने लगता ।  
 अवसर आने पर स्वय फँसती उजियाली,—  
 आता है सूर्य लिए अपनी सुन्दर लाली  
 अवसर आने पर भाग्य गुलाल उडाता है—  
 केसर-कस्तूरी का प्रिय रग पडाता है !  
 वन गए चार पुत्रों के पिता नृपति दशरथ  
 आलोकित हुआ भाग्य से ही रविकुल का पथ  
 सन्तुष्ट किया सबको नरेश ने सब विधि से  
 निकली कनकाभ किरण संचित उनकी निधि से ।  
 ऐसा शुभ अवसर नहो कभी आने वाला  
 लगता कि मिट गया सभी दुग्धों का अँधियाला  
 चलता ही रहा अनेक दिनो तक हर्षोत्सव  
 नव-नव उमग, नव-नव तरग, श्रीडा नव-नव  
 बीते कुछ दिन तो हुआ पुत्र का नामकरण  
 ज्योतिष-निर्णय से आभासित सबका जीवन  
 क्रमश श्रीराम, भगत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न नाम  
 दो द्यामोज्ज्वल, दो म्वर्णोज्ज्वल भ्राता ललाम  
 चारों शिशुओं की किठकारी में भवन ध्वनित  
 कजराली आँसुओं को निहार कर नयन मुदित  
 आती-जाती नारियाँ हिला देती पलना  
 छू देती कभी-कभी मुख से मुख को ललना  
 छितरा जाता है कभी कपोलों पर काजल  
 ओठोंपर कभी हँसी, आँसुओं में जल निर्मल  
 कोमल कर-पग में कभी-कभी विह्वल तरग  
 रोने का भी प्रिय हूँ, हँसने की भी उमग !  
 अगुली घूमने का मधुमय अभ्यास मृदुल  
 मखन-जैसा शिशुवदन बहुत कोमल थुल-थुल  
 सबकी इच्छाएँ देह-कमल चिपवाने की  
 शैशव की बेला हँसने और हँसाने की !  
 रो उठता जब-जब राम, दौडती कँकेयी  
 मुमकाने लगता है गोदी में शिशु स्नेही



आत्मज से भी वह अधिक प्यार उमको करनी  
 कैंकेयी निज चुम्बन से शिशु-दुख को हरती ।  
 शिशु-सहित खड़ी हो जाती वह दर्पण-मम्मूख  
 प्रतिविम्बित छवि को देख उसे मिलता है सुख  
 इस ओर राम, उम ओर भरत—दो नीरवमन्  
 वात्सल्य-भाव में कैंकेयी प्रति दिन विह्वल ।  
 कौसल्या चारों पुत्रों में रम भर देनी—  
 निज चुम्बन से अघणों को उज्ज्वल कर देती  
 गोदी से नहीं उतरता है जन्दी लक्ष्मण  
 राम को देखकर हृषित होता उमका मन ।  
 शत्रुघ्न भरत के निवट म्वय आ जाना है  
 लख राम-भमान भक्त को, वह मुमकाना है  
 पुत्रों की शिशु-लीला विलोक कर नृप विभोर  
 गोदी में लेकर उन्हें, प्राप्त प्रिय सुग अछोर  
 भोजन की वेला चारों के चारों आते  
 अत्र इतने बड़े कि दूध-मात भी बें लाते  
 दधि-मक्खन से हो जाते कभी अघर उज्ज्वल  
 खिल उठते कभी-कभी कमनीय कपोल-कमल ।  
 तीनों माताएँ एक साथ हँस पड़ती हैं  
 भीतर की खिन्नी कभी बाहर भी झरती हैं  
 जननी को निज सुख प्राप्त वात्सल्य-लीलाओं में  
 बातें करती बें बेलि-मग्न ललनाओं से  
 'देखो, कैसे बें ठुमुक-ठुमुक कर चलते हैं,—  
 उठते हैं, गिरते हैं, मानन्द उछरते हैं  
 वज उठनी विविणियाँ-पंजनियाँ मधुर-मधुर  
 मन्तानों से हो गया स्वर्ग ही अन्न पुर ।  
 देखो, वह राम गेद को म्वय पक डता है  
 अपने भाई में कभी नहीं वह लडना है  
 हँसते-हँसते वह गेद भरत को दे देना  
 मिमिया कर लक्ष्मण कर से कन्दुक ले लेना ।'

नैवेद्य उठा कर खा लेना है राम कभी  
 पर, अन्य अनुज करते हैं ऐसा काम नहीं  
 यह देख, राम-माता आश्चर्यचकित होती,  
 वह इस लीला से कभी-कभी चिन्तित होती !  
 पूजा के पहले ही प्रनाद खा लेता क्यों ?—  
 कुछ खाकर फिर दूमरे बन्धु को देता क्यों ?  
 कौमल्या कभी-कभी नैवेद्य छीन लेती  
 जब राम बहुत गेने ढगना नव दे देती !  
 कँकेयी की नामिका पकड़ लेता लक्ष्मण  
 हँसते हैं अधिकाधिक अनुष्ण-भरण उम क्षण  
 उम समय राम कुछ कह उठता है तुतला कर  
 मृगजावक-स छिप-छिप जाते वे इधर-उधर  
 वे कभी सुमिना के मंत्रिकट चले जाते  
 वे कभी बड़ी माता के निकट चले आते  
 रहते वे अधिक किन्तु कँकेयी के मभीप  
 शौनव का श्रीहानन्द उठाते नित महीप  
 राम ने एक दिन नृप का मुकुट उतार दिया  
 तरक्षण ही कँकेयी ने उमे सँवार दिया  
 उम समय भरत ने जननी का कर लिया पकड़  
 कोमल करतल का कितना कोमल प्रिय थप्पड़ !  
 कँकेयी ने सबको मभीप ही बैठाया—  
 निज दामी ने मिष्टान्न वहीं पर मँगवाया  
 प्यारी मन्थरा थाः लेकर आई सम्मुख  
 सुन्दर कृमान् को देख उसे भी मिलता सुख !  
 सबसे पहले राम को खिलाती कँकेयी  
 बाल्मन्य-भाव उनके प्रति है इतना स्नेही  
 यह देख मन्थरा दामी मुँह बिचका देती  
 वह मात्र भरत को निज गोदी में ले लेती  
 लेकिन, दिन बीन गए गोदी में रहने के  
 आ गए दिवस अब प्रिय मुख से कुछ कहने के  
 माना वे स्नान का दूध न अब पीते कुमार  
 जत्र घेनु-दुग्ध ही उनके हिन है मुजा-धार

गोमाले मे भी कभी-कभी वे जाते हैं  
 चारो भाई चारो को दूध पिलाते हैं  
 जब से मुण्डन-सस्कार, तभी से पग बाहर  
 फिर भी पुत्रो को मानाओ मे रहना डर  
 घबडा उठती कौम-या, जब सुत छिप जाना  
 टूटता नही सुत-जननी का महदय नाना  
 किंचित् भी सुत को कष्ट कि आँसो मे वादर  
 माता के लिए पुत्र आजीवन प्रेम-कमल ।  
 मौ-मौ स्वर्गों से जननी-जन्मभूमि पावन  
 घरती-माता के कारण ही विकसित जीवन  
 करते हैं सभी सुपुत्र मानृ-पग का पूजन  
 छूते हैं सभी तनय प्रति दिन शुचि पित्र-चरण  
 यज्ञोपवीत-सस्कार हुआ सम्पन्न भविधि  
 अब मिलने लगी सभी को दैनिक विद्या-निधि  
 लग गई महज ही श्याम-श्वेत की प्रिय जोड़ी  
 पर, नही किमी ने भ्रातृप्रीति अपनी छोड़ी ।  
 जस्व पर राम-उदमण मरबू-नट के पथ पर  
 यशुध्न-भरत भी उमी ओर जाते रथ पर  
 देव कर उन्हें प्रति दिन प्रमत्त जनगण-शोचन  
 कितना मनभावन उनका दैनिक भूमि-भ्रमण ।  
 चारो किशोर के अत्र उर्जस्वित सुन्दर तन  
 तन भिन्न-भिन्न पर, मदा एक ही उनका मन  
 विद्या, विवेक, गुण से आशोकित नित जीवन  
 विनयी अन्तर, विजयी मन, शील-सल्लज्ज नयन  
 सम्पन्न विविध विद्याओं मे उनका मानन  
 मान्दिक आनन्द-निर्गोहिन उर मे उज्ज्वल रम  
 रुधे पर शौर्य-सुशोभित मुन्दर घनुप-वाण  
 आमेष्ट-हेतु वन-पथ पर वांगेचिन प्रयाण  
 जंमा ही शास्त्र-ज्ञान, वंमा ही शस्त्र-ज्ञान  
 दोनो की सहज प्राप्ति से वे अब महाप्राण  
 राम की धनुर्विद्या मे दनरथ स्वय चकित  
 राम की विवेक-विद्या से मुर अत्यन्त मुदित

जन-मन पर राम-प्रभाव, राम की चर्चा नित  
 राम को देख कर कौन नहीं होता पुलकित ?  
 नूतन नूर्योदय से नरयू-धारा पवित्र  
 बिसवीं आँवों में नहीं राम का नौम्य चित्र ?  
 गुण-भूषित उनका नाम अवध में हुआ व्याप्त  
 लगना कि भानु-कुल को तप का फल हुआ प्राप्त  
 मानाएँ मदा प्रसन्न पुत्र-गुण-गरिमा से  
 श्रीराम स्वयं नूर्योदिन अपनी महिमा से ।  
 दरान में ही नयनों में अमृत छलकता है  
 लगता कि ज्याम मुख पर चन्द्रमा चमकता है  
 मानव को ऐसी कान्ति आज तक मिली नहीं  
 भूतल पर ऐसी रूप-कमलिनी बिली नहीं ।  
 उनकी वाणी से अमृत-वाक्य ही झरते हैं  
 भाता है सब को ही, वे जो कुछ करते हैं  
 श्रीराम विद्योर-अवस्था को कर रहे पार  
 पर कौन-न्या करनी शिशु-ना ही उन्हें प्यार  
 नित स्वयं पिलाती वह नुत को गो-दुग्ध घबल  
 नित देखा बग्नी वह उनका प्रिय नयन-कमल  
 माता के नयनों में गधुवर बालक-नमान  
 शैशव-मुग्ध-लीला में खिल टठते मानु-प्राण ।  
 भाता अपनं शिशु को निद्रा में टोती है—  
 नींद में अचानक कभी विहँसती, रोती है  
 माँ की ममता भाता ही अधिक ममल पाती  
 अपनी करणा ज्योतिष करती उर की बाती ।  
 वात्मन्य-प्रेम माता का अनुपम होता है  
 कौमल मन ही उज्ज्वल करुणा को टोना है  
 भ्रातृत्व-भाव में मदा मिले चारों भाई  
 छिटकी-छिटकी ही रहनी उर की अरुणाई  
 रथ से ननिहाल गए कँकेयीमुत उन दिन  
 प्रिय-विद्वुडन से राम के लिए दूभर पल-छिन  
 जागी तीर्योदिन की इच्छा उनके मन में  
 चाहते विचरना वे कुछ दिन ऋषि-मुनि-वन में

पर्यटन-हेतु दे दी आज्ञा नृप ने सहर्षं •  
 विचरे विविधाश्रम मे दशरथमुत एक वर्षं  
 मग मे सुमित्रानन्दन भी सेवक-ममान  
 ऋषि-मुनि मत्सग-लाभ मे रघुवर घमं प्राण  
 आत्मिक विवेक लेकर लौटे मरयू-तट पर  
 हो गया दिव्य से और दिव्यतर अन्नरत्न  
 प्रामाद-द्वार पर दीपो से उनका स्वागत  
 नञ्जित प्रमून-पखुडियो स अन्न पुर-पथ  
 राम ने मन्थु पिता-माता-पदरज पाया  
 पुत्रों के आने पर गृह मे उत्सव छाया  
 उम गत, रात भर कोम-या मो मकी नहीं,—  
 मुत के मुख-दर्शन का अवसर सौ मकी नहीं ।  
 पूछती रही वकैयी मारी रात वात  
 यात्रा-वर्णन सुनते-सुनते हो गया प्रात  
 तीर्थभिप्राय से अवगत हुई सुमित्रा ही  
 माना रघुवर को उमने नव पथ का गही ।  
 बीते कुछ दिन तब प्रकट हुई मन की विरक्ति  
 राम के हृदय मे जाग उठी वैराग्य-शक्ति  
 अन्तर की शुद्ध वामना पर अध्यात्म-किरण  
 विचिंत भी चिंत न विचलित, चञ्चल तनिक न मन  
 मानस मे महाविवेक-ज्ञान, दृग मे प्रकाश  
 अग-जग मे चारों ओर ज्योति का दृश्य-हास  
 ब्रह्ममय समस्त जगत, समतामय जग-जीवन  
 आत्माएँ बरती परमात्मा का आराधन  
 राजसी भाव को हाथ, राम ने त्याग दिया  
 निष्काम महात्मा ने विराग का बरण किया  
 कोसल का भावी नृपति बन रहा मन्यामी  
 उनकी आँसु अब सदा ज्योति-जल की प्यामी ।  
 चिन्तित माताएँ, चिन्तित स्वय अवधपति भी  
 अब रहन-सहन मे गैरिब गति, गैरिब मति भी  
 कोमल शय्या के बदले मे कुन का आसन  
 दुःखमय, दुःखमय—दुःखमय अब कीमन्या का मन ।

राम के विवाह-हेतु चिन्ता दशरथ-मन मे  
 राम ही राम की चिन्ताएँ अब हर क्षण मे  
 एक दिन सभासद से नृप का परिणय-विमर्श  
 वैवाहिक चर्चा से दशरथ को बहुत हर्ष  
 है किस-किस राजा की सुयोग्य कन्या निरूपम ?  
 —मम्प्रति वस, इसी बात का केवल सुखमय क्रम  
 भारत के सारे जनपद की हो रही बात  
 चिन्ता-निमग्न अब दिवस, क्यथा से विद्ध रात !

बैठे थे उस दिन नृप दशरथ सिंहासन पर  
 व्याप्त थी पुत्र-चिन्ताएँ उनके आनन पर  
 महता सुन विश्वामित्र-आगमन, उठे नृपति  
 आ गई उसी क्षण स्वागत-हित चरणों मे गति  
 आए व, सभी सभासद-सग द्वार-मम्मुख  
 पाया नृप ने ऋषि-पद पर झुक कर दर्शन-सुख  
 बैठाया उच्चासन पर कौशिक को सविनय  
 अर्पित कर दिया हृदय को अपना मृदुल हृदय :  
 'ब्रह्मर्षि ! आपका शुभागमन सदैव सुखमय  
 आपकी उपस्थिति जहाँ, वही जय और विजय  
 आपकी कृपा से हुई समय पर वश-वृद्धि  
 आपके चरण-रज मे ही मिलती ऋद्धि-सिद्धि  
 है महातपस्वी ! प्राप्त पुन भुञ्जको प्रसाद  
 दर्शन से ही मिट गया आज मेरा विपाद  
 आ रही याद उस दिन की, गिरि-गगातट की  
 भूलता नहीं हूँ छाया उस मंगल बट की !  
 दृग मे वह तारा, जिमे आपने दिखलाया  
 आपकी कृपा से ही गह मे प्रकाश आया  
 मे जनम-जनम तक ऋणी आपका, हे महान !  
 मे भूल सकूँगा नहीं आपका स्नेह-दान  
 सर्वस्व समर्पण की इच्छा हो रही अभी  
 आपका आगमन होता है प्रभु ! कभी-कभी

चलते जिम ओर आप, उम ओर भाग्य चलता  
 रुकते हैं जहाँ ज्योति-पग, वही दीप जलता ।  
 आपके दिव्य दर्शन से ही मैं पुण्यवान  
 काशी-प्रयाग-गंगा में मानो किया स्नान  
 स्वीकारे दशरथ का वन्दन-पूजन महर्षि ।  
 आनन्दित कृपा-चन्द्र में मागर-मन महर्षि ।  
 आए हों यहाँ आप यदि किसी प्रयोजन से,—  
 तत्पर हूँ सेवा-हनु मदा तन-मन धन से  
 है कुछ भी नहीं अदेय आपके हित मुनिवर ।  
 आपकी किसी भी सेवा के हित मैं तत्पर  
 सार्यक होने दूँ मेरे अग्रिम इम प्रण को  
 हौने दूँ प्रभु । चरितार्थ आज नृप-जीवन को  
 प्रभु । प्रकट करें अपनी सर्वोत्तम अभिलाषा  
 लेंगे मुझसे निश्चय सेवा, ऐसी आशा ।'

मुन कर उदार प्रिय वचन, अधिक गद्गद बौद्धिक  
 उनकी प्रमन्नता से हो उठे मभी पुलकित  
 बोले ऋषि विश्वामित्र 'आप निश्चल राजन् ।  
 हैं जैसे आप, आपका वैसा ही वासन  
 आप पर मदा मुनिवर वशिष्ठ की अनुकम्पा  
 करनी है जन हिन कार्य आपकी राज्य-सभा  
 उम ओर जनक, इम ओर आप हैं धर्मप्राण  
 है अवध और मिथिला-वमुन्धरा अनि महान्  
 नृपश्रेष्ठ । आपके योग्य सदा आपकी बात  
 आपकी अयोध्या में जगमगजग धर्म प्राप्त  
 चारों के चारों पुत्र आपके, सन्य-मजग  
 होंगे उनसे आशुकिन मानवता के मग  
 मेरे आने का निश्चय ही अभिप्राय एव  
 असफ हो गए अनुष्ठित यज्ञोत्सव अनेक  
 कर देते हैं आत्रमण अमुर मजस्य पर  
 हो गया उन्हें अब अहकार अपने बट पर

चाहै तो मैं ही कर सकता उनको विनष्ट  
 पर, क्रोध कर्म तो होगा मुझेको आत्म-कष्ट  
 आया है विघ्न-निवारण के ही लिए वहाँ  
 हे प्रिय नरेन्द्र ! जाता ही मैं अन्यत्र वहाँ ?  
 राम के ममान सुदिव्य पुत्र किमको भू पर ?  
 अनुपम तेजस्वी वही, वही है वीर प्रवर  
 पुरुषोत्तम राम नहीं माघारण नर राजन् !  
 राक्षससमूह मे वही एक कर सकता रण  
 राम ही अमुर शिर का उन्मूलन कर सकता  
 राम ही दनुजनायक से भू पर उड़ सकता  
 कुछ दिन के लिए भौषट् मुझे राम को अब  
 करना है मुझे समष्टि-यज्ञ आश्रम में सब  
 मैं स्वयं करूँगा उसे अमृत-विद्या प्रदान  
 दूँगा भविष्य के लिए उसे मैं शस्त्र ज्ञान  
 दुर्लभ मंत्रों को सिखला दूँगा मैं क्षण में  
 होगा न पराजित कभी राम राक्षस-रण में !  
 रख सकता वही दिव्य घन्वा पर ज्योति-बाण  
 इतना विनमी राम, इतना वह है महान  
 उसकी वीरता धर्म-रथ पर चलने वाली  
 राम ही मिटा सकता अमुरों की अंधियाली  
 यदि आप धर्म रक्षक तो सौंपें प्रिय मुत्त को  
 मेरे रहते होगा न कहीं भी दुख उसको  
 मेरा मिद्धाश्रम शोण और गंगा-समीप  
 कोई भी उसको कष्ट नहीं होगा महीप !  
 वह स्वर्ण-रजत-वालुका-भूमि तप से पावन  
 कर सकता रघुवर वहाँ शक्ति का आराधन  
 मयोग एक मानिए यहाँ मेरा आना  
 शुभ यात्रा से राम को बहुत कुछ है पाना !'

सुन विश्वामित्र-वचन, अवाक् दशरथ कुछ क्षण  
 द्रु द्रुते रहे वे समुचित उत्तर मन-ही-मन



चात्सल्य-भाव के कारण नृप निश्चेष्ट अभी  
 आती है ऐसी कठिन परिस्थिति कभी-कभी ।  
 दीनतापूर्ण बोलें दशरथ : 'हे पूज्यपाद ।  
 मेरे उर में छा गया अभी किंचित् विपाद  
 राजीवनयन प्रिय राम अभी भुकुमार अधिक  
 मोलह वर्षों में भी कम आयु अर्घं विषमिन  
 योग्यता न उममें अभी कि कोई मुद्र कने  
 बोलल कुमार राक्षस से वंमें लड़े-भिटे ?  
 स्वय ही चन्द्रगा में विशाल सेना लेकर  
 राक्षस-विनाश के लिए करूँगा स्वय समर  
 राम तो अभी बालक है,—बालक है मुनिवर ।  
 वह नहीं चला मक्का है कोई शस्त्र प्रखर  
 अनुभव न उसे है प्राप्त किमी ममराक्षण वा  
 वह मात्र अभी आयेटक है वन-उपवन वा ।  
 तीर्थाटन में वह अभी-अभी लौटा ही है  
 चारों पुत्रों में ज्येष्ठ राम अनि स्नेही है  
 मेरे हित प्राणों में भी वह प्यारा महर्षि ।  
 मेरे दृग वा सर्वोत्तम यह तारा महर्षि ।  
 आश्चर्य कि एकाएक व्याप्त उममें विरक्ति  
 कुम्हलाने लगी अचानक उमकी शौर्य-शक्ति  
 असमय उमकी इस म्यनि में मैं भी चिन्तित हूँ  
 चिन्तित ही नहीं, बहुत चिन्तित हूँ—किचिन्तित हूँ  
 ऋषिभ्रंष्टु । आपके शुभागमन से मैं पुलरित  
 लगता कि तप्त चिन्ता-मागर पर चन्द्र उदित  
 यम, वृषा आपकी बनी रहे, वन्दना यही  
 न चले मुझे ही लहने को, प्रायंता यहीं'

सुन कर दशरथ का कथन, कुपित कौशिक तत्क्षण  
 बोले वे सिर को उठा, त्वरित . 'धिक्-धिक् राजन् !  
 क्या वचन उलटना चाह रहे है आप अभी ?  
 क्या सुत विछोह-भय से मन मे सन्ताप अभी ?  
 राम की शक्ति पर सशय स्वय पिता को ही ?  
 हे धर्मात्मा सम्राट् ! आप इतने मोही ?  
 कुलगुरु वसिष्ठ से आप कीजिए परामर्श  
 राम को सीपिए मुझे अयोध्यापति ! सटर्प  
 निश्चय ही यज्ञ-विनाशक दुर्बल असुर नहीं  
 उसके तात्त्विक उत्पातो से आक्रान्त मही  
 उसका वैचारिक अन्धकार हो रहा व्याप्त  
 आप से नहीं होगा ह राजन ! वह ममान्त  
 आसुरी देह मे स्वय तमस्-विज्ञान भरा  
 भूतल पर महाअसुर रावण का बल उभरा  
 उसके तम का पड रहा इधर भी अणु-प्रभाव  
 ऋषियों से भी वह राक्षसपति करता दुराव !  
 रावण अब अधिव माघना मे हो गया मबल  
 हो रहा सिन्धु के आमपाम तम-कोशहल  
 आता है वह अमुरन्द्र हिमालय पर भी अब  
 वह करता है विस्फोट सलिल-स्थल पर जब-जब  
 मैं महौद्देय से आज यहाँ आया राजन् !  
 पर, शक-पक मे फँसा आपका मोही मन  
 पुत्र की शक्ति से स्वय अपरिचित पिता हाय,  
 करना होगा अब मुझे अन्य कोई उपाय  
 अवधेन ! आप सत्वर वसिष्ठ मे करे बात  
 है मोहग्रस्त इस समय आपका पितृगत  
 रघुकुल मे हुआ नहीं है अबतक वचन-भग  
 पर, आज वचन की गंगा मे उलटी तरंग !

कुलगुरु वसिष्ठ मे किया नृपति ने परामर्श  
 सुन कर मारी बातें, बोले मुनिवर महर्ष =

“कीर्तिक का शुभागमन न निरर्थक है भूपति ।  
 व-याण-कामना से सकल्पित उनकी मति  
 उनकी इच्छा का आदर करना परम धर्म  
 प्रज्ञापि जानते मूढम दृष्टि में विद्व मर्म  
 वे जो कहते हैं, वही कीजिए हे राजन् ।  
 परिपूर्ण कीजिए हे ग्धुवशी । अपना प्रण  
 उपकार समय पर कर, वही उपकारी है  
 मित्र जायें जहाँ दो फूट, वही फुटवारी है  
 श्रीराम नहीं हैं कोई माघाग्न कुमार  
 है उनमें अमित शक्ति, है उनमें बल अपार  
 ऋषियों की मज-सुरक्षा उनमें ही सम्भव  
 वे ही समाप्त कर मरने हैं राक्षस का ख  
 मौप दें राम को जाप उन्हें चुपचाप आज  
 कोई भी चिन्ता नहीं करें हे महाराज ।  
 पुत्र-द्वि-यज्ञ-प्रेरणा उन्होंने ही दी थी  
 मृत्यु की अग्र वन्दना उन्होंने ही की थी  
 उनका भी है अधिकार राम पर हे राजन् ।  
 कुछ मौच-ममज्ञ कर ही आए हैं व इम क्षण  
 जो वसी राम में, उस पूर्ण कर देंगे वे  
 राम का देग कर वही में भर लेंगे वे  
 कीर्तिक ऋषि से दिव्याम्ब-शम्भ की मिद्धि प्राप्त  
 उनकी वाणी में विद्व भावना मदा व्याप्त  
 उनके माध्यम में हागा कोई महाकायं  
 उनकी आज्ञा को करें आप ज्ञ निरोधार्य  
 चिन्त, उनमें मैं अभी इमी क्षण मित्र आऊँ  
 उनके समान निर्भीक मुनीन्द्र वही पाऊँ ।  
 गायत्री-द्रष्टा वही तत्त्वदर्शी महान्  
 माग्वन मिद्धि प्राप्त कर वे ही महाप्राण  
 गणमन्त्र-प्रणेता वही, वही ममता-गायक  
 मन्त्रमुच ही विश्वामित्र शान्ति के उन्नायक  
 मा के माध्यम में प्राणामा के दर्शक वे  
 प्रत्येक दृष्टि में मानर के अवपंक वे

कौशिक भारत की आत्मा के जाग्रत स्वरूप  
उनकी इच्छा की पूर्ति करें हे अवध-भूप !

कौशिक-वसिष्ठ का मिलन देव, प्रमुदिन भूपति  
सानन्द समर्पित आज परस्पर चित्त-प्रणति  
द्युतिदर्शी दृग मे आह्लादित भाभा उज्ज्वल  
मिलते ही तो खिल उठा हृदय-आनन्द-वमल !  
आए जब राम हुए कौशिक महत्ता हर्षित  
पद-पूजन के उपरान्त राम ऋषि-स्नेह-नमित  
मुखमण्डल पर वैराग्य विवेक-दीप्त कान्ति  
छवि-दर्शन से ही गांधिपुत्र को मिली शान्ति !  
वीरता-ज्योति देखी कौशिक ने तन-नन मे  
देखा कि राम हैं वंधे नील के बन्धन मे  
ज्ञानेन्द्रिय के रथ पर पुरुषोत्तम का प्रकाश  
देखा कि अरुण अघरो पर अकिन दिव्य हाम  
दोनों ऋषियों ने कहा उन्हें जो कहना था  
कौशिक के संग राम को कुछ दिन रहना था  
वैराग्य वीरता मे परिवर्तित हुआ रहा !  
करबद्ध अयोध्यापति ने तब उस नमय कहा :  
'ब्रह्मर्षि ! राम के संग लक्ष्मण भी जाएगा  
राम के बिना वह यहाँ नहीं रह पाएगा  
हैं पितृ-तुल्य गुरुदेव आप ही इनके अब  
कहलाएंगे ये पुरुष-सिंह लौटेंगे जब !'

नृप-निर्णय सुन, कौसल्या, बँकेयी उदाम  
कुम्हलाए मुख उनके ज्यो दिन मे शनि-प्रकाश  
देखने लगी शैशव के सभी खिलौने के  
सोचने लगी : 'अब कट पाएंगे दिन बँसे ?'  
गिणु की लीला माताएँ नहीं भूल पाती  
मुत के विछोह के समय मौम्य सुधियाँ आती

लगता कि राम अब भी गोदी में मेल रहे  
 नृप-निर्णय के विरुद्ध अब किमको कौन कहे ?  
 कैंकेयी ने कुछ कहा किन्तु विहसे दशरथ  
 देखती व्यथित माना अब केवल ममता-पथ  
 मोलह वपों के पुत्र अभी बालक ही हैं  
 मौप कर उन्हे मुनि को नृप ने गलती की है ।  
 माता से अधिक कठोर पिता का होता उर  
 आजीवन मातृ-हृदय में सुत-हित स्नेह प्रचुर  
 सुधि-मजल अभी तब बाढवाण्ड माता-मन में  
 मिटता बात्मन्य तनिक आत्मज-विवाह-क्षण में ।  
 माता से आशीर्वाद प्राप्त कर राम मुदित  
 कैंकेयी मन-ही-मन कौगिव पर अति शोचिन  
 मव करण-मौन पर, नहीं सुमित्रा मूक-भद्रिन  
 हेमन्त-काल में मरयू का ज्यो ज्ञान्त पुलिन ।  
 पीताम्बरधारी राम महामुनि-मग आज  
 दोनों पुत्रों को देख, मौन अब महाराज  
 पलकों पर दो-दो अश्रु बिन्दु, अघरो पर स्मित  
 चञ्चल लहरो-सी होतं त्रूर काल की गति ।  
 मरयू को राम और लक्ष्मण ने किया नमन  
 भस्मक पर मातृभूमि का चन्द्र लिया रजवण  
 देखा अग्लान अयोध्या को मरयू-नट से  
 उडता-न्हा नीरवण्ड पछी आया वट में  
 चक्र पडे धनुर्धर दोनों बन्ध अभय पथ पर  
 दितलाई पडे मार्ग में विविध दृश्य सुन्दर  
 आते-आते आ गए अधिक वे दूर,—दूर  
 महमा गरजी ताडका महाराक्षनी त्रूर  
 मुनि-आज्ञा में राम ने उमे दाग शर में  
 हो गया अलग क्षण में ही उमका मिर घड से  
 देखा ऋषि ने भी राम-बाण का चमन्वार  
 नयनों के सम्मुख वीर-रूप वह बार-बार  
 मरने की बेला कुटिल ताडका चिन्लाई  
 उसकी कर्कश त्रन्दन-ध्वनि वन में छिनपाई

उठ गया चपल वाताम विन्तु स्थिर हुआ त्वरित  
 उन दिन मुनि विन्वामित्र बहुत ही हुए मुदिन  
 राम की शक्ति-अभिव्यक्ति देव, लोचन प्रफुल्ल  
 नन्मित शिव मुद्रा ब्राह्म विवेकित विष्णु-तुल्य  
 आजान वाहु मे दिव्य वीर्य-चल रे अपार  
 सघानित लक्ष्य-समक्ष न विचित् अन्धकार  
 उर्जस्वित वक्ष-न्वघ, तेजस्वित दृष्टि अभय  
 कटि-पग मे जाग्रत शक्ति शीर्ष मे जय ही जय  
 पूर्णत सयमित्त मनोप्राण तन रक्त-मवल  
 शीरोचित भृकुटि-मध्य निश्चित घारणा घवल  
 उर और बुद्धि सक्न्पित आभा के अधीन  
 सम्कारी राम स्वय ही रणकौशल-प्रवीण  
 निद्धाश्रम मे आ गए सभी आते-आते  
 आए कौशिक अपने रहस्य को बतलाते ।  
 कुछ ही दिन मे दिव्याम्बु-शम्भु-विद्या अपिन  
 प्राप्त कर उसे श्रीराम हुए अतिशय पुलकित  
 गुरु के चरणो पर रख कर अपना ज्योतिर निर,  
 बोले वे 'यज्ञारम्भ करें हे मुनिवर । फिर  
 हम दोनों भाई दिवम-रात पहरा देंगे  
 प्रज्ञा-दृग से अमुरो को हम विलोक गेंगे  
 आपकी कृपा से राक्षस-वध कर देंगे हम  
 होगा न हमे उनके आने पर कोई भ्रम ।'

फिर हुआ यज्ञ का शुभारम्भ विधिपूर्वक अब  
 प्रज्वलित हो गया अग्निकुण्ड मे मन्त्र-प्रणव  
 राम को सुनाई पडे अमुर के वाघव रव  
 विन्नु के नमस्स डर गया स्वतः अमुरो विभव ।  
 फिर भी, मारीच अमुर मेना के संग आया  
 आते ही वह जज्ञा-समान ही लहराया  
 अनि दूर उसे राम के वाण ने फेंक दिया  
 राक्षस मुवाहु का रघुवर ने महार किया

सेनाओं को लक्ष्मण ने नष्ट किया शर से  
 आगीप प्राप्त कर लिया राम ने मुनिवर से  
 गङ्गा में स्नान किया तीनों ने मन्त्र-महित  
 उस दिन ही धनुष-यज्ञ की बातें हुई विदित  
 बोले ऋषि विश्वामित्र 'विदेह जनक योगी  
 भू-स्वामी होकर भी नभ-निधि के वे भोगी  
 निमि-वशी वे सौ-सौ ऋषियों से भी महान्  
 जीवित दर्शन वे स्वयं, स्वयं वे महाप्राण  
 कोई भी अनासक्त नृप उन-मा नहीं कही  
 उनके कारण ही मिथिला की पुण्याभ मही  
 उत्तर में शिवगिरि, दक्षिण में गङ्गा-प्रवाह  
 उस पद्म-भूमि का जानाम्बुधि मचमुच अथाह  
 आध्यात्मिक नृप-गुरु याज्ञवल्क्य हैं वही राम,  
 मिथिला की जैसी भूमि कही है नहीं राम !  
 खेतों में धँसी हरियाली देखी न कही  
 सचमुच ही दस्य-दयामला है वह यज्ञ-मही  
 गोभित वह अनगिन सरिता और सरोवर से  
 उच्चरित वेद की ऋचा नित्य कठम्बर से  
 प्रत्येक खण्ड में सारस्वत साम्राज्य व्याप्त  
 मिथिला को मय प्रकार का गौरव मदा प्राप्त !  
 है धिरी जनक की, पुरी हरिन अमराई से  
 खिलते हैं उर-मरमिज आग्निव अग्णाई में  
 नारी भी पुरपो के समान पण्डिता वहाँ  
 सुन्दर-सुन्दर बालिका शान्ति-मुराभिता वहाँ !  
 विद्या-विनम्रतामय त्रिवेक बितना पावन  
 लगता कि जनकपुर में विनिष्टता-व्यापिन मन  
 हर और सरमता और मधुरता की पुकार  
 बहती है उस भू पर उर की पीयूष-धार  
 उम भू के वासी कपिल, कणाद और गौतम  
 है दस्य-ग्रह के प्रति न कभी जन-मन में भ्रम  
 जीवन-महत्त्व को सभी वहाँ स्वीकार रहे  
 मिथिला ने भी अनेक देविद आधार महे !

हे राम ! वहाँ दुःख पड़ा था एक बार  
 भोगना पड़ा था कष्ट प्रिय प्रजा को अपार  
 बादल की एक बूँद भी भू पर नहीं पड़ी  
 मुरझाने लगी प्रकृति की सुपमा हरीभरी !  
 कुम्हला-कुम्हला कर लगे सूखने विटप-पत्र  
 हो गई व्याप्त भुवमरी भूमि पर यत्र-तत्र  
 नगे-नगे नरु नगी-नी लनिकाएँ  
 सूखी-सूखी-सी कूप-भरोबर मरिताएँ !  
 खेतों की छाती फटी-फटी-सी मभी ओर  
 वर्षों की अनादृष्टि से दारुण दुःख घोर  
 मानव ही नहीं अपिनु पशु-पक्षी व्यथा विकट  
 कष्ट ही कष्ट से चित्त-प्राण चञ्चल-चञ्चल !  
 अन्न के बिना भूतल पर हाहाकार व्याप्त  
 जन-जीवन को अब घामपात भी नहीं प्राप्त !  
 जननी के स्नान में दूध नहीं ! व्याकुल शिशुगण  
 हर ओर मरण, हर ओर मरण, हर ओर मरण !  
 क्रन्दन ही रन्दन, रोदन ही रोदन भू पर  
 दुस्मह विपत्ति से व्याकुल लोचन घन भू पर  
 सूखने लगा मानव-शरीर पीडाओं से  
 छटपटा उठे अब प्राण दुःख-पीडाओं से !  
 नित लगे घुआने मरघट चिता अनल से अब  
 कोलाहल चारों ओर व्यथा-पथ में जब-तब  
 तन की हड्डियाँ दिखाई पड़ने लगीं हाय,  
 मिथिलापति ने भी किए विविध भौतिक उपाय  
 लेकिन अकाल-चण्डिका नाचने लगी और  
 फलहीन वाटिकाओं में केवल शुष्क वौर !  
 जीवन-रक्षा-हित उपयोगी अब वृक्ष-छाल  
 घँस गई वृषक की आँवों, पिचके प्रिया-गात्र !  
 या जहाँ-जहाँ पानी, थी आकुल भीड़ वहाँ  
 थे उजड़ गए गाँव के गाँव भी कहीं-कहीं !  
 अनगिन पशुओं की हुई अकाल मृत्यु भू पर  
 सनाटे से श्रीहीन अनेकों घर सुन्दर



पकस्यल फटने लगे मूर्य-ज्वालाओ मे  
 भागने लगे अब लोग मैकडो गाँवो से  
 जलहीन मछलियां तडप-तडप कर मरी हाय,—  
 मर गई महन्त्रो मेप, महिय, अज, बँल-गाय,  
 अब त्राहि-त्राहि, अब त्राहि-त्राहि, अब कएण रोए  
 भागने लगे परिवार जाह्नवी-तटी-ओर  
 जल जहाँ-जहाँ, जीवन-टरीनिमा बहा-बही  
 बँसा अकाल भूतल पर पहले पडा नदी ।  
 ज्ञानी विदेह ने याज्ञवल्क्य मे की वार्ता  
 की शतानन्द मथी मे व्यक्त अराठ-स्यथा  
 ऋषियो ने भूमि-यज्ञ का रिया गूढ निषंय  
 यज्ञोपरान्त ही मिली जनक को ज्योतिर्जय  
 राजर्षि जोतने लगे घरा को हल लेकर  
 लग गई अचानक एक गडे घट मे ठोकर  
 छुतिदर्शी नृप को तन्क्षण मिर्त, भूमि-रग्या  
 वह जनक-दुलारी सीता स्वय हुई धन्या  
 मीना जब से अवतीर्ण, घरा पर हरियात्री  
 फँगी घर-घर मे सुख-समृद्धि की नव लारी  
 वह शुभदा जनकमृता मीना, श्री के समान  
 जय-ज्योतिमयी जानकी स्वय ही शक्ति-प्राण ।  
 कोमला विशोरी ने मंत्रको कर दिया चपित,—  
 जब गिव-पिनाक को उठा, एक दिन हुई मुदिन  
 धम, वही उठा मयती थी उम धनु को ब्रुमार ।  
 करते हैं उसे जनक पुत्री से अधिक प्यार  
 जब से वह घटना घटी, स्नेह-विस्तार अधिक  
 मीता की गुण-गरिमा मे ऋषि-मुनि भी पुत्ररिन  
 उमकी अनुपम रूपाभा की चर्चा विशेष  
 मीता को पाकर वृषि-भ्रमघ्न निरहृत्-प्रदेश ।  
 ऋतु की निमगं-लीलाएँ नित वृषरानुवृत्  
 मुरभिना शस्य-मजरी, मुग्धघ्न कमल-फूट  
 प्रत्येक आग्रज मे पहेले मे भीठे पद  
 उत्तप्त काल मे भी भरपूर नदी मे जड

जेठ के महीने में भी पोखरियाँ जलमय  
 उस शस्य-शोभिता मिथिला में अब जय ही जय  
 वासन्ती जीवन-लता, शरद्-सम्पन्न हृदय  
 जब से सुलक्षणा मीता प्रकटी, भू सुखमय !  
 ग्रीष्म में जुही-बेली-सुगन्ध से स्वच्छ पवन  
 पावन के प्रथम दिवस से ही अम्बर में घन  
 मिथिला में प्रकृति-शारदा की गोभा अपार  
 उत्फुल्ल काम की मौम्य श्वेतिमा का प्रसार  
 तालाबों में खिलते हैं लाखों लाख कमल  
 हो जानी उन्हें देखकर आँखें स्वयं विमल  
 श्वासों को शुचि कर देता शेफाली-सुवास  
 दिखलाई पड़ता मिथिला में ही शरद्-हास  
 पूजा-प्रसन्न निरहुन की शरद-शक्ति विकसित  
 लगता कि वहाँ पर आत्मतन-वीणा शकृत  
 चौपालों में भी दर्शन-चिन्तन होता है  
 रममय विनोद में भी मन ज्योति सँजोता है  
 वह मदाचार की भूमि, शील-सुरभित भूतल  
 हेमन्ती हरियाली से शीतल जन-हृत्तल  
 पावन प्रसन्नता की चाँदनी चमकती है  
 उर की आध्यात्मिक कलिका स्वतः गमकती है !  
 मधुमाम-मुदित सर्वत्र शिशिर-चेतना व्याप्त  
 ऐश्वर्य-भोग को बोध-विभामित योग प्राप्त  
 घामन्ती चञ्चलता में तात्त्विक ग्रीष्म-अनल  
 पकिल मन को भी मदा स्वयं पकज का बल !  
 सौरभ-मुग्ध में भी श्रुति-प्रवाह की शुभ्र लहर  
 ज्ञान की किरण से अनुशासित आनन्द-डगर  
 करनी मन को सतुलित मुमाघित अनासक्ति  
 मिथिला में ज्ञान-विवेकमयी परिव्याप्त भक्ति  
 स्थितिप्रज राम ! है दर्शनीय राजपि-धरा  
 भारत में सबसे अधिक वहाँ गो-घन विखरा  
 उजली मिट्टी पर हरी-भरी खेती होती  
 उर की आभा को विमल बुद्धि ही तो ढोनी !

आनन्द-ईश्वर-रस में बनना आत्मिक धक्कर  
 ज्ञान ही खोलता है मवंदा मोह-गड्ढर  
 उत्तम खेती, उत्तम विद्या, उद्योग वहाँ  
 करता है प्राप्त मनुष्य भोग में योग वहाँ ।  
 सीता ने जिम दिन शिव-पिनाक को उठा लिया,  
 राजपि जनक ने यह प्रण उम दिन म्रय किया  
 'उससे ही होगा पुत्री सीता का परिणय  
 जो उस पिनाक को तोड, करेगा प्राप्त विजय  
 सीता उमको ही वरमाला पहनाएगी  
 मेरी बेटी वीरत्व विभा कहलाएगी ।'  
 हे राम ! शीघ्र वह धनुष-यज्ञ होने वाला  
 बनती होगी अब वहाँ अभीष्ट यज्ञशाला  
 आमंत्रित उसी जनकपुर में अनगिन नरेश  
 उस शक्ति महोत्सव का महत्त्व मचमुच विशेष  
 आएगा अमुरराज लकापति रावण भी,—  
 कहलाता है जो भू पर महादगानन भी ।  
 इच्छा होती कि तुम्हें ले चलूँ वहाँ रघुवर ।  
 आयोजित धनुषयज्ञ वह सत्र विधि से मुन्दर  
 ऋषि-मुनियो के भी दर्शन हांगे वही प्राप्त  
 होगी ही वहाँ विदेह शक्ति की विभा व्याप्त ।"

मुन कुर गुरु-वचन प्रसन्न राम, लक्ष्मण हृषिण  
 मिथिला-दर्शन के लिए विनोचन लाशायिन  
 कौशिक की इच्छा ही सर्वोपरि राम-हेतु  
 मन-ही-मन बनने लगा दिव्य कल्पना-मेतु  
 द्रष्टा महर्षि ने जान लिया मन का मपना  
 नयनों ने देय लिया नयनों का स्नेह घना ।  
 सीता के सुन्दर स्वयम्बर का आभाम मिश्र  
 विश्वास-वृत्त पर विमग्न धारणा-वद्म मिश्र ।  
 आनन्द-भाव छिपना है नहीं छिपाने में  
 शेनी न शरत् बालों के बर वतलाने से

पटतो भीतर के वाक्य भीतरी आँखें ही  
 छूती हैं प्राणों को प्राणों की पाँखें ही ।  
 उर के रहस्य को उर ही जाना करता है  
 आनन्द-मुमन आनन्द-मार्ग पर झरता है  
 सयोग मिला देता है मित्रों के जालों से ।  
 शिष्यों के संग महामुनि ने प्रस्थान किया  
 चत्वन की बेला मन ने शिवमय ध्यान किया  
 आश्रमवासी भी बहुत दूर तक साथ चले  
 उस मगध मार्ग में ही दिवन्त-प्रदीप जल  
 शोण की दालुका पर भी उनके चरण-चिह्न  
 शोण का पीन जल भी तरयूजल से अभिन्न  
 भावात्मक मरिचा प्रेम-सिन्धु में भिन्न नहीं  
 कोई भी धारा से मानवता खिन्न नहीं ।  
 भारत के सभी भाग में पावन तीर्थस्थान  
 ऋषि-नप के वारण सभी पुण्य-नरिचा महान्  
 हिमगिरि ने सागर तक भारत-भू नित प्रणम्य  
 जो नहा मानता इसे, नहीं वह कभी क्षम्य ।

—मुन विश्वामित्र-कथन, भारतमय हुए राम  
 मानम-पट पर अकित विगात्र भारत ललाम  
 मुन कर ऋषि-मुख से भागीरथी-कथा सुन्दर,  
 राजीवनयन के रोमाचित पुलकित अन्तर  
 मुन विन्ध्याचल-आरोहण-कथा, मुदित रघुवर  
 ऋषि-गुरु अगस्त्य के प्रति श्रीराम नतेज मुखर  
 आए वे गगा-गण्डक के प्रिय मगम पर  
 इस पार मगध, उस पार विगाला भूमि मुघड  
 देव कर राम-लक्ष्मण को, नाविक मत्र-मुख  
 गगा की श्वेन धार जैसे हिम घेनु दुग्ध  
 गण्डक-जल से भी रघुवर ने आचमन किया,—  
 तट के समीप सिक्ता पर कुछ क्षण भ्रमण किया ।  
 चल पडे सभी अब आम्र और कदली-वन में  
 फल-फूल-प्रचुरता देख, हर्ष सबके मन में

आते-आते दिसलाई पड़ी महानगरी  
 उद्यान-मार्ग पर सबकी आंखे हरीमरी  
 लक्ष्मण ने पूछा ऋषि से : 'यह है कौन नगर ?  
 कितनी सुन्दर गृह-श्रेणी, सुन्दर स्वच्छ डगर  
 ऊँचे-ऊँचे प्रासाद घिरे सरिता-जल से  
 उद्यान-सरोवर शोभित अनगिन उत्पल से ।'  
 बोले कौशिक 'हे वत्स ! विद्याला नगरी यह  
 देवी, मिथिला जाने वाली है डगरी वह  
 प्रत्येक दृष्टि से इस जनपद में है समृद्धि  
 धन-धान्य और विद्या-वैभव की यहाँ वृद्धि  
 नर-नारी स्वस्थ और सुन्दर कर्तव्य-सजग  
 रमईं न अभी तब नहीं यहाँ जीवन के मग  
 कर्मनीय कलाओं से जन-मन बौमल-बौमल  
 रसमयता के धारण मानव-स्वभाव शीतल  
 सभ्यता मगध-मिथिला-संस्कृति से मिश्रित है  
 उत्तम कृषि के कारण ही जन-मन पुलकित है  
 वाद के कोप से कभी-कभी अग्नि कष्ट यहाँ  
 अन्यथा विद्याला-सा भू-मुख अन्यत्र कहाँ ?  
 निकलो जल्दी अन्यथा यहाँ रुसना होगा,—  
 श्रद्धा-सत्कार-समक्ष हमें भ्रूकना होगा  
 हम आगे किसी नदी-तट पर रुक जाएँगे  
 गौतम ऋषि का आश्रम न भूल हम पाएँगे ।

मिथिला में रामचन्द्र ने सुगद प्रवेश किया  
 सुधियों ने दो क्षण मन को सट्टा घेर लिया  
 बोले वे : 'गुरवर ! वहाँ जानकी-जन्म-स्थान  
 उस भू की ओर चला जाता अनुमेय ध्यान ।  
 क्या जनकपुरी के ही समीप वह पावन स्थल है  
 हम नहीं देख पाएँगे क्या वह भू निर्मल ?'

—मुन राम-वचन, ऋषि ने अनुकूल, दिया उत्तर  
 पौशिव-वाणी से हुआ प्रफुल्ल राम-अन्तर

आते-आते गौतम-पाथम मे आए सब  
 उस समय तपोवन मे प्रसन्न खग का कलरव  
 चुन गुरु से, शापित ऋषि-पत्नी की करुण कथा,  
 राम के हृदय मे व्याप्त अहल्या-प्राण-व्यथा ।  
 वे आए वहाँ उपेक्षित जहाँ नम्र नारी  
 थी मन्व गई उसके यौवन की फुलवारी  
 पापाण-समान खड़ी थी वह जीवित प्रतिमा  
 थी उनसे बहुत सुदूर क्षमा की शिव महिमा ।  
 नारी अछूत वह शब्दहीन, वह स्नेह-हीन  
 अभिशाप-पक मे फँसी युगो से एक मीन  
 निष्कासित जीवन मे आगा की झलक नहीं  
 खुल पाती किमी नयन के सम्मुख पलक नहीं ।  
 वन-कारा मे ऋषि की दारा वन्दिनी हुई  
 दण्डिता देह अबतक न हाय, चन्दनी हुई ।  
 किनना काला अपराध आर्यरमणी का है  
 उसके हित यह मसार वस्तुतः फीका है ।  
 किनना कठोर अभिशाप दण्ड किनना कठोर  
 भीतर-ही-भीतर मन मे पञ्चात्ताप-रोर  
 दुख का न ओर दुख का न छोर, दुख घोर-घोर  
 सम्पूर्ण देह मे वही नहीं सुख की हिलोर  
 ऐसी पापाणी को अबतक देखा न वही  
 उर्वरा भूमि पर भी ऐसी बजरा मही ?  
 कामना-ज्वार के कारण इतना अन्धकार ?  
 सुनती ही होगी आज मूक मन की पुकार ।

पापाणी ने राम के चरण का किया स्पर्श  
 संप्राप्त हुआ जडमय प्राणो को आत्म-हर्ष  
 राम ने अहल्या का सहृदय उद्धार किया,—  
 उसके अछूत कर से भोजन स्वीकार किया  
 युग पर गौतम-पत्नी को प्रेम-प्रकाश मिला  
 उर के अभिशप्त सरोवर मे मन-कमल खिला !

पाकर करुणामय ज्योति अहल्या मुदित हुई  
 सस्वार-पूर्णमा कमला-तट पर उदित हुई ।  
 विमला नारी ने उस दिन सत्रको किया नमन  
 भाई की लीला रहे देयते प्रिय लक्ष्मण  
 गौतम ने योग-दृष्टि से सहसा किया ध्यान  
 नयनों के सम्मुख राम,—राम का धनुषवाण ।  
 ऋषि से ऋषि की रहस्य-वार्ता उस दिन वन में  
 दर्शन-सुख से सन्तोष प्राप्त सात्त्विक मन में  
 बोले कौशिक . 'हे गौतम ! तप निर्विघ्न नहीं  
 अनहोनी घटना भी घटती है कभी-कभी  
 शिव को भी कामदेव ने बहुत सताया था  
 मेनका-मोह ने मुझे अधिक अकुलाया था  
 कामना-लता को काल-शक्ति देती मरोड़  
 मन ही मन में भर देता है इन्द्रिय-हिलोर  
 मन को विलुप्त कर देने पर भी मन जीवित  
 यद्वापि वसिष्ठ हुए थे मुझ पर भी शोधित  
 हम दोनों में प्रिय कामधेनु-हित हुआ समर  
 देखी यी वीते युग ने तात्त्विक शोध-सुहर  
 यौवना अहल्या में भी दूट गया मयम  
 उन्मुक्त वामना पर घिर ही जाता है तम  
 आपकी उपस्थिति में भार्या विकटा न हुई  
 भीतर की काम-किरण चञ्चल चपला न हुई ।  
 तप इधर अपना और उधर उनका तपना  
 है दोनों का अन्तर-महत्त्व अपना-अपना  
 तप-अनङ आप में इधर, उधर वामाग्नि-ग्राह  
 दोनों की मन्य-चेतना पर था गडा काल ।  
 ज्योती आश्रम में आप हूँ ओझल गौतम,  
 माधरी अहल्या-मन पर छाया चञ्चल तम  
 अवतरित इन्द्र को देग, हुई हृषिक नागी  
 सिल उठी उपेक्षित काम-नुमुम की मृदुबयारी  
 इन्द्रत्व-राग में रणित हुई वह क्षण में ही  
 भर गर्द भावना रोम-रोम में द्रुत देही

सयोग अकारण नहीं किन्तु अनुचित निश्चित  
दोनों ही एक दूसरे से उस क्षण पुलकित ।  
आ गए आप उस क्षण ही । रति-मुख श्रिया भांप  
दे दिया आपने दोनों को ही तुरत आप  
उन पापाणी का आज आत्म-उद्धार हुआ  
पाप के नष्ट होते ही पुण्य-प्रसार हुआ ।  
करता है अभी तरह है गांतम । पुरुष पाप  
पर नागे उसे नहीं दे पानी कभी आप  
महदयता ही दुस्मन पीडा मह लेती है  
चुप रह कर ही करुणा मव कुछ कह देती है ।  
दम्पति की देह-दिव्यता मे मस्कृति पवित्र  
इतिहास सँजोता है उदात्त चेतना-चित्र  
जैसा जिमका अपराध, दण्ड भी वैसा ही  
विश्व मे दण्ड मे अधिक महत्व क्षमा का ही ।  
शापित त्रिषकु का मैं ही कभी महारा था  
उमने ही तपोभूमि पर मुझे पुकारा था  
राम ने अह-या का हार्दिक सत्कार किया  
अवरुद्ध-द्वार को स्नेह-भाव ने गोल दिया ।  
अब आप क्षमा का पुष्प स्वयं रख दें कर मे  
जल रहा धर्म-दीपक अब उसके अन्तर मे  
वह अपने तप से स्वयं आज अतिशय पावन  
हो गया सफल उमकी आत्मा का आराधन ।"

चल पडे राम-लक्ष्मण कौशिक मुनि-मग-मग  
मार्ग के अनेक प्रसंगो मे गंगा-प्रसंग  
सुन कर कठोर तप-कथा महीप भगीरथ की,  
रोचकता बढती गई अधिक यात्रा-पथ की ।  
सीता-अवतरण-स्थान पर वे आ गए अभी  
जाने कयो बहुत प्रसन्न राम इस समय अभी  
पारावत की दो उडती जोड़ी दीख पडी  
मानस-पट पर श्रुत कथा-चित्र-आभा बिखरी



यज्ञस्थल की पवित्र मिट्टी से स्मरण-निलक  
 चितवन में पुण्यारण्य-प्रिय छटा उठी चमक  
 राम की हर्ष-मुद्रा विलोक कर ऋषि प्रसन्न  
 उनके अन्तर्मन-नयन प्रेमयश प्रभाच्छन्न ।  
 हर ओर हरित धरती, हेमन्नी हरियाली  
 वन-प्रान्तर में विन्वरी-भी सूरज की लाली  
 दौड़ती हुई मृगश्रेणी आकर मुड़ी उधर  
 भुण्ड की भुण्ड वह नीलगाय जा रही विधर ?  
 लौट कर वहाँ से आए सब लक्षित पथ पर  
 अमराई ही अमराई, पोसर ही पोसर  
 है खिले कमल ही कमल जगजगत् में मुन्दर  
 चिबनी-उजली तृण-हरित एकपरिया डगर  
 नैसर्गिक फूलों की भुगन्ध से भँह-भँह मन  
 योचता हृदय को प्रिय मिथिला का आकर्षण  
 गाँवों की नर-नरतिकाएँ हाथ हिलाती है  
 मौरभ-हिलोर खुश कर स्वागत कर जाती हैं ।  
 मरमों के स्वर्ण-फल देते हैं आमत्रण  
 आंगे करने लगतीं निमन्त्री पौत्रों से रण  
 चम्पई बदीमा-कुमुम चमकते छप्पर पर  
 बह्नुआ के ध्वेत मुमन में पर्णकुटी मुन्दर  
 पिउरा-झिगुनी के पीत पृष्प कम नही मुघट  
 वाटिका-भुशोभिन, चित्र-ललित हैं मवरे घर  
 शिशु-श्रीडाएँ पीले पुआठ पर जहाँ-तहाँ  
 तर-नघन बेठवन्नी, बँसविट्टी बहुत यहाँ  
 घट-पीपल-पावर के नीचे शास्त्राभ्यास  
 फँला-फँला-सा जन-मन पर पण्डित-प्रकाश  
 झरती है मुग्ध में शीत-शब्द की शोपाली  
 बालाओं के अधरो पर निरुकोड़ी लाली ।  
 धान की धरा पर नोदो-मवई-मरुआ भी  
 दरहर-रुआर के बीच मरीफा-बह्नुआ भी  
 वित्ते भर की गेहूँ की नव हरियाली है  
 अरहर ने अब हरिताभ सफरता पा ली है ।

लटकी-लटकी मिरचाई, लटके-से बैंगन  
 मूली के फूलों पर भी भौरो का गुजन  
 मनभावन कुचुन-नाग पोरों-विचित्रियाँ ग  
 बंसबाड़ी के नमीप जामुन, सौसम ननाउ  
 केले की लाल-लाल कलियाँ खिलखिला रही  
 मिथिला नयनों को दृश्य-नुधा ही पिला रही  
 तालाबों में भी किया राम ने सुखद स्नान,—  
 देखा निशीथ में व्योम-चन्द्रिका का वितान  
 राम को देख कर हृष-मुग्ध नरनारी-गण  
 टिक जाती उनकी मुख-श्री पर युवती-चिनवन  
 दोनों भाई की चन्द्र-बान्नि लहरा उठनी  
 बनिताएँ उन्हें देख कर महमा गा उठनी  
 बज उठती उनके मम्मूख नुधि की प्रिय पिपही  
 हो आता स्मरण दूब-अक्षत से मिठा दही  
 वेदी पर बैठे पाहुन की स्मृति आ जाती  
 नयनों में शुभ ही शुभ की लहर लहराती !  
 कोई तरुणी कहती कि वहाँ में आए वे  
 कोई कहती कि देख कर सखि, मुमकाए वे  
 कहती कोई कि अभी दोनों ही हैं कुमार  
 कोई कहती . चलते हैं दोनों किम प्रकार !  
 सुकुमार देह को देख, प्रकट सुकुमार भाव  
 मन में किञ्चित् भी नहीं काटिमा का प्रभान  
 स्वाभाविक स्पायर्षण की हिठकोर एक  
 पावन जिज्ञासा का पवित्र झपझोर एक !  
 कमनीय भावना की हेमन्ती झीतलना  
 उज्ज्वल फूलों में सुरशिन उन्-जानन्दलता  
 विद्या-विवेक के भू पर अनुभ प्रसंग नहीं  
 निर्मल विदेह में कोई तिमिर-तरंग नहीं !  
 जा रहे जनकपुर हम —उत्तर केवळ उनका  
 इतना ही सुन कर मन पर परिमल का झटका  
 सर्वापित घनुपयज्ञ की बातें छिपी नहीं  
 होने को है अब घन्य शीघ्र जानकी-मही !

रवचाया ऋषि ने रामचन्द्र को गाँवों में  
 बिठवाया उन्हें आम-महुआ की छाहों में  
 पिलवाया उन्हें ईख-रम भी भोजन-बेला  
 जिम ओर राम-लक्ष्मण, उम ओर लगा मेला ।  
 इम धेनु-धरा पर खीर मित्राई नारी ने  
 मौग्ध-मगीत सुनाया प्रिय फुलवारी ने  
 मत्कार किया मिथिला ने नौ तरकारी में  
 प्रिय मात-पान अपनी ही चाडी-झाडी से ।  
 है राम ! अबध में ऐमा दही नहीं मिलता  
 इनना मरोज पृथिवी पर बही नहो खिलता  
 होना है यही मखान, मुगन्धिन धान यहाँ  
 सुनते हैं कभी पधारंगे भगवान यहाँ  
 मिथिलाशामी हम सीधे-सादे हैं कुमार ।  
 हम मदा ग्रहण करने आए हैं सदाचार  
 आश्चर्य कि आप जनकपुर पैदल जाते हैं  
 हम लोगों का श्री प्रेम आप अपनाते हैं ।  
 आजा हो तो हम प्रस्तुत करें बँलगाडी  
 हम करें यहाँ स पहुँचाने की तैयारी ?  
 घोड़े भी हम दे सकते पर, ऋषि भी तों हैं  
 कर सकते हम अर्पित समस्त साधन, जो हैं ।

अनुपम आतिथ्य देत कर चरित । राम-लक्ष्मण  
 बढ़ते ही गए जनकपुर तक गतिशील चरण  
 पय में पुरइन के पत्तों पर मँधिल भोजन  
 पूर्योय प्रान्त का सुना महामुनि से वर्णन  
 मिथिला से आगे राम । अग जनपद मुन्दर  
 गिरि-वन-उपवन-उद्यान उबर भी हैं मनहर  
 गंगा की धारा उम भू पर भी बहती है  
 उद्दाम बया बोगी की, मिनना बहती है ।  
 हैं उपर मगध-भी नाड-वृध तो सुपमाएँ  
 हैं बही-बही चम्पन-वन की भी शोभाएँ

होती है गेहूँ और चने की प्रिय खेती  
 श्रम के अनुसार अन्न-सम्पत्ति घगा देती  
 प्रिय भाषी नर-नारी का कोमलतर म्बभाव  
 जीवन पर बला और विद्या का भी प्रभाव  
 है राम ! बग-भू पर मृदु मानव का निवास  
 उर सग्ल वि जैमे हरित शस्य पर शशिप्रकाश !  
 ताम्बूलित अधरो पर सुमधुर मुम्बान मदा  
 आती प्रति वषं बाह की बहा करण विपदा  
 विद्या-विनोदिनी वनिताएँ सगीतमयी  
 अभ्यागत का सत्कार वहा भी हृदय-जयी !  
 वगीय भूमि स आग कामरूप जनपद  
 वहता है उस भूतल पर ब्रह्मपुत्र प्रिय नद  
 नर से नारी की बहा प्रतिष्ठा वहुन अधिक  
 है वहाँ बगवामी-सा ही जनगण पुङ्कित !  
 विकमित है वहाँ ग्राम-नगरो मे नृन्य-बला  
 वेत्र की भूमि वह तन्त्र-साधना मे सफरा  
 है नीचे ब्रह्मावतं और ऊपर लोहित  
 गिरि-वन-प्रदेश मे व्याघ्र और गज अधिकाधिक  
 थे गए कभी दशरथ किरात के भू पर भी  
 दो-तीन बाघ छडपे थे उनके ऊपर भी  
 गगासागर का मुन्दरवन मचमुच सुन्दर  
 उत्कल के अम्बुधि-तट पर केलि-प्रमत्त लहर  
 है राम ! कालिग कलाकौशल मे भी प्रसिद्ध  
 उसकी विशाल सेना गज-बट मे भी प्रसिद्ध  
 उसके दक्षिणी छोर पर गोदावरी नदी  
 उसके नीचे राक्षसगण की प्रभुता विखरी !  
 बटता जाता लकापति रावण का प्रभाव  
 करना है अमुरो से भारत का अब बचाव  
 राक्षसी सभ्यता ऋपियो को स्वीकार नहीं  
 भारत को कभी अभीष्ट तमस का ज्वार नहा  
 में एक राष्ट्र की करता है कल्पना सबल  
 है गूँज रहा मेरे मन मे गणमत्र विमल

सागर में महाहिमालय तक भारत विद्यालय  
 भुवता स्वदेश के सत्य-चित्र पर नित्य भाल ।  
 मेरे अन्तर्मन में मानव-ममता प्रकाश  
 मेरे दृग में भू एक, एक ही महाकाश  
 हे राम ! जनकपुर के समीप अध आएं हम  
 उस अमराई में वेद-पाठ का चढ़ता क्रम  
 उस ओर पाठशाला में शास्त्र-श्लोक मुस्वरिन  
 पिंजर में शब्द-उच्चरित प्रिय युव लाठ-दृरित  
 करते हैं बालक योगाभ्यास उधर देवों,  
 बालिका उच्च शिक्षा पा रही, उधर देवों  
 है उधर चित्रशाला, संगीतालय भी है  
 उसके समीप ही ज्योतिष-विद्यालय भी है  
 है पाँच-पाँच गाँवों पर मुस्कुराए एक-एक  
 मिषिन्दा का बौद्धिक ध्यमन मदा विद्या-विशेष  
 आओ, हम पगडण्डी में ही अब चले वहाँ,—  
 दिखलाई पड़ती है सुदूर वह धरजा जहाँ  
 उस अमराई के बाद जनक का राजभवन  
 उसके समीप ही फूँगे का विम्बून उपवन  
 उसके सन्निकट अतिथिशालाएँ जहाँ-नहीं  
 आनन्द बहें। पर ध्याप्त, विविध विद्वान जहाँ  
 लगता कि अभी से ही उत्सव का बोझाल  
 देवों, उस राजमार्ग पर भी छाई हृत्बल  
 तरणियाँ बल्लभ भर-भर कर गाती जाती हैं,—  
 यज्ञ के पूर्व ही वे आनन्द मनाती हैं  
 बजते हैं मंगल वाद्य अभी से चोरी पर  
 हे लक्ष्मण ! पुर प्रारम्भ यही में अनि मुन्दर  
 है यही प्रवेश-द्वार पहाड़ा, मुचित्र-मज्जिन  
 पृथ्वी की महिमा मध्य भाग में वेदोद्धृत  
 स्वागतम्-द्वार पर यात्रवन्धन-वाणी अविन  
 हम धनुषयज्ञ में आकर मैं हूँ बहून मुदिन ।  
 देवों, मित्रों हैं सिमे दत्त-मीना सिमरा,—  
 पहनाती है बरमादा सिमे मुदिन बमरा

आए होंगे भारत के राजकुमार सभी  
 होता है ऐसा महामहोत्सव कभी-कभी ।  
 —कहते-कहते दिव्याधु निवृत्त आए दृग से  
 कम्बूरी मुग्ध श्वमित चपचाप जान-मृग ने  
 राम के मीन मुख को देखने लगे लक्ष्मण  
 कह सके उन्हें कुछ नहीं किन्तु नरमिज-लोचन ।  
 आगे मुनि विश्वामित्र और पीछे रघुवर  
 कहने वाले कहते कि युवक किनन मुन्दर —  
 कितने मनहर—कितने मुखवर—कितने प्रियवर  
 दो देवपुत्र आ गए कहा से पृथ्वी पर ?  
 इतने शोभा-मम्पन्न पुरुष भी होते क्या ?  
 ऐसे नररत्नो को भू-भाग सजोते क्या ?  
 देख कर इन्हे अपलक लोचन, आनन्दित मन  
 दर्शन से ही प्रस्फुटित चित्त रोमाचित तन ।  
 उद्यानमयी प्रिय जनकपुरी नव प्राणमयी  
 प्रियदर्शी राजकुमार अतुल सौन्दर्य-जयी  
 ऐश्वर्य सभी फीके लगते इनके मम्मुख ।  
 इनके दर्शन से मिलता केवल मुख ही मुख ।

ठहरे दोनो के मग महर्षि आश्रम मे  
 मुन्दर कुटियो को देख, हर्ष उनके मन मे  
 सुन शुभागमन उनका, मिथिलेश तुरत आए  
 दोनो के आत्म-मिलन से लोचन लहराए ।  
 देन कर राम-लक्ष्मण को चकित जनक सहसा  
 मानो आनन्द-भुवन उनके उर पर वरमा ।  
 परिचय पाते ही खिले और भी खिले प्राण  
 बरबस ही अवधराज दशरथ की ओर ध्यान  
 मन-ही-मन पटचात्ताप कि 'आमरण न वहाँ ।  
 महर्षि-वृषा से दशरथनन्दन आज यहाँ ?  
 मैंने समझा था, छोटे होंगे ये कुमार  
 पर, अहा ! देख कर इन्हे हृदय मे हर्ष-ज्वार ।

आवश्यकता थी नहीं स्वयम्बर रचने की  
 अब न सभावेना अपने प्रण मे वचने की  
 राम को देख कर सीता की ही सुधि आई  
 दुविधा-नरग मेरे दृग मे भी लहराई ।'

जिस क्षण श्रीराम और लक्ष्मण ने किया नमन,  
 उत्फुल्ल प्रात-दातदल-ममान विदेह-ओचन  
 'आए हैं यज्ञ देखने ही दनरथनन्दन'  
 —राजपि जनक विहंसि मुन, विश्वामित्र-वचन  
 'इन दोनों को मैं ही ले आया था घर मे  
 हैं मारे गए अनेक अमुर इनके शर मे  
 इनके कारण ही मेरा यज्ञ सफल राजन ।  
 मेरी इच्छा मे ही इनका यह भूमि-भ्रमण  
 सोचा कि इन्हे भी धनुषयज्ञ दिखला ही दूँ,—  
 अवलोकन जनकपुरी का स्वयं करा ही दूँ  
 दोनों ही राजकुमार शिष्य मेरे सम्प्रति  
 इनके शुभागमन मे मेरे मन की अनुमति ।  
 अतएव शिविर मे नही, कुटी मे ही निवास  
 राजन् । ये यहाँ रहेंगे मेरे आसपास  
 आपके यहाँ तो किसी वस्तु की कमी नही  
 मिथिला-जैसा सत्कार अतिथि का नही कहीं  
 भाते ही मन्त्रके चरण घुले शीतल जल से  
 स्वागत ही स्वागत बात-बात पर हृत्तल मे  
 सम्मान-नरोवर मे अत्र कितना करें म्मान ?  
 जय से आए हम यहाँ, तिले हैं पद्म-प्राण ।'

मुन कर महर्षि के वचन, जनक-मन मुदित-मुदिन  
 दर्शन कर राम-रूप आगेवित दृग पुलकिन  
 इच्छा होती नि भवन मे ही दोनों, ठहरें  
 पर, मुनि-अनुशासन मे प्रज्ञान मन की लहरें ।

नृप के जाने के बाद दृष्टि-चंचल लक्ष्मण  
 जाने क्यों नगर भ्रमण की इच्छा मन-ही-मन  
 राम ने जान ली उनके मन की छिपी बात  
 बोले ऋषि-अनुमति विना अगोभन भ्रमण तात ।  
 विश्राम-बाल में कहा राम ने 'हे मुनिवर ।  
 लगता कि समन्त विदेहपुरी ही है सुन्दर  
 लक्ष्मण के मन में दर्शन की लाज्जा अभी  
 उठती ही उमके उर में इच्छा कभी-कभी ।  
 वह मुझे छोड़ कर भी नो जा सकता न कही  
 सकौची वह इनना कि स्पष्ट बोलना नहीं  
 जाना अनुचित या उचित प्रश्न यह भी तो है  
 कह सकते हैं कुछ गेग कि ये, ये हैं—वो हैं ।'  
 —राम की बात सुन शील-प्रसन्न महर्षि-हृदय  
 बोले 'तुम दोनों नगर देख आओ निर्भय  
 ले जाओ अपने मग-मग ही धनुष-बाण  
 सन्ध्या-वन्दन का रखना केवल तात । ध्यान'

निकले दोनों ही राजकुमार नगर-पथ पर  
 हो गया जनकपुर इनके कारण सुन्दरतर  
 जिनने देखा, देखता रहा वह अनुपम छवि  
 लगता कि सूर्य में चन्द्र, चन्द्र में मोहक रवि ।  
 ऐसे देखा, वैसे देखा, देखा—देखा  
 मिटती न मिटाए प्रतिविम्बित दृग की रेखा  
 वह दयान-श्वेत शोभा नयनों में प्रथम बार  
 अनगिन लोचन के खुले रह गए दृष्टि-द्वार ।  
 नख में शिख तक सुन्दरता का साम्राज्य व्याप्त  
 आलोकपूरप-रचना में विधि-बोगल समाप्त  
 पैदल चलने वाले ये दोनों देव-तुल्य  
 हैं राम । तुम्हारे प्रियदर्शन का नहीं मूल्य ।  
 ओ अवघ-निवामी । पैदल ही आए हो क्या ?  
 ओ राजकुमारो । रथ न यहाँ लाए हो क्या ?



अच्छा ही हुआ कि रथ पर तुम इस समय नहीं  
 उम पर होते तो रहते क्या तुम अभी यहीं ?  
 अश्व के चरण बढ़ते जाते आग मत्वर  
 सचमुच तुम कितने दयावान हो हे रघुवर !  
 अतुलित मुख की मणिकान्ति छिटवनी नहनी है  
 आँखें आँखों को जाने क्या-क्या कहनी है !  
 ओ विष्णुवसनधारी कोमल कोमलविशोर !  
 देख कर तुम्हें मुख का न कहीं है ओर-छोर  
 तुम ही तुम केवल आज प्रमत्त जनकपुर में  
 झकार उठ रही है नवयुवनी-नूपुर में  
 मन्त्रि ! देख-देख, मन्त्रि ! देख-देख, मन्त्रि उन्हे-उन्हे  
 री, देव-रूप के रश्मि-वाण को वीन मह !  
 सीता के योग्य सुपड कर वह श्यामल विशोर  
 जाने दे और निकट उनके, री, छोड़-छोड़  
 आँखें चकोर, आँखें चकोर—आँख चकोर  
 री, छोड़-छोड़ पगरी ! मैं तो दर्शन-विभोर  
 उस अतुल रूप के झोने आते वार-वार  
 आ-आ जल्दी, सीटी पर पग की रथ सँवार !

जिम ओर राम, उम ओर अमृत-आनन्द-ज्वार  
 झनझना उठे मय की माँसो के आज तार  
 छत पर, छज्जे पर, भू पर भीड़ उमड़ जाई,—  
 इतनी धामन्ती उनकी कोमल तरणाई !  
 इतनी तरंग मन में न कभी भी लहगाई  
 दृग-दृग में प्रिय दर्शन-उमग की अगगई  
 श्र गार छोड़ कर दौड़ पड़ी भावुक नागी  
 नयनों के बढ़ते गाँयो पर काजल वागी  
 बिन्दी ललाट पर नहीं, कपोलो पर मन्वर  
 टिकुलियाँ इधर में उधर, चोटियाँ इधर-उधर  
 एक ही काल में नुमका, गलहार मिर पर  
 एक ही हाथ में बाजू, नूपुर-दोभित कर !

जल्दी में भूषण-वसन यहाँ के वहाँ आज  
 इतना तन्मय आनन्द भूमि पर कहाँ आज !  
 जंसी जो थी, वैसी ही वह झाँकने लगी,—  
 झटपट ही खुले झरोखे से ताकने लगी !  
 जानकी योग्य श्रीराम—यही सबका विचार  
 पर, धनुषयज्ञ-प्रण से मन में दुविधान्धकार  
 ये इतने कोमल, किन्तु कठोर पिनाक अधिक  
 ये नहीं कदाचित् कर सकते धनु को खण्डित !  
 मिथिलेश प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकते क्या ?  
 जन-मन चिन्ता को वे न हाथ, हर सकते क्या ?  
 सीता के योग्य राम ही वर—राम ही अहा !  
 —जिम्ने देवा, उमके मन ने वस यही कहा !

आते-आते वे नगर-चाँक पर आए अब  
 उनके आते ही गब्द-मुमन छितराए अब  
 बालक-विशोर की भीड़ अतिथि के सग-सग  
 नर-नारी के तन-मन में प्रिय-दर्शन-उमग !  
 इतने में लकापति रावण का आया रथ  
 भर गया खचाखच जन-समूह से सुन्दर पथ  
 रथ से ही अमुरराज ने दोनों को देखा  
 खिच गई लाल लोचन में विस्मय की रेखा !  
 सागे की मारी भीड़ राम के ही समीप  
 यह देख, अचम्भित लका के शक्ति महीप  
 रूपावर्षण का जाड़ू फैला जन-मन पर !  
 सम्मानित सभी मार्ग पर शुभ्र श्याममुन्दर !  
 चलते-चलते वे चले गए अब बहुत दूर  
 नाचते रहे भावुक दर्शक के मन-मयूर  
 यज्ञम्वल-शोभा निरम्ब, राम-लक्ष्मण हर्षित  
 सुन्दर प्रवन्ध को देख, सभी के नयन चकित  
 राजाजो, राजकुमारों के हित स्वर्णसिन  
 ऋषियों-मुनियों के लिए यथोचित उच्चासन

सुविशाठ यज्ञ-मण्डप सज्जिन मुरपुर-समान  
 जिस ओर दृष्टि जाती, टिक जाता उधर ध्यान  
 लगता कि विश्वकर्मा ने इसे बनाया है  
 लगता कि स्वर्ग-दिलीपी ने इसे सजाया है  
 लगता कि कुन्नेर-बोध से ग्तराशि जाई  
 लगता कि स्वयं लक्ष्मी ने शोभा बिखर गई !  
 इम अतुल्य यज्ञशाला पर सबके लुब्ध नयन  
 देखने लगे अब घूम-घूम कर प्रिय लक्षण  
 मन्निवट शिवालय में भी गए युगल भ्राना  
 द्वार के निकट ही श्रीगणेश मगददाता  
 दोनो भाई ने किया उन्ह बन्दन सविनय  
 कामना यही कि यज्ञ को मिले सफरता-जय  
 सयोग कि भीतर सीता बाहर खर राम  
 है उधर सबी, है मखा इधर लक्ष्मण राम  
 प्रतमयी जानपी का गिरिजा-भूजन ममान  
 ध्यानावस्थिन नयनो मे आभा अभी व्याप्त  
 महमा लौचन उन ओर, जहाँ श्रीराम मुदिन  
 आँवें आँवों को देख-देख कर हुई चक्किन !  
 इतने सुन्दर ? इतनी सुन्दरी ?—सुप्रश्न महन्  
 जानी-पहचानी-भी आभा मे आभा रत  
 दो ही क्षण तो दृग-मिलन कि दोनो मे मयम  
 इतनी दिव्यता कि किंचित नही दृष्टि मे भ्रम !  
 'मीते !'—मम्योघित किया मनी ने अभी दही  
 'हे राम !'—यहा लक्ष्मण ने—'धकर यही बही,—  
 शिवमन्दिर वही ! यही तो शुभ्र शिवानी हैं  
 पूजा करने वाली मीता कन्साणी हैं !  
 चलिए, पहले उन मन्दिर से ही हो आएँ  
 गिरिजा के पहले शिव का ही दर्शन पाएँ  
 जानकी बहुत ही दिव्य और पावन रूपवर !  
 वह रूपविशोरी लक्ष्मी-भी अनुलिन मुन्दर  
 उद्यान यहाँ का बडा मनोरम है भाई !  
 पूरों की सुपमा चारो ओर यही छाई

लगता कि वर्ष भर रहता है श्रुतुराज यहाँ  
 अननय बोयल भी बोल रही है जहाँ-तहाँ  
 मुग्गो की हरी पत्तियाँ उड़ती आती हैं  
 लम्बी छलांग हिरनिचां महपं लगानी है  
 पालतू मोर उड़ने-फिरते हैं उधर-उधर  
 निरगिरी रहा है पद्म-नरोवर भी मुन्दर  
 मुन्दर ही मुन्दर यहाँ-वहाँ — सर्वत्र बन्धु !  
 कितने मुन्दर लगते नरोज के पत्र बन्धु !  
 फूगे के लम्बे नर पर लम्बी लनिवाएँ  
 प्रिय लताकृ ज में निखरी पुष्पिन गोभाएँ  
 वाटिका-बोपि के दोनों ओर कुनुन ही हैं  
 घरे के चारों ओर मुमन के ड्रम ही हैं  
 फूल ही फूल फूल ही फूल फूल ही फूल  
 गमगमा रही पावन पराग की पवन-बूझ  
 चलने-चरने बँने हम यहाँ चले आए  
 उद्यान देख कर उत्तुक लोचन मुनवाए  
 कल प्रातः पूजा-कूट-चयन-हित आएँगे  
 इनसे मन्दर वाटिका वहाँ हम पाएँगे ?  
 लगता कि पुष्प-लक्ष्मी का ही अधिवान यहाँ  
 लगता कि मुगन्धित निवपार्वती-प्रकाश यहाँ  
 लगता कि नारदा की शुभ्राना व्याप्त यहाँ  
 लगता कि हो गया हमें बहुत कुछ प्राप्त यहाँ !  
 चलिए निव-दमन कर आएँ हम इनी नमय  
 निव ही विनष्ट कर देते हैं मन का नशय  
 — यह बात कही थी माता ने ही एक बार  
 निव ही नुन पाते हैं गुद्धात्मा की पुकार !

आए दोनो ही महादेव के अब नम्मख  
 नीता-नमान ही मिला राम को दर्शन-सुख  
 द्वार की ओर ज्योही लोचन, जानकी खड़ी  
 उनको आभा इनकी आभाओं पर दिखरी !

कटि-किकिणि, नूपुर-ध्वनि मे भी वन्दना एक  
 नत नयनो मे अव्यक्त व्यक्त प्रार्थना एक  
 अधरो की अम्णाई पर मन की ऋचा मीन  
 हि जनुपम अतिथि देवता ! तुम हो पुरप वीन ?  
 मर्यादा-बँधी विदेहकुमारी मे हूँ हे !  
 फिर भी नयनो ने नयनो के सुख-भार सहे  
 यह कँमा विधि-भयोग हि परिचयहीन मिलन  
 आवृष्ट कर रहे हो क्या तुम भीता का मन !  
 शिव के मन्दिर मे विष्णु ममान वीन तुम हे !  
 कँमे अनुगामित कण्ठ हृदय की वात कहे ?  
 योग मे भोग करने वाली यह भूमि तात !  
 आकर्षण मे मत भरो नयन मे मुमन-रात !

भीतर श्रीराम, और मीता बाहर इम क्षण  
 है बँधा घमं-बन्धन मे दोनो का चिन्तन  
 दौडती हुई कुछ सन्धियाँ इम क्षण ही आईं  
 देख कर उन्हे जाने क्यों मीता मकुचाई  
 आते ही बोली 'अरी जानकी ! मुन-मुन-मुन  
 जो कहती हूँ, तू उसे हृदय मे गुन-गुन-गुन  
 पूजा करना पीछे, पहरे मुन बात एक  
 लाई है तेरे लिए मधुर मोगात एक  
 यों तो सँकड़ो वीर आए हैं यहाँ मयी !  
 देख कर उन्हे मेरी ये आँखें ककी ककी  
 आया राक्षस-सम्राट् भयकर रावण भी  
 आए हैं बहुत मुमार, अनेकों राजन् भी  
 पर, उनमे दो ऐसे बि अहा ! विनने मुन्दर  
 मुन्दर ही नहीं अगी मीते ! वे वीर-श्रवर  
 वे अमुरो को भी भार भगाने वाले हैं  
 हैं एक माँवले और एक उजियाले हैं !  
 माँवले अहा ! जैसे बि विष्णु-श्रनिभ्य स्वय  
 मुन्दरता मे तो वे भूपो के भूप स्वय

तेरी जोड़ी के योग्य वही हैं वंदेही !  
 इतने मुसीब, इतने हंसमुख, इतने स्नेही,—  
 सखि ! वे ही वे केवल चर्चित इस नगरी में  
 केवल उनकी ही तो बात हर डगरी में  
 जिनने देखा, देखना रहा वस, उनको ही  
 सब की आँखों ने जी भर उनकी पूजा की !  
 नरनारी—सभी विमुग्ध, सभी आह्लादित हैं  
 वृष्टे, वन्दे,—सबके सब अतिशय पुलकित हैं  
 क्या कहें जानकी ! हमने भी देखा उनको  
 कहने दो मुझे,—मुझे कहने दो, तनिक हकी !  
 इस समय यहाँ दूर का कौन सुनने वाला ?  
 उनके प्रकाश ने किया नगर को उजियाला  
 वे जहाँ-जहाँ सखि ! बहो-बहो तो भव्य भीड़  
 कितना मनभावन है उनका सरसिज-शरीर !  
 कितना आकर्षक है उनका व्यक्तित्व मुषड  
 राम ने अधिक कोई भी व्यक्ति नहीं सुन्दर  
 मीते ! पीताम्बरधारी वे कोसलकुमार  
 उनके शशिमुख-दर्शन से उर में अमृत-ज्वार  
 मनमोहक उनका रूप रमीला है सीते !  
 शशि-कान्ति-सदृश उनका मुख नीला है नीते !  
 विद्युत्-मुन्दान प्रमत्त दन्तमुक्ताओं में  
 पीयूष-कृन्तुम खिलते आनन्द-दृताओं में  
 इन नयनों में अब तक उनकी मोहिनी कान्ति  
 मिटती है उनके दर्शन से सुखमयी शान्ति  
 वे नगर-मार्ग से यज्ञम्यल की ओर गए  
 दर्शक के दृग् में वे अपनी छवि छोड़ गए !  
 उस यज्ञभूमि से जाने फिर वे गए किष्कर  
 चितवन-चकुरियाँ उन्हें टूँटती रही उधर  
 जाने दोनों चन्द्रमा किष्कर छिप गए हाय,  
 वापस आने के सिवा और सखि, क्या उपाय !  
 कहने आई थी यही बात—वन, यही बात  
 खिल जाते उनके दर्शन से सानन्द गात

शिव-गौरी में तू माँग राम को ही मीने ।—  
हे मृदुल मँचित्री अनुठ नुन्दरी नवनीने ।"

आश्चर्यचरित हो गई मभी मखियां उम क्षण,—  
शिवमन्दिर में निकले जब राम जोर लक्ष्मण  
सखियों ने उन्हें घेर कर मादर नमन किया  
नयनों से नयनों को गीतचित्र स्नेह दिया ।  
राम को देख कर मीता अनिगम मधुचाई  
मर्यादित आँखें रूप-राग से अकृशाई  
उज्ज्वल प्रभाव में उज्ज्वलना बढ गई और  
शुचिता की सीटी पर आँख चट गई और ।  
बंदेही बनी रही मीना उनके सम्मुख  
तन-मन विभोग, पावर मन्दिर में दर्शन-भुग  
सखियों के बाग्न परिचय-सृष्टि विठे महमा  
हो गई अमह उम क्षण नीरभ-रम की वर्षा ।  
करना ही पडा उन्हें जायोचिन नमस्कार  
पर, छुट न सके दोनों के कोमल कण्ठ-द्वार  
हो गए शब्द अनमर्थ भावमय गरिमा से  
दोनों के दोनों क्षीपित अपनी महिमा में ।  
बाहर की मुद्रा पर भीतर का ही प्रभाव  
बयो हो प्रमदता में प्रमदता का दुगड ?  
अधखिने अधर पर खिली हुई मुग्धान एक  
मुग्धमण्डल पर छाया—छितराया-ना विरार ।  
नयनों में अफिन छदियों पर आभा नन की  
मधुरिमा हृदय में व्याप्त मयमिन जीवन की  
शूँजती हुई कल्पना सिल्लु पावन गु जन  
जैसे श्रीगम, जानकी भी वेंगी रे मन ।  
हम मधुर मित्रन में नहीं माधुरी मादरना  
हिलती-डुलती है नहीं दिव्य वीमार्य-रना  
उज्ज्वल मर्यादा में श्यामत्री उमग नहीं  
मर्यादित मन में अनमय प्रेम-नरग नहीं !

सीता सीता ही बनी रही निज गरिमा से  
 दामिनी नहीं निकली जानन्द-मधुरिमा ने  
 दीपिका नहा जल पाई पूजा के पहले  
 बमनीय कण्ठ से कुमुमित शब्द नहीं निकले ।  
 निकली वह आभा तो कि निकलती है अब भी  
 पिघरी वह करुणा जो कि पिघरती है अब भी  
 उमडा जना ही न्नेह उमटना या जितना  
 घमडा जना ही भाव घमटना या जितना  
 नीता पाषाण नहीं वह प्रीतिविनोरी है  
 बंदेही विद्युत्-नी न चचरा गोरी है  
 ज्योति ने ज्योति को मन ही-मन पहचान लिया  
 दोनो ने एक इन्द्र का छुनि जान लिया ।  
 'हे देवि ! भूल के टिका समा !—बोठ रघुवर,—  
 'देखते-देखते यो तो हम आ गए इधर  
 दूर से शिवालय देख हुए पुलकित लोचन  
 हम हुए घन्य पाकर मगधमय शिव-दर्शन ।  
 हम अनुमति-रहित यहाँ आए, यह अनुचित-मा  
 पर, राजवाटिका दब, हृदय है हृषित-मा  
 देखी न अभी तक ऐसी मुग्धित पुत्रवारी  
 सुरभित है सुरभित इनकी प्रिय क्यागी-क्यारी ।  
 हम केवल धनुषयज्ञ-दर्शन-हित आए हैं,—  
 इसलिए यहाँ तक हम भूल पर आ पाए हैं  
 होती नैर्मागिक उत्सुकता दर्शक-मन मे  
 बढ़ने-बढ़ते आ गए यहाँ हम उपवन में ।  
 अच्छा तो नमस्कार ! अब चलते हैं हम भी  
 होगी हम से अब भूल देवि हे ! नहीं कभी  
 तोड़ी मैंने ही यहाँ नागरिक मर्यादा  
 हे देवि ! अयोध्यावासी मैं सीधामादा !  
 अवसर से पहले ही यज्ञस्थल देख लिया  
 अनुपम रचना को देख, नयन को नृप्त किया  
 पूजा में वाघा आज स्वयं ही दी मैंने  
 शिवमन्दिर में प्रार्थना स्वतः भी की मैंने



सयोग खींच कर ले आना है तन-मन को  
 मौभाग्य मिला देना जीवन से जीवन को  
 हम धनुषयज्ञ-परिणाम देखने को आनुर  
 मियित्रानगरी को देख, बहुत जानन्दित उर ।”

चक्र पड़े राम-लक्ष्मण, सीता देखनी रही  
 अन्तर की स्थिति को झटक किसी को अभी नहीं  
 वे धनुषयज्ञ ही यहाँ देखने आए क्या ?  
 उनके आने पर दुख ही दुख मिठ पाए क्या ?  
 —मारी की मारी मग्नियाँ चिन्तित हुईं अधिक  
 लेखिन सीता के अमृत-नयन सहना सम्मिल  
 यह देख, महेली भी नत्क्षण खिलगिला उठी  
 रूप की वाटिका दीपो-भी झिलमिला उठी ।  
 जगमगा उठी मुन्दरना की सम्मिलित कान्ति  
 मिट गई यदानित् उनके मन की कर्ण भ्रान्ति  
 सीता ने मग्नियों को न आज तक दुख दिया,—  
 नयनों को पुत्रविन कर चिन्ता को दूर किया !  
 उनके आने पर पटा जानकी पर प्रभाव  
 उनके जाने पर पडा जानकी पर प्रभाव  
 होने है सभी प्रभावित आने-जाने पर  
 लगता कि जानकी पहले से भी अब मुन्दर !  
 इसके दृग्-श्रवण से उनकी आभा निश्चय  
 इसके मन में गूँजने लगी है उन्हीं जय  
 उपहार-रामना से उर में आयेन एव  
 उनकी बातों से ही अवगत उनका बिनेह !  
 गिर है ! दो उन्हें प्रणम्या शक्ति कि धनु तोटे  
 दो ऐसा अवसर उन्हें कि मन में मन जोटे  
 मेरी पूजा को गपड़ करो उनके वक्र से  
 अर्पित करनी है अर्घ्य आज नयनोन्पठ मे !  
 उनके शुभाश्रमन का सयोग शुभ उत्तम  
 मेरे नयनों में नहीं व्याप्त है कोई भ्रम

आएँ हैं वे तो सत्कृत होकर जाएँ वे  
जय-विजय प्राप्त कर शक्ति-सफलता पाएँ वे !

शिव की पूजा के बाद पुनः गौरी-पूजन  
ध्यान में मग्न भीता का तन, भीता का मन  
नत भक्त पर अर्पित पार्वती-प्रमत्त-सुमन  
आए मन्दिर में वाजबल्क्य ऋषि भी उस क्षण !  
बैदेही की नग्नता से वे बहूत मुदित  
द्रष्टा दृग् में भवितव्य ज्योति-रवि त्वरित उदित  
भीता के सम्मुख पड़ा उन्होंने स्वन्ति-मन  
उर को उपलब्ध हुआ आशा का आत्म-नग्न !  
प्रिय जनकनन्दिनी ने ऋषि-पद का किया स्पर्श  
आलोकित चित्त को देख हृदय में दिव्य हर्ष  
गिरिजा-मन्दिर से शीटी भीता मन्वी-मग्न  
पथ पर शृंगार-प्रसंगों की रमय तरंग  
'सीते ! तू ने ही उनको वहाँ बुलाया था  
उनके नयनों न रम ही रम छत्राया था  
ये राम बन गम्भीर हमारे आने पर  
झरते थे हृदय-फूल उनके मुमक्षाने पर !  
तू क्यों इतनी डूबी थी लज्जा में उम क्षण ?  
तू क्यों न मिला पाई उनसे कोन-क चितवन ?  
मन्दिर में ही तुम दोनों की हो गई बात  
तेरे लोचन में चमक रही चाँदनी रात !  
हम यही चाहती हैं कि गम ही हो पाहुन  
उम शीलवान कौसलकुमार में गुण ही गुण  
आँखें इतनी ही खुली कि पाँखें उठे नहीं  
बँसी आँखें अवतक न दिखाई पड़ी कहीं !  
सीते ! तू उनकी मुँह में ही इतनी विभोर ?  
क्या तेरा चित्त बना है अवतक भी चकोर ?'  
—ऐनी ही चंचल वातचीत से राह बटी  
बैदेही-भवन-निकट सखियों की भीड़ छँटी !

मिथिलेश जनक औ' याज्ञवल्क्य मे अभी मिलन  
 वार्ता मे मंत्री जनानन्द भी हैं इस क्षण  
 बोले राजर्षि 'पधारे जब से परशुराम  
 उनके विचार मे मटना चिन्तित नगर-ग्राम ।  
 वे कहते हैं, निर-धनु तुडवाना उचित नहीं  
 भजन करन वाला भी कोई नहीं कही  
 हमलिये स्थगित हो धनुषयज्ञ का उत्सव यह  
 मेरे हित जनक-प्रतिज्ञा ही दुस्मद-दुस्मह ।  
 हो यहाँ मनातन विधि न ही मीना-विवाह  
 या हूँ मैं मिथिलापति कोई दूमरी राह  
 शकर-पिताक को कोई तोड नहीं सकता  
 होगी न सुवामित स्वयम्भरा आनन्द-लता ।'  
 हे याज्ञवल्क्य ! मैं प्रण को कंस भग वर ?  
 रेणुकापुत्र अति प्रोद्यत, उनस भला लडू ?  
 महमत हैं विद्यामित्र नहीं उनके मत से  
 उनका विवेक-रस चरता मेरे प्रण-रस से ।  
 शौनिक-रावण-वार्ता भी प्रण अनुकूल हुई  
 शत्रुर्षि । प्रतिज्ञा मे क्या मुझमे भूत हुई ?  
 राम को देश कर वंसे यहुन प्रभावित मैं  
 देखा है जब मे उन्हें, अधिन है पुत्रवित्त मैं  
 लेकिन अपने प्रण को वंसे त्यागूँ महर्षि ।  
 निज धर्मवचन-रस मे कंस भागूँ महर्षि ।  
 भारत के मारे जनपद मे आ गए वीर  
 लग पाई किमी स्वयम्बर मे ऐसी न भीड  
 राष्ट्रीय प्रश्न को टाडूँ मैं कंस भगवन् ।  
 चाहे कर भवें वहन या नहीं, वीरन रक्षण  
 हम धनुषयज्ञ-उत्सव को कंस शन्द कर ?  
 प्रोधी मुनि परशुराम मे हृष हम समय डरे ?  
 उनका यह अनुचित विघ्न अशोभन है इस क्षण  
 निव-द्रोही कभी नहीं है मेरा मुन्दर प्रण

पृथ्वीपुत्री जानकी-योग्य ही उत्तम यह  
क्यों परशुराम के लिए पिनाक-यज्ञ दुम्ह ?

राजपि-भावना शतानन्द ने अनुमोदिन  
दोनों के मन स याज्ञवल्क्य मुनि-मन पुलकित  
बोले वे परशुराम ने मेरी हुई बान  
सत्पुत्रि हो गया है उनका अब अनल-गान !  
वे धनुषयज्ञ तब यही रकने उपवन में  
है अब भी नास्तिक भ्रम उनके शोधित मन में  
इतनी ही उनकी कृपा बहुत है ह राजन् !  
सयमित रहगा परशुराम का शोध-यवन  
वार्ता की बेला कौणिक वहाँ उपस्थित थे  
रेणुकापुत्र पर वे भी किंचित शोधित थे  
शुभ वार्ता का परिणाम अशुभ हो मना नहीं  
शीतल विवेक शोधानल को तो मना नहीं  
सीता को स्वमि-भद्र स मैंने निकल किया  
गिरिजा-मन्दिर में मैंने आर्णोवाह दिया  
उसके मुखमण्डल पर न उदासी थी छाई  
पूजा-प्रभूत लेकर ही तो वह मुसपाई !  
सीता के हे राजपि पिता ! हे योगिराज !  
प्रारम्भ करें बल शुभ मुहूर्त्त में यज्ञ-वाज  
असमय दादल-मा विघ्न हो गया है समाप्त  
अब पहले-जैसा ही उत्तम-जानन्द व्याप्त !  
शुभ कार्यों में कुछ विघ्न और कुछ बाधा भी  
जग-जीवन में अत्यन्त प्रबल होता भावी  
आप तो स्वय ही महामहिम जानी राजन् !  
राजपि नहीं, जानकी-पिता का चिन्तित मन  
पितृत्व-भाव से हृदय आपका अभी भरत  
वात्सल्य-राग-अनुराग मृदुल मन पर बिखरा  
आपने जानकी को निर नूतन स्नेह दिया  
विद्या-विवेक-वाणी से उसको नवल किया !

इस प्रेम-भाव का माक्षी में भी है राजन् !  
 सीता की सेवा में मेरा भी प्रमुदित मन  
 लगता कि क्या होगा मेरी बेटी का ही  
 मेरे लोचन भी पिघला करते वभी-वभी !  
 सीता ने वारम्बार परोसा है भोजन  
 देने आई वह मो-मो वार प्रफुल्ल मुमन  
 शिशु सीता न मेरी गोक्षी में की थोड़ा  
 राजपि ! मुझे भी नां होनी नृपमय पीडा !  
 मेरे आश्रम में जय-जय वह दौड़ी आई,  
 देख कर उमे, मेरी आंखें भी मुसफाई  
 लगता कि स्वयं में भी है उसका पिता नृपति !  
 मेरी भी तो आपकें ममान हृदय की गति  
 उसके जाने पर सूनापन छा जाएगा  
 सुखपर सुधि का दुख मबकी यहाँ मनाएगा  
 आपकी और मेरी ही मुता नहीं सीता  
 सारी मिथिला की पुत्री है वह नवनीता  
 मबकी आँखों में अश्रु बरेंगे हे राजन् !  
 विह्वल महिलाओं का होगा हृदिन प्रन्दन  
 हा ! कर पाएगी बंने विदा उसे गनी  
 उस क्षण वह जाएगा आँखों का मब पानी !  
 उसके वचपन के गीत प्राण में गूँजेंगे  
 सजला मुधियों को करण भाव ही पूजेंगे  
 स्मृति-विद्ध राग को बंसे हम मुन पाएंगे  
 सीता-चिद्रुहम में मय के मय अकृन्नाएंगे !  
 ममता की छाया बड़ी निगयी होनी है  
 मबकी आँखें आँसू निवाड कर रोनी हैं !  
 फटने लगता है हृदय मुता के जाने में  
 अकृन्ना उठने हैं सय उनके अकृन्ने में !  
 राजपि ! न चिन्ता परशुराम की करें जाग  
 बटवमय नहीं हुआ मेरा-उनका मिलाप  
 आपकी प्रतिज्ञा के न विरोधी वे अब है  
 हे जनक ! नहीं विचि भी शोधी वे अब है !

सम्पूर्ण नगर में घनुपयज्ञ की उत्सुकता  
 सब के उर में लहलहा रही आनन्द-रता  
 कोने-कोने में आगन वीरो की चर्चा  
 पर, सबके मन में राम-रूप की ही अर्चा ।  
 जिस समय नदी में करते थे श्रीराम स्नान,  
 आकृष्ट हुआ मुनि परशुराम का उधर ध्यान  
 नयनों में बार-बार उनकी प्रिय आवृत्ति वह  
 चित्त में चमकती-सी देवात्मामय धृति वह ।  
 उस समय गुलाबी गगन उपा के आने पर  
 चल पड़े परशुधर लाली के छा जाने पर  
 वैदिक मंत्रों का किया उन्होंने उच्चारण  
 छिनराए इधर-उधर भी उनके शब्द-मुमन ।  
 अणुदय में श्रीहीन सभी तारे विहीन  
 फँदने लगी नूतन रवि की आभा नवीन  
 झिलमिला रहा आकाश प्रकाश-तरंगों में  
 आलिंगित दृश्य-चेतना नयन-उमंगों में ।  
 निज कुटिया में आए श्रीराम और लक्ष्मण  
 मुनि के समक्ष ही किया इष्ट का आगधन  
 दृग्वुलने पर शिवविहग दिखाई पडा एक  
 आए उड-उड कर उसी समय पड़ी अनेक  
 समचित्त अवनत पर यतानन्द जाए रथ पर  
 वोलें काँशिक से 'कृपा करें अब हे मुनिवर !  
 अब चलें स्वयम्बर-मण्डप में निज निप्य-सहित  
 आ गए वहाँ पर आमन्त्रित जन अधिकाधिक'  
 —प्रेमाग्रह में मुनि विश्वामित्र तुरन्त तन्पर  
 बैठे उनके संग राम और लक्ष्मण रथ पर  
 लगता कि त्रिपि-पिता की दोनों मन्तान आज  
 आ रहा उन्हें भूपति दशरथ का ध्यान आज  
 दोनों पुत्रों की माताओं की मूर्ति आनी  
 मिथिला में आज अयोध्या की स्मृति लहराती

उस रगभूमि पर आते ही दृष्टियाँ मुदित  
 राम को देख कर नर-नारी आनन्द-ध्वनित !  
 आमनित शूर-वीर नृप, राजकुमार चरित  
 राम का आगमन तारो में ज्यों मूर्य उदित  
 दोनो भाई को देख रहा वह रावण भी  
 हँ टिके हुए उनकी छवि पर ऋषि-लोचन भी  
 वीरता-वृक्ष में ज्यों मान्दिव शृ गार-मुमन,—  
 वैसा ही अभी मृगोन्नित गमचन्द्र का तन  
 मोहित नयनों में शान्तिदायिनी कान्ति-रहर  
 उनकी सुन्दरता बल में आज अधिब मुन्दर !  
 दीर्घा से देग रही वंदेही की मग्नियाँ  
 केवल उन पर ही लगी हुई उनकी अग्नियाँ  
 धीते दिन की सुधियाँ ज्वारों-भी आ जाती  
 शिव-मन्दिर की सुपमा मानस पर छितगनी !  
 लगता कि जानकी लना-ओट में शक्ति रही  
 आँखें आँसों का मू-य अभी तब आँसु रही  
 लगता कि दिवाई पडने बाँडे स्वयं चरित  
 सीता उनकी भी आँसों में अवनव अकित !  
 राम का राजकुमार-वेग रामानुक्क  
 विधि से न रूप-रचना में कोई हुई भूठ  
 सौन्दर्य-पुष्प-पद्मटियों में ही देह रचित  
 लग्य उन्हें, मुनयना गनी भी अनि आह ल्यदिन  
 बड जिमने जो कुछ कहा, घरी मावार अभी  
 गदते हैं ऐसा रूप विघ्राता मभी-वभी !  
 लखें लोचन पर सब विरम्बित भुवुटि-धनुष  
 क्या इतना रूपवान भी होता नहीं पुष्प ?  
 धुँ घराडे वालों पर प्रिय टोपी रत्न-जहित  
 कुण्डल में निजल रही रह-रह कर ज्योति-नहित  
 श्रीवा में चरममचक मणि की माठा ज्योनिन  
 भुज वरय विभूषित, पीत वसन में तन शोभित  
 मर न देगा—देगा नव न राम का रूप  
 लगता कि राम ही सर्वोत्तम मौन्दर्य-भूप

बैठायो उन्हें जनक ने अपने ही समीप  
 यह देख, हुए ईर्ष्यालु अनेको नव महीप !  
 कौनिक के अगल-वगल में राम और लक्ष्मण  
 ज्यो तप-नडाग में स्फुटित माधना-पद्म-नुमन !  
 देखते रहे दोनों को ही चुपचाप नभी  
 ऐसा सुन्यमय जवनर मिलता है कभी-कभी !  
 मिथिलापति की आज्ञा में नीना आ पाई  
 सगीतमयी मन्त्रियां ही उन्हें लिए आई  
 देख कर विद्व-श्री की शोभा लोचन अकाम  
 सीता इतनी सुन्दरी रूप टनना ललाम !  
 दिव्याभा देह-चाटिका पर लहराती-नी  
 सुन्दरता उसे देख कर स्वयन् लजानी-नी  
 रच नक नटां जिमको ब्रह्मा, बैसी नीना  
 दृग कँने बहू कि है सचमुच कँमी सीता !  
 राम भी जिसे देखें बैसी वह बँदेही  
 किसमें माहन कि बहे कँमी वह बँदेही  
 चचलना उममें भी पर, वह चचला नहीं  
 मुखरित वह भी पर, वह मुखरा शारदा नहीं !  
 उसमें भी शुभ कामना किन्तु जति गति न वहाँ  
 मन मधुर किन्तु चचला माधवी मति न वहाँ  
 जानकी एक ही है, एक ही रहेगी वह  
 अधिकाधिक चुप रह कर ही बात कहेगी वह !  
 निरपमा जानकी की उपमा कँने नम्भव ?  
 वह शील-शोभिता सुकुमारी मौन्दर्य-प्रणव  
 आते ही उमरी दृष्टि राम पर पटी आज  
 पहले से भी वह अधिक आज में गड़ी आज !  
 मण्डप-पथ में आई वह आत्म-प्रवाश किए  
 वह पृथ्वीपुत्री चमकी जय-विद्वाम किए  
 उमकी रूपाभा देख चकित रादण के दृग  
 उछटा उमके तान्त्रिक मन का मदिगचित मृग !  
 उमके लोचन-दर्पण में ही पूर्णमा आज  
 क्षण भर श्वेतिमा-विमल उमकी लालिमा आज



राम ने निहारा उसे तनिक मुसका कर ही  
देखा उसने भी उनको आँग उठा कर ही !  
मन की यह लीला रहे देखते कुछ ऋषिगण  
देखता रहा शिव के पिनाक को वह रावण  
मथों से छुवर देखा पर, वह मुग्ध-रमोन  
'तोड़ेगा आरिग शिवधनु को रे, यहाँ कौन ?—  
केवल पापाण पिनाक नहीं, वह शक्ति-रूप  
मेरे अतिरिक्त कौन है इतना बली भूप ?'

- रावण मन-ही मन सोच रहा—वह मोच रहा  
सीता के अन्तदृग ने उसमें कुछ न कहा !  
'किस ऋषि का यह पहयन्त्र कि दृष्टि नहीं विवरी ?  
क्यों मेरे मन पर उमकी ज्योति नहीं उतरी ?  
छू सवा नहीं मैं प्राण-रन्मि मे दिव्य देह  
क्या करती है वह शिरी अन्य से पूर्व स्नेह ?  
कहता था कौन कि शिवमन्दिर तरु गया राम  
वह शक्ति-वाटिया होगी ही निद्रचय ललाम
- रावण मन-ही-मन मोच रहा—वह मोच रहा  
सीता के अन्तदृग ने उसमें कुछ न कहा !

प्रतिद्वन्द्वी नृपगण के मन में हलचल अनन्तर  
जिममें जैसा बल, वैसा ही उसमें विवेक  
दृग कभी जाननी-ओर, कभी उस शिवधनु पर  
उड्डलित रह-रह कर मकरे उन के माग  
चिन्ता के धानचक्र में भी क्षत मन के तट  
दुविधा के क्षरझरो में दोग्नि आस्था-वट  
लगता कि पिनाक-प्रदीप्त शक्ति-यात्रा दुर्गम  
आनामित प्रप-छा-मा मन का चिन्तन-वम !  
लोभी नयनों में रूप-तरंग उमगमयों  
मन की विचार-धाराएँ विदिध तन्ममयी  
ऊर्त्रानुगार अपनी-अपनी कल्पना-हर  
आमन पर ही आनन्द-भग्न कुछ वीर प्रवर !

कुछ नृप विनाल नायक निहार कर बहुत मौन  
 धनु-भंग-प्रश्न नो दूर उठाए उसे मौन ?  
 किन कठिन तत्त्व में घना हुआ है शिव-पिनाक ?  
 कटने वाली है आज पुरुष की यहाँ नाक !  
 कायर के मन में कायरता की ही तरंग  
 डूबती नाक-सी भय-शका-बोझिल उमंग  
 कल्पना-वीर की आँवों में आभा अछोर  
 भावकता आज अनेक रंगों से सराबोर  
 इतने में त्रिरुदावली मुनाई चारण ने  
 आकृष्ट किया सबके मन से उच्चारण ने !  
 सबका भाग्य यही कि धनुष जो तोड़ेगा,—  
 सीता में वह वैवाहिक नाना जोड़गा  
 जानरी उसे ही विजयमाल पहनाएगी—  
 जिमकी मर-पिन मुजा मफरता पाएगी  
 है शक्ति-प्रतीक स्वय ही शिव-पिनाक भू पर  
 है आज अभिन वारता स्वय ही प्रदोत्तर !  
 कहलाएगा पिनाक भजक ही विश्व-धीर  
 राजपि प्रतिज्ञा उनी ही है वीर-धीर !  
 मौ-माँ मग्नान-विजय में भी यह कठिन विजय  
 तोटगा वही, किया जिनने छुति-बल मन्त्र !  
 पुण्यो में जो उत्तम, उमने ही जयी शक्ति  
 उत्तम अनुरक्त वही जिममें भाम्बर विरक्ति  
 प्रण जनामक्ति महिमा में आत्म-ध्वनित-मा है  
 हममें विदेह का महायोग मुन्वरित-मा है !  
 शिव-भाषक स्वय जनक अध्यात्मतत्र-ज्ञाता  
 धर्मवत् नदा पूज्या जन-हित पृथ्वीमाता  
 सीता का महान्स्वयम्बर यह सबल्प-विमल  
 रम में भरत यह धनुषयज्ञ है धर्म-सुबल !  
 यह विश्वचक्र-चिह्नन का ही परिणाम एत  
 इस अनुष्ठान में ज्योपित-आकाशित विवेक  
 सीता की जन्मकुण्डली में ग्रह-योग अतुल  
 परिणय-नकल्प स्वय ही शिव आभा-मकुल !

इस महायज्ञ में सबका समतामय स्वागत  
 ज्ञान की मही पर अभिनन्दित हर अन्धागत  
 कोई भी श्रुति यदि हुई, क्षमा हो उमके हित  
 मेवा का अवसर पाकर यह मिलिला पुलकित ।”

सुन बदीजन-धोपणा, मौन नृपगण कुछ क्षण  
 राम के वान में बोले चुपके प्रिय लक्ष्मण  
 'भैया ! यह धनुषयज्ञ मन्त्रमुच मनभावन है  
 प्रण के शब्दों को सुन, हर्षित मेरा मन है ।  
 है दर्शनीय यह धनुभजन-बानुक नवीन  
 देखिए उधर, राजाओं के अब मुन मलीन  
 लगता कि असुरपति रावण कुछ कहने वाला  
 भैया ! उमका मुख लगना है तिनना काटा !  
 वैसे उमकी ही अतुल वेगमया मणिमय  
 चाहता प्राप्त करना वह भी जानरी-विजय  
 देखिए, उधर भी उत्सुन है कुछ नव नृपगण  
 सीता के लिए उछलते है जब मौ-गों मन ।  
 यह रगभूमि कितनी अपूर्व, निानी सुन्दर  
 पद रहे मय उम ओर बंदपाटी मस्वर  
 मगलमय पूर्ण कलन दीपाभा में जगमग  
 मारे के सारे दर्शनगण ही यज्ञ-मजग  
 सर्वत्र सुगन्धित जगरघूम, प्रिय हवन-पवन  
 आध्मात्मिक निष्ठा में निमग्न है मान्विक मन  
 चिप्रित चबूतरे पर शोभित त्रिरघनु सुन्दर  
 आती रह-रह कर नागिषष्ठ में गौर-रहर !  
 मन्त्रमुच ही योग-भोगमय यह निथिता-भूत  
 वन्दनारो में लटके-लटके लग यन्त्र  
 टटकी-टटकी बंदरी, टटके रमा-गन्धव  
 अब बन्द हो गया है प्रशस्ति-वीणा का नव  
 शुभमूचर दही बडाही में छान्ही-इज्जद  
 डडिया में श्वेत मगान, नागियल के भी पद

उम और गुलाबी वनन-विभूषित सब पण्डित  
 सब के ललाट पर लाल-लाल चन्दन लेपित !  
 लगना नि घनुप-भजन के बाद विवाह तुरत  
 वंदेही ने रक्वा ही होगा मंगल व्रत  
 मिथिला में भाग्यनाटियों का ममुराल सरस  
 भैया ! कितना वमनीय आज का पुण्य दिवस !  
 बाहर योग्य पर मंगल वाद्य निनादिन हे  
 भीतर दशकगण पुष्पवृक्ष-ना पुलकित है  
 जाने किन्की सीना में वरमाला पडती  
 कल्पना-पन्वुडी उन्सुर प्राणों पर झरती !

लक्ष्मण की बाल-मुग्ध वाते सुन राम मुदित  
 नून-नून कर उनके मधुर वाक्य, कांशिक हर्षित  
 देखने लगे अब वे रावण की राहु-दृष्टि  
 नव ग्रह में है मम्पन्न जनक नी यज्ञ-मृष्टि !  
 एक ही राशि के दोनों—राम और रावण  
 है तन्त्र-वेदिका पर पिनाक-पुस्तपोचित प्रण  
 गुरु-नृपि की दृष्टि चन्द्र-रवि पर पूर्णत पडी  
 शक्ति-मफल ज्योति आलोकित चित्ति-पथ पर विखरी  
 बोला रावण 'पहले घनु कौन उठाएगा ?  
 मम-ब्रह्माली कैसे विजयी कहलाएगा ?  
 जो घनुप तोड़ दे पहले उमकी प्राप्त सिद्धि  
 पर, पाएगा वह क्या जिममें अति बल-समृद्धि ?  
 अनुमति दें तो पहले मैं ही घनु भग करूँ  
 मैं ही उत्सुक लोचन में विजय-प्रकाश भरूँ !'

—मुन कर रावण का वचन, मभा में कोलाहल  
 उस तर्क-प्रश्न में व्याप्त बुद्धिमय नव हलचल  
 पर, राजाओं ने मानी उसकी बात प्रथम  
 आशक्ति आँखों में उमके प्रति अब भी भ्रम  
 गर्वोन्नत रावण उठा वनक-आसन से अब  
 उमके उठने पर फँला भीतर ख ही ख !

मूँछ पर हाथ देता वह आया वेदी पर  
 देव कर दपं-मुद्रा उमवी, मृग-दृग को डर  
 उमपी लगियाई आँखों में अब शक्ति-अहम्  
 काले-वाले मुख पर आमुगी तन्त्र का तम  
 साँसों को फुला-फुला कर दैहिक बल-सन्धय  
 जय के पहले ही ओटो पर उच्चरित विजय  
 मामरु बक्षम्यरु पर व्यायामित पिण्ड-निखर  
 उजंम्बित लौह भुजाओं में दामिनी-लहर  
 दृग में पिनाक के बदले नीला वी प्रदान्ति  
 भाँतिवता में उत्त्रान्त देह में जात्म-भ्रान्ति  
 उठ भी न रहा वह धनुष ! हँस रहे दर्शनगण  
 मन-ही-मन सब कहते हैं धिक्-धिक्-धिक् गवण !  
 लक्ष्मण के मुँह पर कौशिल ने रग दिया हाथ  
 जय कहा उन्होंने बेबड हि वग्गीर नाथ !  
 हाँफने लगा गवण, श्वेदित हो गया भाल  
 शिव-शक्ति धनुष इतना भारी, इतना बिगाल !  
 झूषता रह गया गवण पर, धनु उठा नहीं  
 उपहास लगा होने दानव था कहीं-कहीं  
 लौटा वह अपने आसन पर लज्जित होकर  
 भभना भीतर से व्यग्य-विकट गानर ठोकर !  
 कुछ क्षण तक धनुष-निषट कोई नृप गया नहीं  
 अब पहले जंभा उममें साहस रहा नहीं  
 रावण भी हार देगवर हुए निराश सभी  
 कुछ ही मन में उठती उमग है कभी-कभी !  
 ललबारा नृप ने ही नृप को निज आसन से  
 आगे बढ़ने की मिली प्रेरणा चिन्तन में  
 टम से मम वह शिव-चाप बिम्बो से हुआ नहीं  
 मय के मारे कुछ लोगो ने तो छुआ नहीं !  
 छूते ही कुछ लोगो की अंगुठि में धक्के  
 कुछ लोग स्पर्श कर हुए सुरत हथके-बक्के  
 लगता कि धनुष में शक्ति-चेतना जीवित है,—  
 आत्मिकता का बट भी उममें परिलक्षित है !

टलता न टालने से, उठता न उठाने से  
 लसभयं मभी अपना बर्तव्य निभाने से  
 सचमुच उनको तोटना असभव है रे मन !  
 खण्डित हो पाता तो खण्डित करता रावण  
 लगता कि व्यक्ति-बल से न दटने वाला यह  
 सीता ने उसे उठाया कैसे ? रे मन बूह !  
 उनके कोमल कर मे है छिपी शक्ति कौनी ?  
 वह नारी है लगती भी है नारी-जैनी !  
 उनके हाथों में कितने जादू डाढ़ दिया ?  
 कैसे पिनाक को उतने कर से टाल दिया ?  
 है तन्त्र-मन्त्र में कितना आग जनकपुरी  
 जन्मर-मन्तर न लगती सीता जुड़ी-जुड़ी !  
 वह जनक-माधना-घट से ही उत्पन्न हुई  
 वह स्वयंशक्ति से ही नृपमा-मम्पन्न हुई  
 खेत को जनक ने यौगिक हठ से जोना था  
 राजर्षि महीपुत्री के महत् जन्मदाता !  
 वे स्वतः तत्त्वदर्शी दार्शनिक, महापण्डित  
 उनकी दीक्षा से ध्यानपुत्र शुभदेव चरित  
 यह धनुषपन्न निरचय रहस्य-अनुरजित है  
 अद्भुत रहस्य से मायक-सीता मण्डित है !  
 दम-वीर वीर से वह पिनाक उठ सकता क्या ?  
 मिथिलापति दोगे हमें भला ऐसी आज्ञा ?  
 यदि उठा लिया हमने तो किमन्ती विजय प्राप्त ?  
 —नृपगण के मन में जिज्ञासाएँ अभी ध्याप्त !  
 बृहन्नग विना आज्ञा के आए वदी पर  
 रावण भी था पहुँचा नवेग उन क्षण मत्वर  
 मन्मथिन प्रयत्न हुआ पर ज्यों का त्यों पिनाक  
 बोटे उदभय है राम ! मभी की बटी नाक !  
 मोटे मोटे वे लोग शक्ति में छोटे हैं  
 अब वे पिनाक के ओर-छोर को टोते हैं  
 सब लोट रहे हैं अपने मुँह को लटवा कर  
 अब रगभूमि में नहीं तनिक उल्हाह-लहर !

सवने सब बहुत उदाम, विजय-विश्वास नहीं  
 आँखों में आया का अब वही प्रकाश नहीं  
 परिणाम न निकला कोई इस आयोजन का  
 पथ खुला नहीं वैवाहिक मंगल बन्धन का ।

आमन से उठ कर मिथिलापति बोलें मररण  
 'लगता कि मनुज में नहीं वही अब इन्द्र, बरुण ।  
 सक्रोध हो रहा है कुछ कहन में इस क्षण  
 क्या वीर-विहीन धरा,—वीरत्व-विहीन भुवन ?  
 इतने रण-वीर यहाँ लेकिन वीरता नमित ।  
 असफलता देख-देख कर अब लोचन लज्जित  
 लगता कि नहीं होगा बँदेही का विवाह  
 रह जाएगी अविवाहित ही जानकी आह !  
 उपहाम-पात्र में स्वयं बना अपने प्रण में  
 मिल गई विफलता मुझे यज्ञ-आयोजन में  
 सचमुच इस जग में उत्तम कोई वीर नहीं  
 कहना पड़ता है आज कि वीर-विहीन मही ।  
 अभ्यागत के सम्मुख अपमान कहे कौन ?  
 कुछ कहे बिना भी इस क्षण अभी रहूँ कौन ?  
 उज्ज्वल युद्ध के नृप और कुमार यहाँ आए  
 फिर भी प्रमत्तता-पवन न मन पर लहराए !'

इस ओर जनक-वक्तव्य निराशा-वाक्य-नमित,  
 उस ओर करुण वाणी को मुन, नारियाँ ध्ययित—  
 चिन्तित कि भयमर भिद्यो न दगरयनन्दन को !  
 दुःख, मुग्न—दौनों मित्र रहे अभी उस रावण को !  
 दुरा यह कि पराजित होकर ही वह जाएगा  
 मुरा यह कि नहीं कोई भीता को पाएगा !  
 मिथिलेन्द्र-वचन लक्ष्मण के लिए अमह्य वाण  
 हो गए अनन्तर महेमा उनसे मवल प्राण

बोले वे रामचन्द्र से : 'भाई ! सुना नही ?  
 जो बात जनक ने कही, उसे क्या गुना नही ?  
 रघुवशी के रहते भी क्या-क्या बौठ गए !  
 एक ही तुला पर वे हम सब को तोल गए !  
 क्या धनुष तोडने में हम हैं असमर्थ यहाँ ?  
 आपके समान वीरवर कोई यहाँ कहीं ?  
 आप तो आप ही हैं, मैं क्या उनमें भी कम ?  
 आज्ञा हो तो मैं तुरन्त मिटा दूँ नृप का भ्रम  
 पर हाथ, धनुष से जुडा हुआ चीना-विवाह  
 अन्यथा दिम्बा देना अपना भी बल अघाह  
 खण्डित पिनाक को कर देता दो ही क्षण में  
 आपकी टूपा ने जमिन शक्ति है लक्ष्मण में !'

सुन ली कौशिक ने वान सुमित्रानन्दन की  
 जागी मगलमय इच्छा अब उनके मन की  
 बोले सहर्ष वे : 'तुम्हीं उठो अब हेट्टरघुवर !  
 जानकी-पिता का अकुलाता कोमल अन्तर  
 तोड कर पिनाक, मिटाओ अब सन्ताप घोर  
 हे राम ! भरो जन-मन में अब हर्षित हिलोर  
 मेरी अनुमति से राष्ट्र-यज्ञ को करो सफल  
 जाओ, कर्त्तव्य करो पूरा हे वीर विमल !'

पाकर महर्षि-आज्ञा, निष्काम राम तत्पर  
 गुरु-भग का नमन किया निज आमन से उठ कर  
 वे चले सहज मुस्कान लिए मंच की ओर  
 भाँखें न झुंझ पाती अचरज का ओर-छोर !  
 तोटेगें कैसे धनु सुन्दर-भुकुमार राम ?  
 कर रहे निराशा में आज्ञा-संचार राम  
 शक्ति नयनों में अब भी तो शंका-तरंग  
 सुकुमारी नारी में आकर्षण की उमंग



सीता की मखियो के उर में आनन्द अधिर  
 तन पुलकित, मन पुत्रविन, अपठक लोचन पृथकित  
 तोड़ें धनु को श्रीराम, ईश-वन्दना यही  
 लख मृदुल देह, मन में सजय भी वही-वही  
 सन्देह सुनयना राजी को कर रहा विमर  
 ममता के कारण आभा-अकिन उर चचर  
 देवता-पितर से प्रिय प्रार्थना मफडता-हिन  
 नृप-प्रण के प्रति अनि भावुक स्त्री-मन सहज कुपित !  
 शौनिक रूपि पर भी झिझर रि क्या भजनादेश  
 यदि भग न धनु, नो होगा जिनना बदा त्रेण  
 सायक मृणाउ तो नहीं, बडोर बहून है वह  
 हे सखि, हम मत्र के लिए निठुर आदेश अमह  
 अनि बल अनुत्पति रावण जिसे उठा न मवा,  
 कोई भी जाज विजय जिम धनु पर पा न मरा—  
 तो कैंन राम बरेंगे उम पर विजय प्राप्त ?  
 कर देते नृप इस धनुषयज्ञ को ही समाप्त  
 होना तत्र सहज म्म में सीता का परिणय  
 होनी सर्वप्र यहाँ मंगलमय जय ही जय  
 पर, चने गए श्रीराम धनुष के निवट हाथ,  
 धर सरे नही राजपि चतुर कोई उपाय !  
 सी देव, राम की शीर्य-नामि वागारण-भी  
 इस नामय जिल रही और अधिर आभा उनरी  
 तेजस्वी उनका तन, आगेरिन मृगमण्डर  
 प्रस्फुटित मय पर उनका दिव्य शीर्य-शतदर  
 छोटें हैं अभी देगने में पर, तेज अधिक  
 लगना कि सभी दर्शनमय में वे अधिक मुदिन  
 उनरी मुग्-मुद्रा देव, अमृग आश्चर्यनमि  
 लेरिन मममन ऋदिगण इस समय बहूत पुररित  
 मरि, राम कर रहे हैं मवरी वन्दना अभी  
 वे देग रहे इस ओर वभी, उम ओर वभी  
 उनसे सूर्योदय से नृप-नारक सभी मरिन  
 अवतक थी सजय-निता रिन्तु अब स्वर्णिम दिन !

जानकी ! जानकी ! तू भी उन्हें देख ले अब  
 वैसी दिव्याभा जाने फिर मिल पाए कब  
 री, नयन मूँद पर तू किसका कर रही स्मरण ?  
 तेरी आभा मे भी झरते आनन्द-मुमन !  
 रोमांचित तेरा तन, विभोर मन भीतर से  
 सीते ! तू कुछ बोलती नही किसके डर से ?  
 हे राम ! आपके हाथो मे ही आज लाज  
 आपकी ओर ही देख रहा मँथिल समाज  
 ऐसा प्रण करना नही उचित या भूपति को  
 पर, नही सन्हाला ऋषियो ने उनकी मति को  
 है सिरिम-बोमला सीता, प्रण प्रस्तर-कठोर  
 कविता ज्यो एक ओर दर्शन ज्यो एक ओर !  
 जाने किमभी स्मृति मे सीता रम-मग्न अभी  
 वाणी-विहीन ऐसी रसमयता कभी-यभी  
 कामना-सरोवर मे सुधि की चंचल मछली  
 इस ओर कभी, उस ओर कभी आशा उछली  
 मुकुलाई कमल-विशोरी कुछ-कुछ गिल्ली हुई  
 उनकी सुगन्ध अब इन सासों मे भिली हुई  
 आकुलता की आनन्द-रहर लटराई-सी  
 गुमसुम सीता है खडी प्रीति-परछाई-सी !  
 उनको निहार कर वह अतिशय अकुलाई-सी  
 अपनी आँखें अपने मे बहुत टजाई-सी  
 वालिका बधू की आशा मे सकुचाई-सी  
 धीरता, वीरता के समीप अब आई-सी !  
 प्रेम की दिव्यता प्राणो पर छितराई-सी  
 लौकिकता-निवट अलौकिकता उधियाई-सी  
 सच्चाई अब दृग के ममक्ष, सपनाई-सी  
 आनन्द-लता अब अगो पर लतराई-सी !  
 उनकी आभा अब इन आँखो मे छाई-भी  
 सुधि की अमराई सुधि से ही वीराई-सी  
 पावन फलको पर अमृत-बूँद छट्वाई-सी  
 रवि-नदश राम, सीता उनकी अरणाई-सी !

लो, रामचन्द्र ने उम पिनाक को तोड़ दिया  
 देखा न किमी ने, वंमे उसे मरोड़ दिया  
 अनुमेय विज्जु-वर्जन-मा व्यापित शक्ति-रोर  
 दिशि-दिशि मे फँट रहा उच्छ्रित आनन्द घोर !  
 धनु के दो टुकड़े को ब्रू पर रख कर मादर,—  
 मद्य के सम्मुख करवद्ध विजय-विनयी रघुवर  
 कौशिल ने उन्हें तुग्ग छाती मे लगा दिया  
 जनगण ने दण्डरथनन्दन का जयवार किया !  
 हर्षित लक्ष्मण इतना कि नयन मे अथु अभी  
 मिलती है ऐसी विजय विश्व मे कभी-कभी  
 सीता के सुख का ओर-ओर दीप्तिता नही  
 उरफुल्ल महामिथिला की आज प्रणम्य मही !  
 आनन्द-अथु राजपि जनक के लोचन मे  
 आनन्दा ना ऋषि थाजवन्क्य की चितवन मे  
 विजयी वर को देव वर सुनयना मग्न अधिक  
 सीता की मारी मखिया पुलकिन ही पुत्रकित  
 छवियों के बीच महाछवि-मी सीता ज्योतिष,  
 यह देव, असुर रावण-मन-ही-मन अत्र प्रोघित  
 आसो का लम्पट लाल राहु विस्फारित अब  
 प्रतिगोघ-रुहर भीतर-ही-भीतर जगतिन अब !  
 वह उठ कर परशुराम से मिलने चला गया  
 कहना था प्रोधी गक्षम को जाने, क्या-क्या !  
 ईर्ष्या की आग धधकती थी उमके मन मे  
 छत्र-यत्र छत्राग मारने लगा था रावण मे !  
 राम की विजय मे नृपगण मे भी विविध भाव  
 कुछ को प्रमत्तता प्राप्त और कुछ को दुराव  
 जैमा जिसमे गुण, प्रतिश्रिया उममे वैसी  
 वैसी ही मनोदशा जिमकी प्रवृत्ति जैगी !  
 सुनवर भगल वादन, ईर्ष्यानु वणं वम्पिन  
 तन गीत-नाद, डाही वा मन अगाग्-ज्वरिन  
 दिन के प्रदीप-मे जटते हैं जटने वाटे  
 जो जिमने डाही, उतने टनके मुँह वाले !

जलने वाले जल-जल कर ही मर जाते हैं  
करने वाले ही उचित कार्य कर जाते हैं  
ईर्ष्या के कारण क्लुपित हो जाता है मन  
बैर ही बैर विखराता है वैरी-जीवन  
ईर्ष्यालु बुद्धि नोष ही सदैव उगल पाती  
पर-कीर्ति देख कर उसकी सास अगियाती  
राम के अमर यश स उद्विग्न हुआ रावण  
करता न घमण्डी कभी पराई कीर्ति सहन !  
जो सुख-दुख में सतुरित शक्तिमय वही राम  
विजयी होकर भी देख रहे हैं मही राम  
सीता जयमाला पहनाने आ रही अभी  
उसकी आँखें पड़ जाती उन पर कभी-कभी !  
ज्यो-ज्यो जानकी निकट, भूपालो में हलचल  
अनुपम छवि-दर्शन से ईर्ष्या का वेग विकल  
आँखों में दीप्ति लिए लक्ष्मण हो गए खड़े  
देख कर वीर मुद्रा उनकी, नृप सभी डरे !  
सीता के पीछे-पीछे गीतमयी सखियाँ  
फड़फड़ा रही-सी बड़ी-बड़ी उनकी अस्त्रियाँ  
भूमती चसन्तलता-सी विह्वल वावरियाँ  
आनन्द-पत्र फैलाती यौवन की परियाँ !  
राम के नमक जानकी लज्जा-भी मस्मित  
नख से शिख तक इस ममय देह शोभा-सुरभित  
प्रिय जनक-बालिका, राम-बधू बनने वाली  
उसके मुख पर सौभाग्य-मूर्त्य की नव लाली !  
मुन्दर जयमाला सीता के सरमिज-धर में  
धर्म की धवलता ध्याप्त अलकृन् अन्नर में  
सखि ! पहनाओ पाहुन भी अब तुम विजयमाल  
है झुका हुआ इनका इस वेला न्वत भाल !  
मुसकाए ज्योही राम, खिली सीता-चिंतयन  
जीवन में एक बार ही मिलता ऐसा क्षण  
पूजित वह स्वयं हुई इन परिणय-भूजन में  
जुड़ गया सदा के लिए एक मन उन मन से !

भुक् गए राम कुछ और तभी मात्र अपित  
 दोनो ही एव दूमरे से अब आनन्दित  
 गूँजने लगा मगध मनों म यज्ञस्वयं  
 शखध्वनि सुन कर खिन्ना जनक का हृदय-कमल  
 जैने-जैने प्रिय गीत, मुनयना मुदिन-मुदित  
 मृदु वाद्यवृन्द से प्रिय मण्डप आनन्द-ध्वनित  
 उत्फुल्ल राजरमणी, प्रफुल्ल जन-भन-हृत्तल  
 अनुराग-राग-रम-मग्न मधुरता का शतदल ।  
 धृ गार-मफुल्ल मीना वीरता-चिन्म राम  
 कर उनका चरण-स्पर्श, वंदेही मुग्ध-मवाम  
 मन-ही-मन गिरिजा-स्मरण महाशिव को प्रणाम  
 जघरो पर अट्टरा-मा उनका भी मधुर नाम ।  
 इनने मे भीड़ चीर कर भृगुपति का प्रवेश  
 भयभीत सभी, देग कर तुग्ग्न कराठ पैग  
 रुम्बे, गोरे तन पर विभूति का आलेपन  
 सिर पर मुविनाठ जटा, बल्ल-ठ ही देह-वमन  
 उज्ज्वल उदाट पर जय-त्रिपुण्ड्र शोभायमान  
 मुखमण्डल पर मत्तप वीर रम का प्रिहान  
 भौहे इतनी टेढ़ी नि शोध म नत्र लाल  
 तन पर घोमिन वज्रोपरीत, रद्राक्षमाठ  
 तूणीर पीठ पर और हाथ मे धनुष-बाण  
 मृगधर्म पाँव मे, कंधे पर फरना वृद्यानु—  
 प्रभु परशुराम जा रहे—आ रह परशुराम  
 उमके आते ही विद्या उगहे मत्र ने प्रणाम ।  
 उठ गए सभी उनने आने ही यहाँ अभी  
 उनके मभीष आ गए स्वय ऋषिवृन्द मभी  
 हो जाय न शुभ मे वही अशुभ, आशवा यह  
 होता है निमी-निमी रा नर आगमन अमह ।  
 आते ही कहा उन्होंने . 'धनु निमने गोडा ?  
 बाट के भाठ पर निमने फटा है गोडा ?'  
 —सुनते ही यह गर्जाय जनक हो गए मोन  
 है मोन धनुष-भङ्ग, उम क्षण जा रहे वीन ?

रघुनन्दन का परिचय कौशिक ने स्वयं दिया  
 पर, परशुराम ने यह नुनकर भी श्रेष्ठ किया  
 श्रेष्ठ के कुण्ड में लगा धधकने जनल-ज्वाल  
 दारुण दावानल से ज्यो जगत् लाल-लाल ।  
 उनके आते ही वन्द हो गए नाच-गाय  
 छा गया तुरन्त नीरमता का नीरव बितान  
 नम्राटा चारों ओर उदामी हर मुख पर  
 अगान्नि परशुराम से लगता सबको डर ।  
 देख कर रग में भग, नुनयना चिन्तित-नी  
 मीना की मस्त्रियाँ मृगया-मृग-नी विचलित-नी  
 क्या बनी-बनाईं वान विगडने वाली है ?  
 क्यों उनके मुख पर ध्यान श्रेष्ठ की लाली है ?  
 ईर्ष्यांनु भूपगण अधिप नदित हो रहे अभी  
 हो रहे मघटित अवनरवादी लोग अभी  
 छिड जाय न घुड वही, ऐसी भी आनका  
 लग जाय न लजने वही श्रेष्ठवग गण-डका ।  
 मस्त्रियों की ओर करण मीना के विकट नयन  
 कुछ क्षण ही पहले हृषं बिल्लु अब दुख डम क्षण  
 किनना परिवर्तनशील नियति का कालचक्र  
 शुभ ग्रह पर पड़ी अचानक शनि की दृष्टि वर ।  
 आ गए राम ही स्वयं परशुघर के मम्मन्व  
 वीले : 'भगवन् ! मत करें धनुष के लिए दुःख  
 धनुभजक तो आपका दास ही है मुनिवर ।  
 जो होता है मो होने दें जग-हित मुन्दर'  
 —मुन राम-वचन, फिर श्रेष्ठित परशुराम तत्क्षण  
 नयनों पर पड़े अचानक उनके श्रेष्ठ नयन :  
 'महनीय कदापि नहीं सेवक न शत्रु-चार्य  
 तू तो शिषु-ना ही बोल रहा रे, चतुर आवें ।  
 परिणाम भयकर होगा अब धनु-भजन का  
 दे दिया निमज्ज तू ने जब मुझको गण का  
 क्षत्रिय-महार भुवे अब फिर करना होगा  
 फिर शोषणगण में ब्राह्मण को लडना होगा

मैं अग्निपुत्र्य शोषण को स्वयं मिटाऊँगा  
 नृप-अनाचार को मैं समाप्त कर पाऊँगा  
 मेरा व्यापक विप्रन्व विश्व-कल्याण-हेतु  
 मैं बना रहा हूँ मानवता का धर्म-भेतु  
 भू से बुरीतियाँ मिटे, यही मैं चाह रहा  
 मेरी बाणी ने शोषक को क्या-क्या न कहा  
 पर, सुनने वाले तो सुन कर रह जाते हैं  
 कुछ करने वाले ही जन-मम्मस्र आते हैं  
 मैं नहीं मानता जन्मजात अज्ञान-पान  
 मैं देख चुका हूँ गजगण के बाहरी दान  
 शिव शान्ति-व्यवस्था में यात्रक वर्णन अधिक  
 मेरा आग्नेय परधु-भन ममता-हित धोघ्नित  
 मैं वह ब्राह्मण जिमसे ब्राह्मणगण भी डरते  
 ब्राह्मण तो वे ही जो अधम का नम हरने  
 पर, जन्मजात उच्चता न मरकी मित्र पाती  
 देल कर फनन अब मेरी आँखें अतृपणी  
 व्यापार कर रहे विप्र, विप्र अब भृत्य यही  
 शूद्र के यहाँ धर्मिय भी सेवक जहाँ-तहाँ  
 वैश्य भी शूद्र के दाम, विप्र मेनाजों से  
 है वर्ण-व्यवस्था घिरी नाश-बाधाजों से  
 अब मुगम-मुगम शिव मार्गं मुक्ति-यथ मदा भरत  
 साधना-मफत्र विप्रन्व भूमि पर वीर-विरत  
 था विया किमी ने उम अनीत मे मनु-विगेध  
 अमफत्र सामाजिकता पर आना मुन श्राप  
 गण्डित मानवता गण्डित कबनन रह मवती ?  
 जीवन की गंगा उन्टी कैसे बह मरती ?  
 राज्यों पर मरना ध्यान, देश पर नहीं हाथ,  
 भारत की ऐक्य-मफत्रता का अब क्या उपाय ?  
 भूपतियों की मकुचित दृष्टि हानी ही है  
 मानवता अबनन पृथ्वी पर रोनी ही है  
 यों ही न क्रिया है मने भू पर न्तपान  
 अन्याचारों से त्रुड हुआ है विप्र-गात ।

विप्रो को ही खोलना पडेया विश्व-द्वार  
 ऋषियो को स्वयं हटाना होगा अन्धकार  
 चिन्तन लेखक को अब आगे आना होगा  
 व्यापक प्रभात इस पृथ्वी पर लाना होगा  
 भारत को हमे बनाना होगा अब भारत  
 अवरुद्ध अभी तक है दक्षिण का गिरिवन-पथ  
 विन्ध्याचल भुजा परन्तु काम हूँ गेय वहाँ  
 अपना ही है—अपना ही हूँ रे, देश बड़ा  
 कांक्षित-इच्छा ने ऋषि अगन्त्य हैं वही रके  
 असुरो के उत्पातों ने नन्मख बे न भुके  
 सामाजिकता वानी है वर्ण-व्यवस्था में  
 विद्रोह छर रहा काल अनीति-अवस्था से ।  
 सुन्दर निर्माण-हेतु विष्वग्न प्रिया मने  
 गोपित जन को वीरत्व-प्रकाश दिया मने  
 शिव-धनुष तोडने वाला मेरा शत्रु प्रवल  
 मैं यहा मचाने आया हूँ अब उथल-पुथल  
 धनु-भजन से अपमानित आज शिवत्व हुआ  
 राजा के मुत को प्राप्त अमीम महत्त्व हुआ  
 कधे पर गीप रहा मेरा विद्युत्-करसा  
 धनु-भजन से आग का फूट मन पर बरसा ।'

सुन परशुराम का कथन, मुस्कुराए लक्ष्मण  
 मुकुलित मुक्तांन देख कर ऋषि के लाल नयन  
 वीले रामानुज 'जीर्ण धनुष था, टूट गया  
 कम से कम शक्ति-मोह तो सबका छूट गया !  
 बल नहीं लगाना पडा वन्धु को भजन में  
 इन कारण ही व्यापित विस्मयता जन-मन में  
 छूते ही तो भाई ने धनु को तोड दिया  
 आजीवन मिथिला से प्रिय नाता जोड लिया !  
 दक्षपन में तो हमने अनेक धनु तोडे हैं  
 पर इनके लिए आज क्यों दांत निमोडे हैं ?



एक पर एक शिल्पी नित धनुष बनाते हैं  
सण्डित धनु-हित व्यर्थ ही आप पछनाते हैं !

—'वम सावधान'—बोले भृगुपति—'तू बहुत दुष्ट

तेरी विष-भरी बात मन कर मैं खिन्न, स्रष्ट  
शोधित हूँ—कोधित रे नटखट दशरथनन्दन !

फरसे पर अटका है जलता-भा मेरा मन

तू नहीं जानता मुझे कि मैं कितना निर्मम

मुझसे ही बली सहस्रबाहु का टूटा भ्रम

काटा मैंने ही उसकी दर्प-भुजाओं को

मारा मैंने ही अह-शस्त राजाओं को '

मेरे फरसे को तू न अभी पहचान रहा

तू मुझे मात्र मुनि ही अबतक है मान रहा ?

अब बकझक मन कर परगुगम के मम्मसू नू

अन्यथा मूर्ख ! पाएगा अब दुम्नह दुष तू !

—'तो क्या मुनिवर ! आप ही एक योद्धा महान् ?

इस पृथ्वी पर आप ही एक हैं प्राणवान् ?

दिसलाते बारम्बार कुहाड़ी मुझे आप

मह पाते कान नहीं अब दम्भी वचन-ताप

रुई मैं नहीं कि श्वास-पवन से उड जाऊँ

तर्जनी-तडित को देख भला मैं डर जाऊँ ?

आपके वचन ही ब्रज, व्यर्थ ये धनुष-बाण

मिथ्या यदि मेरी बात, क्षमा हो जग्निप्राण !

आतैं ही आप अवारण हम पर वरम पटे

उत्तप्त शब्द-पत्थर के दुबडे यही क्षत्रे !

रग मे भग इस समय आपके आने मे

गीत भी बन्द अब वाक्य-नृपाण चलाते से !'

इस धार और भी उत्तेजित प्रभु परगुगम

छूटने लगा श्रीष्मिन् ललाटे से बहून धाम

बोले ये वीरिन मे कि 'वृष्टि-यह वाक्त्र है

परता युयुधि के कारण ही यह वज्रक है !

समझाओ कौशिक ! इसे, अन्यथा मैं रोघित  
 दुष्टों के लिए स्वय ही हूँ मैं वीर वधिव  
 यह निपट गँवार, निरकुश, गल उच्छ खल है  
 दभी है, रोधी है, यह कितना चचल है !  
 अपनी आँखें बन्दर की तरह गुरेर रहा  
 देखा तुमने, यह कितना मुझको छेड रहा ?  
 सुन लो कौशिक ! अब यदि यह आग टोकेगा,—  
 तो ममझो रोघ-कुण्ड मे निज को झोंकेगा  
 इसके यदि रक्षक तुम तो इसको समचाओ  
 मेरी अपार बड-महिमा को तुम बतलाओ  
 धनवानो के बेटे ऐसे ही होते हैं  
 अपनी करनी से दुष्ट एक दिन रोते हैं !  
 पन्द्रह-सौलह मे ही डममे है अति धमण्ड  
 जी करता, डमको धर हूँ इस क्षण सण्ड गण्ड  
 यह अपनी मृत्यु स्वय ही इस क्षण बुला रहा,—  
 देखो, फिर हँस कर सुप्त रोघ को जगा रहा !

इस रगड-झगड से आहँडादित खर नृप का मन  
 'हे परशुराम !'—फिर बोले उठे आकुल लक्ष्मण :  
 'अपना परिचय आपने स्वय ही दिया आज  
 आपकी बात को सुन-सुन कर हर्षित समाज  
 कहना है यदि कुछ और, आज ही कह टालें  
 आपका पूर्ण परिचय हम लोग अभी पा लें  
 अपने मुँह मे ही अपने यज्ञ को बहे आप  
 आप ही स्वय कह सकते हैं अपना प्रताप !  
 आपकी गालियाँ सुनने मे आनन्द अधिव  
 हो रहे आपके मुख मे रोघ-शब्द शोभित  
 झरती हैं वेद-ऋचाएँ तपसी मानस से  
 हो रहा पवित्र विवेक नचित्र रोघ-रस से !  
 आपकी वचन-वीरता इस समय दर्शनीय  
 आपकी रोघ-शीला सचमुच ही नाटकीय

हम धन्य हुए हे देव ! आपने दर्शन से  
 लाभान्वित हम आपके धधकते चिन्तन से ।  
 है वाक्य-वीरता का सन्तुलन आप में ही  
 आपके समान प्रचण्ड वीर है वही नहीं  
 आप ही शस्त्र-शास्त्रों के हैं ज्ञाता महान्  
 आपकी अग्नि-बाणी ही तो चचल वृषाण  
 शोषक राजाओं के सहारक आप स्वयम्  
 शोषण के बलशाली उद्धारक आप स्वयम्  
 शिव सत्य-प्रतिष्ठा पान वाले आप एक  
 हो रहा प्राप्त इस समय हमें दुर्लभ विवेक  
 लगता कि अयोध्या में न आप आए भृगुपति  
 देखी न कभी आपन वहाँ की राज्य प्रगति  
 हम आमन्त्रण देते उस भू पर आने का  
 अवसर न कदाचित् आए परशु उठाने का ।  
 सत्य ही कहा आपने कि भारत पर न ध्यान  
 पर, हिमा ही क्या मानवता का है निदान ?  
 यदि एक देश भारत है तो यह रण कँसा ?  
 इस धनुषयज्ञ के बाद जलद-गर्जन कँसा ?  
 राजर्षि जनक ने राष्ट्र-यज्ञ ही किया आज,—  
 भारत-भू को एकत्व-बोध ही दिया आज  
 ऐसा विवाह-उत्सव भूतल पर हुआ कहीं ?  
 भारत के सभी भाग के प्रतिनिधि जुट यहाँ ।  
 इतिहास करेगा इस उत्सव का सदा स्मरण  
 है व्याप्त विदेह-प्रतिज्ञा में भारत-चिन्तन  
 विजयी पुरपोत्तम पर विराट् दायित्व एक  
 इस अनुष्ठान में भरा हुआ मंगल विवेक !

‘नटखट बालक ! तू मुझे ज्ञान सिखलाता है ?’  
 —वोठे भृगुपति—‘तू मुझको यहाँ चिटाता है ?’  
 इतना ही कह कर ऋषि ने फरसा उठा लिया ।  
 कौशिक ने उनके जोधानरु को शान्त किया :  
 ‘हे ! हे ! हे परशुराम ! ऐसा मत करे आप  
 बालक पर घातक अन्त्र उठाना महा पाप  
 यह लक्ष्मण अभी विशोर—अभी बालक ही है  
 गिष्टना अभी इनने थोटी ही नीखी है ।  
 पर बोले भृगुपति इन पापी मे शीरु नही  
 इसके समान उच्छरु बालक देना न नही  
 जब तक न करे सहार जोघ होगा न शान्त  
 है बुद्धिहीन इसका तन मन अनि दम्भ-भ्रान्त ।’  
 लक्ष्मण ने भी कह दिया ‘आप नो शीरुवान  
 कर मातृ-घृणित-वध, वन आप कितने महान्  
 इतनी प्रसिद्धि आजनक किमी को नही मिली  
 आपकी कीर्ति-पूर्णमा चतुर्दिक खिली-खिली ।  
 भारत के मगन्दाना स्वय अमगलमय  
 बीगता बवान रही है केवल जोघित जय  
 उद्देश्य बहुत ऊँचा रेकिन करनी बनी  
 अयतन न नफरता मित्री किमी को भी ऐसी ।  
 लगता कि आपको शूर-वीर ने भेंट नही,—  
 मुठभेड हुई है रणधीरो मे नही बहो  
 कर चुके परशुघर रक्तपात मे समाधान  
 है चमक रहा नू पर कितना स्वर्णिम विहान ।  
 उनकी शोणित-लीला ने चारो ओर शान्ति  
 कितनी शिवमय है उनकी सक्षम रक्त-शान्ति ।  
 ममता ही ममता व्याप्त, विषमता कही नही  
 स्वर्ग के नमान मुजोभित है सब प-नही ।  
 हे परशुराम ! नृप यहाँ अनेकों आए हैं  
 इनके भी कोमल प्राण बहुत अकुलाए हैं  
 वन, एक साथ सबका उद्धार करे भृगुपति ।  
 मान लें आज मेरी भी छोटी-सी मम्मति

कल्याण करें सबका, बूठार से हे बठोर ।  
 पर, अपनी आंखों को दौड़ाएँ उसी ओर  
 इस ओर अवध के वीर बहुत गभीर घोर  
 काल के वक्ष को भी दोगे ये तुरन् चीर  
 ये नहीं डरेंगे कभी परन्तु चमकाने से  
 हम नहीं चूकते कभी चुनौती पाने से  
 रघुवशी साच-समझ कर अस चलाते है  
 रण मे न कभी ये अपनी पीठ दिखाते है ।”

इस बार क्रुद्ध मुनि की आंख अब अधिक लाल  
 फनफना उठा-सा मुनि मानम का रोध-व्याल  
 तमतमा उठी-सी मुख-मुद्रा घात सुन कर  
 ज्यो ग्रीष्म-प्रचण्ड दिवाकर स दुम्मह दुपहर ।  
 लक्ष्मण-वाणी स म्रय नाम भी व्यग्म-चकित  
 लेकिन कुछ ऋषिगण दीप्ति देख कर बहुत मुदित  
 बोले श्रीराम महामुनि स मविनय तत्क्षण  
 ‘अनभिज्ञ आपकी महिमा स बालक ऋक्षमण  
 यह नहीं जानता है कि आपकी क्षमता क्या  
 यह नहीं समझता है कि मनुष्य विपमता क्या  
 समता का मत्य समझना भी तो सरल नहीं  
 है नाथ । अनुज के शब्दान्त मे गरल नहीं  
 इमने समझा कि थापने मेरा अधुभ किया  
 इसलिए बचल उत्तर इमने आपको दिया  
 मेने भी अवतब सुनी नहीं बातें ऐसी  
 अटपटी घात इमन बह दी चटपट कभी ।  
 हो जाता है उत्पन्न रोध से तुरन् पाप  
 बटुता के लिए क्षमा कर दें अब इसे आप ।”

—सुन राम-वचन, रोधित मुनि का कुछ शान्त हृदय  
 मन को शीतल करने में मक्षम मदा विनय  
 रोध पर विजय कोमल वाणी से की जानी  
 रोध की आग शीतता से ही बुझ पाती

लक्ष्मण ने फिर मुसका कर चिटा दिया मन की,—  
 मिल गया नोघ-घृत फिर अगिबाए इंधन को ।  
 गरजें फिर परशुराम - 'यह दृष्ट बहुत पापी  
 उमके हँसने पर मेरी देह पुन काँपी  
 ऊपर से गोरा पर भीतर से काला वह  
 तुम हो नुगील हे राम ! किन्तु खल वह दुस्तह,—  
 टेढ़ा भीतर से भी, टेढ़ा ऊपर से भी  
 घबराना किंचित नहीं तुम्हारे डर मे भी  
 पाटल प्रसून तुम किन्तु तुम्हारा यह बाँटा  
 जो करता जट्ट हूँ अभी गात्र पर मैं चाँटा ।  
 कुल के बलक को माय यहाँ तक लाए क्यों ?  
 ऐसा पापी भूतक पर ही रह पाए क्यों ?  
 यह नीच अभी तक अपने मद में फूल रहा  
 बालक होकर भी मुझे आज क्या-क्या न बहा !  
 आश्चर्य कि मेरा फरमा मेरे कर में है  
 मुझने भी अधिक नोघ उमके अन्तर में है  
 नोघ ही नहीं, उममें उच्छ खलता भी है  
 दपं ही नहीं, उममें अति चंचलता भी है ।  
 सुन्दर तन लेकिन नलिन-मलिन मन उत्तका है  
 अपनी जिह्वा पर वह मदैव दिप रखता है  
 उमकी बाणी से गरल-पुष्प ही सरते हैं  
 मरने वाले तो वात-चात पर मरते हैं !  
 नोघी मैं भी हूँ किन्तु नोघ तब करता हूँ,—  
 जब महोद्देश्य के लिए किनी से लडता हूँ  
 पशुबल-विनाश-हित सदा कुठार उठाया है  
 भूतल पर यों ही नहीं परशुघर आया है  
 मैं ही सब काम करूँ, ऐसा सम्भव न कभी  
 इस समय यहाँ पर आया अभी निरर्थक नहीं  
 घट गई नहीं साधारण घनु-भजन-घटना  
 यह बात न सम्भव मुखों के मन में अटना !'

‘अब क्या होगा ?’—काट कर बात बोले लक्ष्मण  
 ‘क्यों खटक रहा आपको अनुष्ठित धनु भजन  
 सायक को शिल्पी जोड़ सके, तो जुड़वा लें  
 ऐसा करके अब आप स्वयं यज्ञ को पा लें !  
 बाधाएँ अब डालिए स्वयम्बर में न आप  
 यज्ञ में बिघ्न डालना स्वयं ही महा पाप  
 कीजिए शान्त होकर शका का समाधान  
 दुखमय क्यों बना रहे हैं सब के अभी प्राण ?  
 विष-विन्दु न डाल आप अमृतघट में इस क्षण  
 उत्तेजित यो ही नहीं हुआ हे मुनि ! लक्ष्मण  
 ऋषि के समान आते तो रखता सिर पर रज  
 करता मस्तक से स्पर्श आपका पद-पक्ज !  
 पर, मेरे रहते क्रोधित मरे अग्रज पर ?  
 सह पाता कैसे मैं चुप रह कर शाब्दिक शर ?  
 लगता कि अनुज का धर्म आप जानते नहीं,—  
 साधारण आर्य नियम को भी मानते नहीं ?  
 मेरी अनुचित वाणी में उचित आचरित मन  
 मैंने न व्यर्थ धधकाया प्राणों का ईधन  
 कुछ भी है रामचन्द्र का प्यारा भाई है  
 अपने ही रवि की मैं प्रसन्न अरुणाई है  
 अपमान-शब्द का अब व्यवहार न हो मुनिवर !  
 धमकी सुनने पर हमें न होता कोई डर  
 नर तो नर है, हम नहीं राक्षसों से डरते  
 कुछ छेड़छाड़ करने पर ही हम कुछ करते !  
 भ्राता जितने हैं विनयशील मैं नहीं,—नहीं  
 इनकी सज्जनता मैंने देखी नहीं कहीं  
 उनके कारण ही इतना चुप हूँ मैं मृगुपति  
 अन्यथा आप देखते वीरता की जय-भक्ति !

मुन कर लक्ष्मण की बात, परशुघर अब अधीर  
 वम्पित धर-धर-धर-धर क्रोधित ब्राह्मण-शरीर

विजयी फरसा से होने को ही अब प्रहार  
 हाहाकारो का करण-वरण गव्दान्धकार  
 उनके सम्मुख श्रीराम, नुकाए अपना निर  
 हो रहा जनक का योगी मन भी अब अन्धिर  
 भृगुपति के वर को वीथिक ने झट पकड़ लिया  
 न्यति ने अनेक नृप-भ्यानों को भी हिला दिया  
 प्रतिशोध-भाव उभरा अभ्यागत नृपगण में  
 उत्तेजित मन-ही-मन युवराज उवलित क्षण में  
 कर स्मरण पुरा घटना, भू-स्वामी मभी प्रुद्ध  
 तलवारें निकाले परशुराम के ही विरुद्ध !  
 पर राम-भद्रना के जानण रण हुआ नहीं  
 प्रेम के सामने खड्गों ने तन छुआ नहीं  
 किस पर न पडा राम की मृदुलता का प्रभाव  
 प्रेम ही दूर कर पाता है मन का दुराव !  
 इस विनय-वीरता से विदेह भी हुए चकित  
 ऋषि वासुदेव लीला त्रिलोक कर योग-मुदित  
 विहसे भीतर-ही-भीतर चिन्तनमय लक्ष्मण  
 'टिढा मनुष्य भी करवा लेना निज पूजन  
 मीघेपन का भी अनुचित लाभ उठाता नर  
 मिलते हैं भाँति-भाँति के व्यक्ति धरानल पर  
 कर देता है राम-भग एक शोषी मानव  
 घटती रहती विचित्र घटना जग में जब-तब !'  
 बोले फिर परशुराम - 'सचमुच तू चतुर बहुत  
 जानता नहीं, मैं कौन ? अरे ओ दशरथनुत !  
 अपने भाई को तू ने ही न्यमाया है  
 मेरे मानस में क्रोध अभी नष्ट छाया है !  
 तू भी दोषी है, केवल वही नहीं उच्छल  
 मैं ममल रहा हूँ तेरे मन का बल-बल-छन्द  
 तू जन्दी उसे हटा तब होगा शान्त क्रोध  
 अन्धथा मुझे करना होगा गिपु-भा विगोध  
 आश्चर्य कि अबनक उमें नहीं मैंने मारा  
 मेरे दृग में क्यों चमक रहा करणा-तारा ?



क्या परशुराम का परन्तु हो गया अब कुण्ठित ?  
 मेरा विपरीत स्वभाव आज ? धिक्-धिक्, धिक्-धिक् !  
 क्रोध ही नहीं, अब ग्लानि अग्नि में जलना है  
 लगता कि आज मैं पथ छोड़ कर चलता है  
 शिव-द्रोही ! तुझे युद्ध मुझसे करना होगा  
 इस समय इसी यज्ञम्यल पर उड़ना होगा  
 मैं कैसा विप्र-वीर तुझको बतलाता है  
 तू देख कि कैसे मैं कुठार चमकाता है  
 क्रोधात्मा की समिधाग्नि निरन्तर जलती है  
 वीरता-ज्योति की ज्वाला मदा निकलती है !  
 मन-अनलकुण्ड में पशुवल की ही आहुतियाँ  
 आग्नेय सदा ही चिति की मन्त्रोचित स्थितियाँ  
 नर की आसुरी शक्ति को मुझे मिटाना है  
 समता-प्रभात सम्पूर्ण धरा पर लाना है  
 सभ्यता मलिन हो रही विपमना के कारण  
 कुत्सित विभेद में आकुल-व्याकुल जन-जीवन  
 वैपम्य मिटाएगा मेरा पौम्य अजेय  
 लडना ही है आजीवन मेरा धर्म ध्येय !'

सुन भृगुपति की वाणी, श्रीराम विनम्र अधिक  
 नम्रता-भरोज विवेक-भुरभि से वृत्त-नमित  
 'आपके सामने मैं भी तो बालक-सभान  
 सर्वदा प्रणम्य आप ओजस्वी महाप्राण !  
 मैं केवल राम परन्तु आप तो परशुराम  
 आपके समान महान आपका महत् काम  
 धनु-भजन का अभिमान नहीं है तनिक नाथ !  
 मेरे सिर पर आपकी कृपा का मदा हाथ  
 बस यही समझिए छूते ही धनु हुआ भग  
 इसलिए न मेरे मन में कोई सुख-तरंग  
 वीरता दिखाने का अवसर तो मिला नहीं  
 भीतरी शक्ति का शौर्य कुमुम-सा खिला नहीं !

मैं लडूँ आपसे ? यह कैसे होगा भृगुपति !  
 बालक है पर, मद-रहित कदाचित् मेरी मति  
 अरि के आगे मिर नहीं झुकाता वशी वीर  
 युद्ध में नहीं डरता हूँ दिव्यात्मिक शरीर  
 कोई भी रण में डरन वाले हम न कभी  
 पर, निज प्रकाश के सम्मुख ही मैं खड़ा अभी  
 वीरत्व-अनल जापका अपरिचित नहीं दब !  
 हम देख रहे हैं अभी एक ही मही दब !  
 कालानुसार शोषाग्नि आपकी अपनी ही  
 अपने पर भी शका हो जानी कभी-कभी  
 अपने को कैसे नहीं आज मैं पहचानूँ ?  
 एकात्मकता को अभी नहीं कैसे मानूँ ?

सुन कर रहस्यमय राम-वचन, भृगुपति विभूक  
 मन-ही-मन प्रदन-लहर कि हुई क्या यहाँ चूक ?  
 हो गया धरा पर क्या सचमुच रामावतार ?  
 इस समय यही जिज्ञासा मन में बार-बार  
 क्रोधित मानस अब राम मृदुलता में शीतल  
 उत्तेजित अब न अधिक प्रज्वलित अनल का बल  
 राम के सिवा कोई भी धनु तोडता नहीं,—  
 मीता-मम्बन्ध यहाँ कोई जोडता नहीं  
 अन्तिम शका को अभी मिटा लूँ तो अच्छा  
 अपने में इनका दर्शन पा लूँ तो अच्छा  
 —सोच कर यही, बोले भृगुपति 'दशरथनन्दन !  
 आभास मिल गया फिर भी शक्ति मेरा मन  
 मेरे इस विष्णु-धनुष पर बाण चटाएँ तो  
 इन नयनों को असीम बुज-शक्ति दिखाएँ तो  
 मेरे मन का अन्तिम सन्देह मिटाएँ तो  
 हे राम ! अलौकिक क्षमता अब दिखाएँ तो !'

सुन परशुराम-श्राणी, श्रीराम मुदित सहसा  
 अघरो से उज्ज्वल अमृत-फूट ही तो बरसा  
 उनके आग्रह से प्रत्यचा को तान दिया  
 इस प्रभु ने उस प्रभु की शका को दूर किया ।  
 बरबद्ध राम के सम्मुख अब श्रीपरशुराम  
 बोले वे : 'हे प्रियदर्शी पुरुषोत्तम ललाम ।  
 सर्वत्र आपकी जय हो महा लोकनायक ।  
 हे मानवता के भावी शक्तिप्रभा-दायक ।  
 अब मेरा काम समाप्त, करे अब कार्य आप  
 अनुचित शब्दों के लिए हृदय करता विलाप  
 राम से क्षमा मांगता स्वयं यह परशुराम  
 मेरे फरसे का अब समाप्त हो गया काम ।'

—इतना कह कर वे आए अब लक्ष्मण-समीप  
 स्नेहालिंगन को देख, खिले आकुल महीप  
 भृगुपति ने सीता को भी आशीर्वाद दिया  
 चलने के पहले ही सबको सन्तुष्ट किया  
 कौशिक, विदेह औ' याज्ञवल्क्य से प्रेम-मिलन  
 यह दृश्य देख कर नर-नारी के मुदित नयन  
 उनके जाने पर शुभारम्भ फिर गीतों का  
 गायन-वादन का एक साथ रसमय श्लोक ।  
 राजपि जनक का कौशिक से अब परामर्श  
 सुन उनकी कौमल बात, इन्हें संप्राप्त हर्ष :  
 'यो तो परिणम सम्पन्न, धनुष के भजन से  
 पर, वैवाहिक विधियाँ कुछ और सनातन से  
 दूत को अयोध्या भेजें हे मिथिलेश सुरत  
 इस शुभ घटना में होने दें नृप को अवगत  
 वारात वहाँ से आने दें तब ही विवाह  
 देखें उनके आने की अब मानन्द राह ।'

यज्ञ के समापन की महर्ष घोषणा हुई  
 मिथिलापति की ऋषि-नृपगण से प्रार्थना हुई :

‘विधिवत् विवाह-उत्सव तक कृपया रकें यही  
 आपकी उपस्थिति से सम्मानित हुई मही  
 मिलता ऐसा सयोग किमी को कभी-कभी  
 कैसे प्रसन्नता व्यक्त करूँ इस समय अभी  
 दो अश्वारोही दूत जा रहे अवघ-ओर  
 हे अतिथि करें दर्शन-मुख से दृग को विभोर !’

रहने वाले रह गए, गए जाने वाले  
 सब कैसे एक समान पुण्य-फल को पा ले  
 भृगुपति के जाने से कुछ के भ्रम-नेत्र खुले  
 पर, वन्द नयन-कालिमा तुरत किस तरह धुले !  
 वैवाहिक तैयारी प्रारम्भ जनकपुर में  
 गु जन ही गु जन चपल चरण के नूपुर में  
 अनगिन शिल्पीदल के द्वारा नूतन मज-घज  
 बजने लग गए गीत-मयुक्त मृदंग-मुरज !  
 रगीन चित्र में प्राचीरो पर नव मुपमा  
 अतुलित विवाह-मण्डप-शोभा की क्या उपमा ?  
 कारीगर इतने बुदाल कि रच-रच कर रचना  
 सुन्दरता इतनी अधिक कि नयनों को रमना !  
 सम्पन्न पिता भी पुत्री-परिणय-हित चिन्तित  
 वर-गौरव के अनृकूल भवन-गृह-पथ सज्जित  
 सादगी और सौन्दर्य यहाँ का दर्शनीय  
 फँली-फँगी हर ओर मधुरता मानवीय  
 जा रही वसाई शिविरो की वस्ती नवीन  
 तन्मयता से कर रहे कार्य शिल्पी प्रवीण  
 दार्शनिक-भूमि पर व्याप्त काव्य-कोमलता अब  
 रगीन हो रही भावों की उज्ज्वलता अब !

उस ओर दूत का, दशरथ में सानन्द मिलन  
 पड कर विवाह-पत्रिका, प्रफुल्ल सभी परिजन

सुन राम-पराक्रम, अति हर्षित राजा-रानी  
 परिव्याप्त अयोध्या में प्रमत्तना की वाणी ।  
 प्रिय भरत और अनुघ्न आतृ-जय से गर्वित  
 कुलगुरु वसिष्ठ राम की विजय से आत्म-मुदित  
 वैवाहिक तैयारी नृप की गुरु-अनुमति से  
 शुभ कार्य लगा होने प्रारम्भ तीव्र गति से ।  
 लेकर मुलग्न-पत्रिका दूत निकले सर-सर  
 आँखों में अकित अवघपुरी की श्री सुन्दर  
 अतिशय स्वागत-मत्कार भाव से तृप्त हृदय  
 नृप की अपार सहृदयता की, अन्तर में जय !  
 दूतों ने नहीं किया कोई उपहार ग्रहण  
 नीति के विरुद्ध न ल सकते थे वित्त-बमन  
 दशरथ के राजभवन में मंगल गीत ध्वनित  
 आनन्द-नाद में सभी रानियाँ रम-रजित ।  
 दामिनी-कामिनी की खीड़ाएँ जहाँ-तहाँ  
 गीत ही गीत से मुखरित जन-पथ यहाँ-वहाँ  
 बारात सुसज्जित हुई बश-महिमानुसूप  
 उत्तम प्रबन्ध को देख-देख कर मुदित भूप  
 अनगिन घोड़े, हाथी, पालकी और प्रिय रथ  
 आमन्त्रित जनगण से शोभित है सुन्दर पथ  
 रगीन झण्डियाँ बरलम, बछेँ, बाघ-व्यूह  
 मज्जित तुरग-श्रेणी पर युवकों का समूह  
 हाथी पर सोने के हौदे हैं कसे-कसे  
 ऊँट पर अनेकों साधु-सन्त भी चढे-चढे  
 द्वार पर बहुत ही भीड़, गीत की तीव्र गहर  
 आनन्द-तरंगित आज सभी के अग्नरतर  
 कर गणपति का शुभ स्मरण, चढे गुरु, नृप रथ पर  
 गूँजने लगे प्रस्थान-काल में दलस्वर  
 आगे-पीछे सेना की सजग टुकड़ियाँ भी  
 दोना ऐसी कि मान सुरपुर की ररियाँ भी !  
 शुभ शत्रुन देख कर आगे बढे अयोध्यापति  
 शोभायात्रा की, नगरमार्ग पर मन्यर गति

गीत ही गीत अनगिन नारी के प्रिय मुख पर  
 उल्लसित आज आनन्द-ज्वार से मुरच्य डगर  
 छत पर चढ़-चढ़ कर दृश्य देखती महिलाएँ  
 हो रही विभोर-विभोर कोमला ललनाएँ  
 युवतियाँ प्रसन्न, गोद में शिशुओं को लेकर  
 ऊपर से होती पुष्पवृष्टियाँ भी भू पर  
 प्रासाद-शिखर से सभी रातियाँ झाँक रही  
 रक-रक जाती बारात भौड़ से बही-कही  
 कनिपय पडाव के वाद मभी आए ममीप  
 मिथिला के भू पर आकर अति हर्षित महीप  
 गगातट से ही स्वागत का प्रबन्ध ममुचिन्त  
 रुचिकर भोजन से बाराती का मन पुत्रकिन्त  
 अगवानी करने वाले अब आगे आए  
 हर्ष ही हर्ष जय-युक्त जनकपुर में छाए  
 जनवासे पर राजपि जनक हैं स्वयं खड़े  
 हो ग्हे सभी के हृदय अभी में हरे-भरे  
 आई विशाल धारात वृहत् जनवासे पर  
 अनुपम प्रबन्ध से आह्लादित सबके अन्तर  
 ऋषि याज्ञवल्क्य ने धोया स्वयं वसिष्ठ-चरण  
 दशरथ-चरणों का किया जनक ने प्रक्षालन  
 मिथिलावासी ने धोए अवघ-जनों के पग  
 श्रद्धा-मत्कार देख कर आँखे स्नेह-मजग  
 जितने बाराती उतने ही सहृदय सेवक  
 मीठी-मीठी वार्ताओं से उर प्रेम-पुलक  
 जो जैसे, वसी ही रत्न-धाणी की तरंग  
 हर लेता है थकान को रसमय प्रिय प्रसंग !  
 मधुजल, मधुघूर भोजन, मुरमिन-स्वादिष्ट पान  
 तिरहुतिया खान-पान से सबके मुदिन प्राण  
 साँभो में खीर-सुगन्ध, अघर पर चिकनाहट  
 जाती न परोमी कोई वन्तु कभी अटपट !  
 नव-नव व्यंजन-मिष्ठान्न, दही हर बार मधुर  
 जनवासे के ही निवट सभी सामान प्रचुर

‘शिविरो के मध्य भाग मे एक गीत-मण्डप  
 रागानुसार त्रिण-त्रिणिन्-त्रिणिन् घा-घा-बप-धप ।  
 है विविध मनोरजन के साधन यहाँ-वहाँ  
 ऐसा आनन्द धरा पर है अन्यत्र कहाँ ?  
 बैठे थे स्वयं जनक दशरथ-समीप जिम क्षण,  
 कौशिक के संग पधारे वहाँ राम-लक्ष्मण  
 देखने योग्य था ऋषि-राजा का विकल मिलन  
 देखने योग्य था पिता-पुत्र का आलिंगन  
 बोले नृप ‘मुनिवर ! कृपा आपकी है अपार  
 आपकी दया से खुला भाग्य का वन्द द्वार !  
 दो के बदले अब तीन आप लौटाएंगे  
 आपकी कृपा से हम असीम सुख पाएंगे  
 देते हैं बदल महर्षि भाग्य-रेखाआ की  
 मिल जाते मन के फूल ललित लतिकाओ को !’

- मुन दशरथ-वचन, महामुनि बोले तुरत आज  
 ‘हम यहाँ चुकाएंगे उस ऋण का अधिक व्याज  
 तीन ही नहीं, हम आठ यहाँ लौटाएंगे  
 ऐसा करने पर ही तो हम सुख पाएंगे ।  
 राजर्षि जनक से बात हो गई है राजन् ।  
 पणिय-वन्धन में बँध सकते चारो नन्दन  
 सौभाग्य-सुशोभित स्वयं जनकपुर-राजभवन  
 खिलते हैं कभी-कभी ऐसे सयोग-सुमन ।  
 माण्डवी भरत-हित और उमिला लक्ष्मण-हित  
 शत्रुघ्न-हेतु श्रुतिवीरि नृपति । उपयुक्त अधिक  
 अवधेश-कृपा-अनुमति-हित उत्सुक मिथिगपति  
 शुभदायक ही होगी आपकी सहज सहमति ।’
- मुन कौशिक के उद्गार, अपार हृदं मन मे  
 मुस्तुरा उठे ऋषि-भक्त अवधपति उस क्षण मे  
 बोले कि ‘आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा  
 आपकी मनोकामना स्वयं देती शिक्षा ।’
- यह मुन कर बोले जनक : ‘आपने घन्य किया  
 आपने अतुल गौरव निश्चय ही मुझे दिया

इस अनुकम्पा का ऋणी सकल परिवार आज  
जयकार आज, जयकार आज, जयकार आज !  
ऐसी उदारता मात्र आपमे ही समधी !  
आभार मानती भिथिग की सम्पूर्ण मही  
हम नहीं आपके योग्य किन्तु सयोग यही  
मिलती है इतनी कृपा किमी को कभी-कभी !

सुन प्रेमभरी बात वसिष्ठ अति आनन्दित  
शुभ निर्णय से किन्का न हृदय सहना हर्षित  
चारो टुलहे को देख, सभी के मुदित नयन  
सकुचाए शील-वृत्त पर उज्जा-उलित सुमन  
निज जयी पुत्र से दधरथ ने की मधुर बात  
सीधी-सीधी बाना को सुन, उत्फुल्ल गात  
है पुष्प-देह राम की किन्तु उसमे अति बल  
पुत्र की वीरता पर प्राणों मे कौतूहल !  
जैसे बसन्त का आ जाए पहला शोका,  
सुन सुखमय जनक-वचन मव, अन्न-पुर चौका  
चारो कन्याओं का विवाह अब एक साथ  
कितने कृपालु हैं श्रीदशरथ वह अवघनाथ  
आनन्द अधिक छा गया गीतमय आँगन मे  
निस्सीम हर्ष की लहर व्याप्त नारी-मन मे  
गीत की तरंगों आर अधिक अब उद्वेलित  
प्रत्येक पुरुष-नारी इस निर्णय से पुष्टकित  
अगहन के शुक्ल पक्ष का पञ्चम लग्न-दिवस  
छलकता जनकपुर मे वैवाहिक उत्सव-रम  
ग्रह, तिथि, नक्षत्र-योग, शुभ चार-सभी उत्तम  
ज्योतिष-अनुमार नहीं कोई किंचित् भी भ्रम  
सहमत वसिष्ठ औ' शतानन्द सब विधि से अब  
सहमत भूहुत से उभय पक्ष के पण्डित सब  
बारात सजाने की दुपहर से तैयारी  
हो रही इकट्ठी हर्षाकुला भीड़ भारी



निकली सजधज कर अत्र विशाल वारात सुखद  
 शोभायात्रा नयनो के लिए परम शुभ प्रद  
 चारो के चारो भाई चार तुरगो पर  
 चारो के सिर पर शोभित रत्न-मौर सुन्दर  
 वैवाहिक वस्त्र-विभूषित हैं चारो भाई  
 मागलिक विभूषण के अनुरूप विभा छाई  
 चन्दन से चित्रित मृदुल कपोल, ललाट सुघड  
 नख से शिख तक शोभायमान हैं चारा वर ।  
 इन अनुपम दुल्हो को विलोक कर मुग्ध नयन  
 मन पर झरते है आकषण के किरण सुमन  
 वाद्य की मधुर मगल धुन सुन, आनन्दित मन  
 उस क्षण से भी अब और अधिक सुन्दर यह क्षण ।  
 अनगिन हाथी अनगिन घोडे, हैं अनगिन रथ  
 हो रहे पवित्र जनकपुर के प्रिय चिक्कन पथ  
 रह-रह कर त्र्यं-निनाद, शस्त्र के महोच्चार  
 नर्तक के कारण रुकना पडता वार-वार  
 वर को निहार कर सुन्दरियां लोचन-विभोर  
 हैं चार चन्द्र लेकिन असह्य चितवन-चकोर  
 दुलहे पर रह-रह कर होती है पुष्प-वृष्टि  
 टिक जाती उनके मुखमण्डल पर मुरघ दृष्टि  
 वारात निकट आ गई, हुई अब अगवानी  
 आनन्द-ध्वनित हो गई सरसता की वाणी  
 प्रासाद-द्वार के निकट चली आई तरंग  
 देखने योग्य है अब नारी मन की उमग  
 मियिला की मृगलोचनी उछलती अधिक अभी  
 शशिमुखियां गीत-तरंगो पर आ रही सभी  
 झटकी अब आगे चरण बढा, गजगामिनियां  
 आई ऊपर से भू पर कोमल कामिनियां  
 आरती और मगल पदार्थ गृहिणी-वर मे  
 परछन का गीत निनादित पिनकयनी-स्वर्ग मे  
 किष्किणी और वकण मे भी अब बवणन-झनन  
 अनगिन नूपुर-पायल मे झनक-झनक गु जन ।

वर को विलोक कर हुई मुनयना बहुत मुदित  
 परछन की बेला मरकी आँखें रूप-चकित  
 वर-पूजन उधर, उधर वाराती का स्वागत  
 सत्कार-प्रसन्न सभी सम्मानित अभ्यागत ।  
 मिथिला के प्रयानुमार मुप्ररित नव विधियाँ  
 वेदानुष्ठान स्वन्नियाँ उच्चरित जय-श्रुनियाँ  
 स्वागत के बाद सभी ठोटे जनवासे पर  
 सम्मान-दान से अति पमत्र मत्र के अन्नर ।  
 राजपि जनन ने किया सभी को आत्म-नमन,—  
 स्वागत न जीत लिया नमघी का कोमल मन  
 ऋषि याज्ञवल्क्य वौशिक-वसिष्ठ के अति समीप  
 चलने की बेला मिले महीपति स महीप ।  
 जनवामे पर दामियाँ बल्लभ लेकर आई  
 मगलता ही मगलता आज यहाँ छाई  
 कन्या के सुमुख-निरीक्षण की विधि भी समाप्त  
 सुन्दर मटवे को देख, नयन में हर्षं ध्याप्त  
 निश्चित मुहूर्त में शुभ विवाह का ममारम्भ  
 गणपति-पूजन से ही पूजा का शुभारम्भ  
 रानी-ममेत शुभ कार्यों में मलग्न जनक  
 सज्जित भागन मगल प्रदीप स चक्कचक्क  
 आँगन में गीतमयी युवती की अधिक भीड़  
 वैवाहिक निधि में रस निमग्न नारी-शरीर  
 चचलता की चचला छिटकती क्षण-क्षण में  
 रस का वमन्त उत्फुल्ल जनक के आँगन में ।  
 चारों दुन्दे आए कि गीत लहराए अब  
 हर्ष ही हर्ष के शब्द-सुमन छिनराए अब  
 जब न्यय पुरोहित गुरु वसिष्ठ औ' शतानन्द,  
 छूटे वैसे विवाह का कोई मत्र-छन्द ।  
 कन्याओं को जब में नृप दशरथ ने देखा,  
 उनके नयनों में खिची खिची स्मिति की रेखा  
 वर ने अनुत्प सभी वालाएँ अति सुन्दर  
 भागलिक वमन-आभूषण उनके योग्य सुवह

चारों दुलहिन अब गई बुलाई मडवे पर  
 गूँजने लगे शत विप्र-अधर पर मंत्रस्वर  
 होने को अब मंगल मनो से पाणि-ग्रहण  
 वर और वधू की भाँवर का भी आया क्षण  
 सिन्दूर माँग में पडते ही सौभाग्यवती  
 श्रीमती हुई पावन परिणय से कान्तिमती  
 धर्म के घबल यन्धन में अब तन-मन-चितवन  
 कितना पवित्र मंगलमय जीवन का यह क्षण !  
 पीले-पीले परिधान, दिव्य शोभा मुख पर  
 थी मुन्दर पहले देह, और अब सुन्दरतर  
 बालिका वधू होते ही अनिजय मर्यादित  
 कोमल प्राणों पर जीवन का दायित्व अधिक  
 वर और वधू को देख, सभी के दृग पुलकित  
 मंगल दूर्वाक्षत मंगल मंत्र-महित आपन  
 वधुओं ने अपने-अपने वर को देख लिया  
 नयनों ने नयनों को मंगल आशीष दिया !  
 आनन्द-निमग्न जनक, आनन्द-मग्न दशरथ  
 फूल ही फूल से ढँका हुआ मन का सुधि-पथ  
 माताएँ आज विभोर, विभोर सभी सखियाँ  
 आँखों को देख निमग्न आज सबकी आँखियाँ !  
 पीली घोती पहने, प्रसन्न चारों भाई  
 पुलकित होकर भी आठों आँसे सकुचाई  
 ग्रीवा में अलवार, जगुलि में अगूठी  
 देगकर नगीना की छुति, विजली भी भूँटे !  
 इतनी सुखमय सनुराल विसी को मिली वहाँ ?—  
 पृथ्वी पुत्री सीता के योगी पिता जहाँ !  
 लक्ष्मी विराजती जहाँ, वहाँ क्या नहीं प्राप्त ?  
 सुख ही सुख चारों ओर यहाँ पर आज व्याप्त  
 अब मंगल गीत कोहर में गूँजने लगे  
 चारों वर को अब स्नेह-भरे ताम्बूल मिले  
 कोमल किशोरियों के रसमय परिहास आज  
 चंचल बातों में मधुर-मधुर मधुभास आज !

दीती विवाह की निशा, उषा निकली नवीन  
 नयनो की मुग्ध नयनो मे कैसे हो विलीन ।  
 अनुकूल रागिनी-रस मे डूबे वाद्य सबल  
 हेमन्ती प्रात-प्रभाकर से नभ अरणोज्ज्वल ।  
 रथ मे चारो भाई आए जनवासे पर  
 देख कर उन्हे उल्लसित मार्ग पर नारी, नर  
 पूज्यवर पिता, गुरु स सबको आशीष प्राप्त  
 उनके आन मे जन-मन मे आनन्द व्याप्त ।  
 अन्त पुर मे कोई भी वर रुठा न आज  
 अति चकित खीर-भोजन-बेला नारी-समाज  
 मांगा न उन्होन साम-मधुर से भी कुछ भी  
 बोले इतना ही गोलवान थीराम अभी  
 'स्नेह के निवा हम क्या मांग हे मां उदार ।  
 चाहिए आपका सदा प्यार—सर्वदा प्यार  
 पुत्र के लिए माता का प्रेम अमृत ही तो  
 वैसे म्बीवार सभी कुछ, मिल जाए जाँ-जो ।'  
 —यह मुन कर सखियो ने अनेक प्रिय व्यग्य किए  
 माताको ने भरपूर उन्हे उपहार दिए  
 मध्याह्न काल मे भात-दाल का प्रिय भोजन  
 छप्पन प्रकार के स्वाद-मफल सुन्दर व्यजन  
 गीतो मे ही गाणियां मधुर, वाराती को, —  
 नमघी दगरथ को—उनके अपने माथी को ।  
 ढोलक को बजा-बजा कर समघिन को गारी  
 मीठी चुटकी ले रही गीत-चंचल नारी ।  
 प्रिय याममती चावड का भान गमकता है  
 मुग्धभक्त चित्रे पर भी दधि नूब चमकना है  
 फुडफुडा रहे हैं योग तिगौरी को बड-बड  
 वे नुरक रहे हैं नकरीरी को अब सर-सर  
 हो रही मांग अब हर दिशि बगी-फुगौरी की  
 हो रही मांग बचके की और अदौरी की  
 चल रहा दही पर दही और उस पर टक्कर  
 चर रहे साग-भाजी, चटनी, पापड, तक्कर ।

मडवे पर समधी और उन्ही के सम्बन्धी  
 रघुवर के साथ-भाय हैं उनके अनुज सभी  
 गारी मुनने में आता है आनन्द आज  
 झर रहे कामिनी के मुख से छन्द आज !  
 भोजन के बाद मसाला-पान-मुपारी भी  
 गारी मुन-मुन कर चलने की तैयारी भी  
 चलते-चलते भी गम के छींट पड़ते हैं  
 आनन्द-सुमन सबकी साँभो से झरते हैं !

इस तरह अनेको दिन बीते तब विदा-घटी  
 अन्त पुर में सबकी आँखों में अश्रु-जड़ी  
 वैवाहिक महामहोत्सव का अव्यकरण रग  
 काँपने लगी करुणा के कारण रस-नरग  
 श्रु गार-वेग अब गिथिल, गिथिल उर की हिलोर  
 हो गए बन्द हर्षोत्सव के चंचल झकोर  
 उल्लसित जनकपुर में न चपल उल्लास कहीं  
 रोती है मन-ही-मन सीता की मातृ-मही !  
 मिथिला में करुणामयी उदामी आई-मी  
 जानकी-विदाई की बेला अब आई-मी  
 अनगिन वस्तुएँ जनक ने श्रीदशरथ को दी,—  
 प्रत्येक व्यक्ति को उचित विदाई अर्पित की  
 घोटियाँ पहननी पड़ी सभी को लाल-लाल  
 यह विदा-काल, यह विदा-काल, यह विदा-काल  
 समधी को समधी ढाला अर्पित करते अब !  
 अन्निभ प्रसन्नता-क्षण में आँसू झरते अब  
 जानेवाली बेटियाँ सभी रो रही आज  
 रोने की ही अब बात यहाँ हो रही आज  
 पोसी-पाली पृत्रियाँ आज जाने को हैं  
 कुछ ही घड़ियों में असह्य घड़ी आने को है !  
 सीता की मखियों के मुँह पर अब बात नहीं  
 रसमय वाणी की आज मरस बरसान नहीं

चारो सुकुमारी मखिया जाने वाली हैं  
 विछुडन की बेला जल्दी आने वाली है !  
 देखकर सभी को सीता आज सिसक पडती  
 फूली-फूली आखा से अब मुधियां झरती  
 विछुडन की बेला आज प्राण फट जाने को  
 जी करता, सबकी छाती से सट जाने को !  
 प्रिय मन्वी-वहिनपा रो उठती है मिल-मिल कर  
 किन्ता कुम्हलाया-कुम्हलाया कोमल अन्तर  
 कुम्हालाए है सब कमल गुलाब और गेंदे  
 दीतेगे इनके बिना हाय, अब दिन कैसे !  
 गिरिजा-मन्दिर मे सीता नहीं मिलेगी अब  
 माण्डवी बाटिका मे हंस कर न खिलेगी अब  
 उमिला नही चुनने आएगी शेफाली  
 ध्रुतिकीर्ति न दिखलाएगी किमलय की लाली !  
 अब कौन कहेगी बंदिक कथा सरोवर मे ?  
 खोसगी कौन प्रमून कपोती के पर मे ?  
 टुक-पिक को कौन तृणागी अमराई मे ?  
 चमकगी उतनी कौन चन्द्र-परछाई मे ?  
 सीकी की फुलडरिया अब कौन बनाएगी ?  
 अब कौन आम-महुआ का व्याह रचाएगी ?  
 सामा चाको का खेल रचेगी कौन यहाँ  
 सूनेपन को अब मजग करेगी कौन यहाँ !  
 किसकी बोली नुन, कोयल स्वय लजाएगी  
 बादल के दिन मे वीणा कौन बजाएगी ?  
 अब किसे देव कर उछलगे नन्हे बछडे ?  
 हो जाएंगे किमको निहार कर हरिण खडे ?  
 —सीता की सन्नियां अग्रिम चिन्ता से आकुल  
 कोमल-विह्वल मवकी आँखें अब सुधि-सकुल  
 माताओं के सुखमय दुख का अनुमान नही  
 अब करुण हृदय पर कुसुमित हर्ष-वितान नही !  
 माताओं ने कन्याओं को उपदेश दिया,—  
 सुन्दर-सुन्दर वातो को कह, सन्तुष्ट किया

उबटन ऋगवा कर राम सास-गृह मे आए  
 सुनकर विनोद-वाणी, वे किंचित् मुमकाए ।  
 बोली मुख-सजल सुनयना रघुवर से उस क्षण :  
 हे धर्मपुत्र ! सीता धिरीप-भी मृदुल मुमन  
 हम सत्र के प्राणो से भी बढ़ कर यह प्यारी  
 जानकी स्नेह की कली नहीं केवल नारी ।  
 वंसा ही गुण इनमे, जंसा ही रूप-रग  
 इसके अन्तर मे व्याप्त अमृतमय ही उमग  
 देखते इसे रहिएगा हे श्रीराम । मदा  
 सीता जब से जनमी तत्र से ही वह शुभदा ।'

जनवासे पर दशरथ ने कहा जनक से अब :  
 हे समधी ! सत्कारो से आनन्दित हम सब  
 मिथिला मे ही सम्भव ऐसा सम्मान-दान  
 आपकी प्रीति का कवि ही कर सकता वखान  
 है ज्ञानभूमि मिथिला कि अतुल सम्मान-भूमि  
 यह गान-भूमि या निरूप म प्रेमप्रधान-भूमि  
 भूलेंगे हम न आपके प्रिय सत्कारो को  
 रक्खेंगे सदा सँजो कर प्रीति-पुकारो को  
 हैं आप अतुल राजर्षि दार्शनिक नृप विदेह  
 जग-जीवन के प्रति चेतनमय आपका स्नेह  
 हम गौरवशाली हुए आपकी गरिमा से  
 हो गई अयोध्या धन्य मैथिली महिमा से ।'

—नुन दशरथ-वचन, जनक का उर सक्वोच-सजग  
 निकले मुख से आनन्दमग्न मधु वाक्य सुभग :  
 हे महा अवघपति ! आप बहुत ही पुण्यवान  
 आपके वश मे हुए अनेको नृप महान  
 उत्पन्न हुए श्रीराम आपके कारण ही  
 उनके समान पुरुषोत्तम भू पर नहीं वही  
 धनु-यज्ञ सफल करने वाले तो वही एक  
 ले आया उन्हे यहाँ केवल कौशिक-विवेक

उनके ममान द्युतिदर्शी ऋषि दुर्लभ जग मे  
 पंदल ही आए राम हरित मिथिला-भग मे  
 रघुवर जीवन-पथ पर पंदल चल सकते हैं,—  
 आलोकित साहम वे अपने मे रखते हैं ।  
 हे नृपति ! आपकी क्षमता मुझसे बहुत बड़ी,  
 मेरा मौभाग्य कि मुझ पर कृपा-विरण विन्वरी  
 शिव-मफल किया राम ने ज्योतिमय परिणय-प्रण  
 हो गया पूर्ण मेरा निगूट चित्ति-आराधन ।'

वाराण विदाईं उघर उघर भी विदा-रदन  
 हो रहा अमह—हो रहा अमह पुनी-विद्युडन  
 अथु ही अथु अब, बेकाः रोना ही रोना  
 करणा से रिक्त नहो उर का कोई कोना ।  
 हो रहा हृदय का हरण स्नेहमय विद्युटन मे  
 कुछ निकल रहा है आज प्राणमय जीवन से  
 आकुल आँखों से वहता है मुग्ध-मजल स्नेह  
 कितने उदाम ऋषि धानवल्क्य, राजा विदेह !  
 आमाना ने उनके चरणों का किया स्पर्श  
 इस समय आँसुओं से भोगा है नयन-दृषं  
 कम्पित आशीष-वचन, भुरभित करणा मन की  
 वेदना गहन होती बेटी के विद्युडन की ।  
 माता की प्राण-विकलता मे आकुल लोचन  
 नारी-रोदन से करण रागमय राजभवन  
 भीता ने पितृ-वरण को सहसा पकड लिया  
 रोकर उमने उनको भी दो क्षण रला दिया :  
 'उठ-उठ सीते ! उठ-उठ सीते ! उठ-उठ सीते !  
 प्यारी पुत्री ! अबि जनक-हृदय की नवनीति ।  
 आज से हमारा घर सूना हो जाएगा  
 जाने कवनक मेरा यह मन अबुल्लाणा !  
 तू अनामक्ति की मिट्टि, ऋद्धि तू भतल की  
 तू मर्यादायिनी शोभा है आत्मिक बल भी



तू मिथिला की महिमा, तू मेरी बेटी है  
 तू ने तो मुझे स्वयं अपनी आभा दी है !  
 तू क्या है, इसको जनक स्वयं पहचान रहा  
 बेटी ! मैं तुझे अलौकिक छवि ही मान रहा  
 तू ने अपने ही ढूँढ लिया अपन वर को  
 तू ने महिमामय बना दिया मेरे घर को !  
 बंदेही ! तू विदेह को रखना सदा याद  
 करना त कभी जीवन में साधारण विषाद  
 तेरे पति तेरे ही सुयोग्य है सब प्रकार  
 मिटने वाला है उनसे ही अमुरान्धकार ।'

चारों बेटी से मिले जनक भावुक मन से  
 छलछला उठे आसू अकुठाए लोचन से  
 गिर पड़ी जानकी याज्ञवल्क्य के चरणों पर  
 कर्णा से कांप उठा ऋषिवर का अन्तरतर ।  
 भीतर-बाहर रोती-चिन्ताती-सी नारी  
 लगता कि रो रही आज जनक की फुलवारी  
 स्वर्णिम पिंजड़े के सुरंगे भी रो रहे आज  
 आकुल-व्याकुल, व्याकुल-आकुल नारी-समाज  
 जा रही जानकी, ओ आँखें ! देख लो तनिक  
 छटपटा रही आकुल माताएँ अभी अधिष  
 चारों बहनें डोली में चली गईं रोती  
 श्रद्धित बधुएँ अब भी मन पर पीडा डोती  
 चारों पाहुन अब बँठ गए अपने रथ पर  
 भीड़ ही भीड़ दुस-विकल नारियो की, पथ पर  
 उठ रहों डोलियाँ, हाहाकार मचा सहसा  
 अत्यन्त सजल, अत्यन्त सजल अब प्रेम-दशा  
 अकुलाहट ही अकुलाहट, श्रन्दन ही श्रन्दन  
 निष्प्राण-मदूना हो गए विभूज जनक इम क्षण  
 पालकी लिए निकले बहार निरंज होकर  
 सबके प्राणों में लगी स्नेह-मुग्धि की ठोकर

सीता की सखियों ने ढोली को घेर लिया  
नयनों ने अन्तिम वार नयन को हेर लिया  
स्वयं ही जनक ने किया राम को अब प्रणाम  
हँस पड़े राम—हँस पड़े राम—हँस पड़े राम !



## अयोध्याकाण्ड

उत्फुल्ल अयोध्या मे आनन्दित विष्णु-प्रात  
 लक्ष्मी-सी नव लालिमा-लहर मे लुप्त रात  
 असमय वासन्ती प्रकृति नयन-मन मे लक्षित  
 नूतन प्रकाश नूतन शोभा से सरक्षित ।  
 हर्षित दशरथ लौटे मिथिला से पुन-सग  
 जन-मन मे पावन दर्शन-हित लोचन-उमग  
 सरयू-तरंग-सी उठती-उठनी उत्मुक्ता  
 आनन्द-पुष्प-आच्छादित अनगिन बाहु-लता  
 स्वागत का ऐसा ज्वार न देता गया कभी  
 दशरथ का रथ उस ओर तुरत मुह गया अभी  
 वह देखो, उस उत्तु ग अश्व पर मेनापति  
 अब उधर नारियो के स्वर मे प्रिय गायन-भक्ति ।  
 सम्पूर्ण नगर ही इन्द्रपुरं -सा सजाघजा  
 गृह-शिखरो पर लहराती जय की विजय-ध्वजा  
 फूलो के त्रिखरे वैभव-सी सुपमा अपार  
 सुरभित वन्दनवारो से शोभित भव्य द्वार  
 कुमुमित कदली, मगल कलशी, दुर्घि अगुरुम  
 हर मुख्य मार्ग पर गाते गायक भूमभूम  
 तरुणिमां वजाती वाद्य त्रिविध रागानुसार  
 ऊपर से भू पर फूट वरसते वार-वार  
 सरयू-कछार मे साधु-सत की भी टोली  
 सबके अधरो पर प्रिय प्रसन्नता की बोली  
 शंभो पर नूर्य-निनादित मुनि-गण निव-समान  
 कुछ बृद्ध तपस्वी खडे-खडे कर रहे ध्यान !

लगता कि सभी के घर में पुनवध आई—  
 घर-घर में वीमन्या की प्रीति-प्रभा छाई  
 आरती सजाती हर गृह की हृषित माता  
 विस्रवो न राम-रक्ष्मण में स्नेह-नजग नाता ।  
 दशरथ-भरत केव-दशरथ के लाठ नहीं  
 ये चारो भाई केवट राज मराल नहीं  
 घर-घर में उनकी मानाएँ उनके भाई  
 देवी सीता क्या गजभवन में ही आई ?  
 दाका न कभी भी कहीं प्रेम-नमरसना में  
 मुखमय आनन्द-नरग प्रीति-परवशता में  
 जन-जन को अवगन नरण राम का गण-विचार  
 मानव मर्यादा पर आश्रित स्वामित्व-भार ।  
 आ रहा राम का रथ अब पथ पर मन्द-मन्द  
 उन्चरित हो रहे गुभागमन के जयति-छन्द  
 अनुशासन में अब नहीं भीड़ दूटी बनार  
 उनडी जनता प्रत्येक ओर से एक वार  
 हो गए खटे निज रथ पर रामचन्द्र सन्मित  
 प्रिय-दर्शन से परितृप्त नयन कितने पुत्रकित  
 चितवन में अकिन एक साथ चारो भाई  
 उर में प्रसन्नता ज्यो पूनम की परछाई  
 प्रासाद-पथ की ओर नारियों का समूह  
 तरणियाँ तोड़ती जाती प्रहरी-सैन्य-भूह  
 दुलहिन को देखे बिना नयन को चैन कहाँ ?  
 डोलियाँ जहाँ, सुकुमार चरण भी वहाँ-वहाँ !  
 प्रासाद-द्वार पर सीनो ही रानियाँ खड़ी  
 गीतो में डूवों राजरमणियाँ हर्ष-भरी  
 वैदिक पद्धति में वर-वधुओं का नुर-स्वागत  
 साकार लक्ष्मियाँ देख, प्रतीक्षित लोचन न  
 विधि की अनुकम्पा से ही सुन्दरतर जोड़ी  
 सुकुमारी सीता चारु चन्द्रमा-सी गोरी ।

आई जब से बँदेही तब से श्री-समृद्धि  
 सम्पूर्ण राज्य मे हुई विविध ऐश्वर्य-वृद्धि  
 अनुकूल ऋतु-ऋपा से विकसित भौतिक वैभव  
 सामूहिक श्रम से प्राप्त सम्पदाएँ नव-नव  
 नैतिक विवेक-विद्या से ज्योतित सदाचार  
 मर्दन मत्स्य-आचरण, शील-संस्कृत विचार  
 मानव-मर्यादा का प्रति दिन सम्यक् विकास  
 फँसने लगा अब स्वयम् राम का रवि-प्रकाश ।  
 गृह-गृह मे चारित्रिक महिमा का सहज बोध  
 बन्धुत्व सदा ही स्नेह-सबलिन निर्विरोध  
 देवता-सदृश मम्मामित नित्य पिता-माना  
 पूजित शिष्यों से ऋषि-ममान विद्या-दाता  
 सम्पृक्त प्रीति के कारण ही गृह-युद्ध नहीं  
 श्रद्धालु नारियाँ कभी अमुर-सी ऋद्ध नहीं  
 सात्त्विकता पर ही आधारित परिवार-धर्म  
 सज्जनता से सयमिन महज ही मभी कर्म  
 मन, कर्म, वचन मे सत्य-मजग निष्कपट मेल  
 मानव-जीवन केवल रे केवल नहीं सेल ।  
 निष्क्रिय न रहे कोई, स्वराट्ट का प्रथम ध्येय  
 प्रत्येक व्यक्ति-क्षमता से ही शासन अजेय  
 आई जब से जानकी, हो गया स्वर्ग भवन  
 शोभा की दीपनिखा ही तो बँदेही-नन  
 मणिकान्ति-त्रिरण-मा जगमगजग उज्ज्वल शरीर  
 पति की प्रसन्नता मे विभोर नित चित्त धीर  
 वह पद्मलोचना राम-प्रिया : सौन्दर्य-मूर्ति  
 पृथ्वीपुत्री : आनन्द-ज्योति की अतुल पूर्ति  
 आनन्द-मुग्धा से सित्त देह की क्षुति पवित्र  
 मुन्दरता के इतिहास-ग्रय की वह मुचित्र  
 पावनता का साम्राज्य व्याप्त अन्तरनर मे  
 कल्याण-वमल प्रतिपल प्रफुल्ल कोमल कर मे  
 वाणी से अमृत-मधुरता का झरता पराग  
 अनुराग-राग मे ही मन वा उज्ज्वल विराग

ऐसी मँथिली अलकृत निज अन्त पुर मे  
 मन की वासन्ती गीति शरद-सुरभित सुर मे  
 कमनीय परिस्थिति मे करुणामय कर्म-योग  
 प्रिय प्रकृति-पुरुष-सा महाभाव मे भव्य भोग  
 प्रेरणा राम को प्राप्त उचित कर्त्तव्य-हेतु  
 शासन, जनगण के बीच राम नित म्नेह-सेतु  
 सहयोगी भ्राता का अग्रज पर प्रेम-भक्ति  
 सुत-वर्मकुशलता निरख चतुर नृप मे विरक्ति  
 कँकेयी से बोले दशरथ— हे प्रिय रानी,  
 चारो पुत्रो मे कौन श्रेष्ठ शासन-जानी ?  
 मुन्दरी प्रिया ने कहा—‘राम से श्रेष्ठ कौन ?’  
 इतना ही कह कर, वह हँसनी-सी हुई मौन  
 पर, कौसल्या बोली कि ‘भरत अनि प्यारा है  
 अतिगय विनम्र वह लोक-नयन का तारा है’  
 झुक गई कमलिनी-सी कँकेयी यह मुन कर  
 मुसकाई मौन सुमित्रा शब्द-सुमन चुन कर ।  
 इतने मे पिजड़े का झुक बोला—राम-राम  
 राजा-रानी ने मुना विहग उच्चरित नाम  
 सुगगे के निकट गई कँकेयी फल लेकर—  
 दौनो कौमल दृग मे प्रसन्नता-जल लेकर ।  
 उस दिन प्रिय रथ पर राम-भरत निवले बाहर  
 सग मे सुमित्रानन्दन भी सानन्द मुखर  
 चलते-चलते भरयू-तट पर तीनों आए  
 उन समय गगन मे कुछ बादल-दल लहराए  
 बन्कल-बसना-मी सध्या भरयू पर छाई  
 उस पार वृक्ष-दिखरो पर गरिब अरणाई  
 तट पर हो गए सडे कुछ क्षण तीनों भाई  
 वे सडे रहे, जब तक न पूर्णिमा छिनराई ।  
 उस एक चाँद मे तीनों की सुरभित नुधियां  
 तीनों के उर मे शीत-नरगित अम्बुधियां  
 घो दिया सभी चरणों को तब तब मरि-जल मे  
 शीतलता की स्वीकार किया पग-उत्पल ने ।

लौटे वे रघुकुल की प्रेरक चर्चा करते,—  
 अनुजो के अन्तर-घट में ऋचा-अमृत भरते  
 उमिला, माण्डवी, सीता उधर प्रतीक्षा-रत  
 आते ही निज-निज गृह में सरस प्रिया-स्वागत ।  
 दीपिका ज्योति से स्नेह-सजग मुन्दर रजनी  
 आँखें अपनी आभा की उज्ज्वल लता घनी  
 आनन्द-मधुरिमा से रसमय दाम्पत्य-प्रीति  
 मधुमय वार्ता में कभी-कभी कुछ शास्त्र-नीति  
 सम्पूर्ण प्रेम पाकर पति से, सीता विभोर  
 गुण ही गुण के अनुप हृदय में शुचि हिलोर  
 अनुपम आकर्षण में मनमोहक दिव्य कान्ति  
 सर्वोत्तम सुन्दरता वह जिसमें सौम्य कान्ति ।  
 वाणी-विहीन उर-भाव, नयन में अमृत-किरण  
 सर्वदा शील-सम्पन्न मुदित बँदेही-मन  
 अधरो पर पुष्पित शब्द, सरस सक्षिप्त वाक्य  
 नख-शिख तक निर्मलता, न कभी भी नारि-नाट्य ।  
 मुख पर अद्विरल मुस्कान प्रात-सरसिज-समान  
 मन-कर्म-वचन से सदा रुचिर आनन्द-दान  
 नीलाम्बुज-सम थी राम, हृदय-सीता पराण  
 सम्पृक्त समर्पण का स्वाभाविक आत्म-रमाय ।  
 प्रत्येक परिस्थिति में प्रेमिल उर-दशा एक  
 इन्द्रिय-सयम की शोभा से शीतल विवेक  
 सेवा-श्रद्धा से पूर्ण मधुर दाम्पत्य-धर्म  
 सद्गुण से ही संप्राप्त परम्यर प्रेम-मर्म ।  
 रवि-रश्मि-सदृश ही राम-जानकी एकदेह  
 शशि-सा घटता-बढ़ता-सा नहीं अमीम स्नह  
 आश्रित जीवन में सदैव वत्तंब्य-ज्ञान  
 दो रूप किन्तु दोनों में ज्योतिर एक प्राण ।  
 सेवा-प्रसन्न माताएँ पुण्य-सफलता-सी,—  
 आनन्द-पूर्णमा की शारद निर्मलता-सी  
 कुन्वघुओ का वत्तंब्य देख, दुग घन-मयूर  
 आत्मा की स्नेहिल किरण प्रेम से नहीं दूर ।

सुत-कर्मकुशलता से दशरथ निश्चिन्त सदा  
 वर्षों से शासन पर न कभी कोई विपदा  
 है कहीं न कोई प्रजा दुखी, ऐसा प्रबन्ध  
 शासन-अधिकारी नहीं वही मद-मोह-अध !  
 सुन सका न कोई उपालभ सका न कहीं  
 शस्यो की सोने-चाँदी से भरपूर मही  
 पहले से बहुत अधिक मचमुच कृषि में मुघार  
 विद्या-वैभव के संग कलाकोशल-प्रसार  
 चारों पुरों में उठा लिया शासन-प्रभार  
 फैलने लगा कोने-कोने तक यश अपार  
 हर ओर कर्मयोगी मुपुत्र का प्रिय प्रकाश  
 हो गया शक्ति को देख स्वयं ही शत्रु-ह्रास  
 दशरथ का राज्य नहीं, अब तो यह राम-राज्य  
 आत्मज-क्षमता को देख धर्मत मुकुट त्याज्य  
 रघुकुल में राम-सदृश कोई भी व्यक्ति नहीं  
 मिल सकी पूर्वजों को ऐसी रवि-शक्ति नहीं !  
 इक्ष्वाकु-वंश का आदि भूप वैवस्वत मनु  
 उस सूर्य-पुत्र का ज्ञान-किरण से भासित तनु  
 अपनी विवेक-वाणी से अर्जित शब्द-सिद्धि  
 राजर्षि-मदृश शुचि योग-भोगमय सुख-समृद्धि !  
 गिरि-गौरव-सा उत्तुंग चन्द्र-सुन्दर दिलीप  
 वीरता-विभूषित नीति-निपुण जन-प्रिय महीप  
 गो-सेवा का आदर्शपुरुष स्मरणीय सदा  
 श्रेणी सभक्ति सन्तान-प्राप्ति-हित व्रत-विपदा !  
 नन्दिनी-परीक्षा में उत्तीर्ण दिलीप-दृष्टि  
 रानी मुदसिणा ने की इच्छित पुत्र-सृष्टि  
 उत्सर्ग-चकित शिव-सिंह अतुल सेवा-प्रसन्न  
 अभिलाषा पूर्ण कि ज्यो वसन्त में घरा-अन्न !  
 विरयात अयोध्यापति रघु कुल-सम्राट् प्रथम  
 राज्याभिषेक के बाद दिग्विजययात्रा-रथ  
 हिमगिरि से सागर तक स्वराज्य का जय-प्रसार  
 अनुपम मेना-सगठन, शौर्य-क्षमता अपार



उन्नत कोसल-माम्राज्य कि ऐसी सुख-समृद्धि  
दुर्जन-विनाश से सज्जन-सुख की विमल वृद्धि  
सक्षम शामन से ही सम्भव स्वर्णिम विराम  
भारत के चारो ओर व्याप्त रघु का प्रकाश !  
ऐश्वर्य-शिखर पर पितृ-पूज्य अज आञ्छेकिन  
निरुपम मेरी जननी थी इन्दुमती गुण म्मिन  
मैं दशरथ धर्म-प्रधान कर्म का विश्वासी —  
मयमिन शश्रुहन्ता, अमरुत्व-शक्तिनाशी  
देव-व-सुरक्षा-हित रण-पथ में मन निर्मय  
जीवन में करता रहा अनेको जय पर जय  
सम-भक्तिभाव में किया प्रजागण का पालन  
समुचित प्रबन्ध से ही सभव सुखमय शामन  
निर्मल विवेक-परिपूर्ण मनिगण शीशवान —  
मित भापी मधुर, चतुर, मञ्जन, विद्या-प्रधान  
निष्पक्ष न्याय करने में मन का स्पष्ट भाव  
क्लेश-चेतना हिन नित आञ्जम से दुराव  
प्रत्येक कर्मचारी सेवा-रत कर्म-कुशल  
मन-वचन-कर्म में सकल्पित शामन-मगल  
मन्वद्ध केन्द्र मत्ता से मचालित विभाग  
एकता-पद्म में ही अनेकता का पराग  
पीडित न व्यथा से मम्प्रति कोई नगर-ग्राम  
पाया जब से मैंने शरदिन्दु-समान राम !  
सुख-शीतलता की मधी और चन्द्रिका-वृष्टि  
है राम-सदृश ही भव्य भरत की प्रेम-दृष्टि  
दोनों के महयोगी क्षत्रुघ्न और लक्ष्मण  
चारों को पाकर स्वर्ग-सुनृप्त पितृ-लोचन !  
सब मेरे दृग के सूर्य-चन्द्र, सब हैं समान  
है कौन नहीं मेरे प्राणा का ज्योति-प्राण ?  
पर मेरे मन में राम-हेतु सुविशेष मोह  
सह सक्तता कभी नहीं उमका दुन्मह विद्योह !  
इसलिए कि वह है बड़ा पुत्र ? यह नहीं जान  
झरता है उसके तन से आभा का प्रपान

है नील पद्ममणि-भी प्रसन्न प्रिय राम-कान्ति  
 मिलती मयूर-नयनो को मेघानन्द-शान्ति ।  
 है नही शौर्य-सज्जनता की ऐसी उपमा  
 साक्षात् विष्णु-भी कान्तिमान तन की सुपमा  
 लगता कि पूर्व जन्मो के तप-फल-मा सुपुत्र  
 भूल कैसे शिवधनुष-भंग का कथा-सूत्र ।  
 पृथिवीपुत्री सीता की अद्भुत जन्म-कथा  
 जब से वह आई, नही किनी को कभी व्यथा  
 कहती थी कौमल्या कि अलौकिक नारी वह  
 शोभाओ की शोभा अपूर्व अवतारी वह ।  
 कहती थी कौमल्या कि जानकी ज्योतिनयी  
 उसकी मुदिव्य मुन्दरता प्रति दिन नित्य नयी  
 कहती थी मुझे मुनिमा सीता प्रभा-शक्ति,—  
 उनके मुख-दर्शन से आँखो में राम-भक्ति  
 रवि-कुल में नूतन रवि, नव आशा-किरण आज  
 राम ने मदा ही मुदित सब उ मानव-समाज  
 है पुन-कीर्ति में मचमुच आज पराजित में  
 आपकी कृपा ने हे प्रभु ! है अति पुलकित मैं ।  
 अब राम-राज्य के लिए प्रजा अति इच्छुक-सी  
 अनगिन आँखें कामना-नरगिन भिक्षुक-सी  
 मैं स्वयं भोर का दीपक प्रात-श्रीक्षित-सा  
 अव्यक्त एक निर्णय में काल-परीक्षित-मा  
 मैं वृद्ध वृक्ष-मा दगरथ सब विधि सतोषी  
 कर्त्तव्य विभुसता का न कहाऊँ मैं दोषी  
 अब शक्ति-शियिल प्रत्येक अंग, मन वैरागी  
 शिशिरावस्था में हृदय राज-रुचि का त्यागी  
 पुत्रों के कारण टिका चक्रवर्ती-प्रकाश  
 मेरे पनझर में स्वयं राम ही कुमुम-भास  
 वह अनासक्त कर्त्तव्य-पुरुष नित कर्म-लीन  
 पुरपोत्तम-गुण-सम्पन्न राम मृदुता-प्रवीण  
 वह वीर धनुर्धर, उमका सदा अमोघ बाण  
 अन्याय-शमन के लिए मतुलित महाप्राण

ताडका-विनाशक असुर-तिमिरता के विरुद्ध  
 सग्राम-काल में भी उसका मुख नहीं ऋद्ध !  
 रण में भी मन स्थिर, चिर प्रसन्न, अविक्ल लोचन  
 इन्द्रिय-मृणाल पर आत्म-सुवासित पद्म-चदन  
 मनु-कुल में ऐसा वहाँ, कहीं देहात्म-बोध ?  
 अब तक न राम का वही हुआ कोई विरोध !  
 गुणसिन्धु-मयन से प्राप्त पुण्य-पुष्पित शरीर  
 जिस ओर राम, उस ओर मनुज की बहुत भीड़  
 उच्चरित नहीं किस घर में प्रेरक राम-नाम  
 उसके प्रताप से ही शासन का सुलभ काम !  
 मैं बयोवृद्ध दशरथ कबतक भूपाल रहूँ  
 किस समय भूँजती-सी मैं अपनी बात कहूँ  
 सुत को न समय पर देता जो नृप राज्य-भार,  
 छा जाता उसके निकट दोष का अन्धकार !  
 शोभित न श्वेतकेशी सिर पर किरीट मणिमय  
 दपण-प्रतिविम्ब त्याग-हित करता नित्य विनय  
 छजता न वसन-भूषण सुन्दर, जर्जर तन पर,  
 पढता प्रतिबुल्ल प्रभाव, अधिक रागी मन पर !  
 भयार्दा से ही तो रक्षित आदर्श-रूप  
 जन-भाव न समझे वह न कभी भी सफल भूप  
 होता न व्यर्थ सुविवेक-भरा सात्त्विक विचार  
 खोलती सत्य-चेतना धर्ममय कर्म-द्वार !  
 केवल अतीत की मुघा न पीता वर्तमान  
 सुन्दर भविष्य की चिन्ता करता महत् ज्ञान  
 एकता न कभी भी काल-चेतना का प्रवाह  
 है सहज नहीं समार-सिन्धु की सलिल-थाह !  
 ऊपर ही ऊपर नहीं विश्व, भीतर भी जग  
 मिथ्या न कभी भी ब्रह्म-विचुम्बित माया-मग  
 सत्कर्मों का दायित्व मनुज का महाव्येय  
 उत्तम कार्यों के लिए पुण्य को प्रथम श्रेय !  
 विपरीत बुद्धि से ही होता व्यक्तित्व-हास  
 साक्षी इतिहास-पुराण कि कैसे, वहाँ नाग

मिट जाता धूमकेतु-सा सत्ता-अहकार  
 सुनता न घमण्डी पुरुष चेतना की पुकार ।  
 मैं दशरथ, गुण-अवगुण की लहरो से सचेत  
 मेरी उर-सरिता के तट पर भी पीत रेत  
 मेरे मन में भी हर्ष विपाद-भरी भाषा  
 जाने कब पूरी होगी मेरी अभिलाषा ।

बीती अनेक सुखमय हेमन्त-वसन्त-शरद  
 आई न कभी कोई काली रजनी दुख-प्रद  
 नृप की इच्छा में आयोजित सुविशाल सभा  
 छाई हर ओर उमग-भरी आनन्द-प्रभा  
 आमन्त्रित पंडित, प्रमुख नागरिक, ऋषि-मुनिवर  
 प्रत्येक उपस्थित जनगण का स्वागत सुन्दर  
 दशरथ-मुख में सम्मान-शब्द मुन सभी मुदित  
 शीतल वाक्यों की चन्द्र-सुधा से उर तिरपित  
 'कैसे मैं कहूँ कि वैना मेरा राजधर्म,—  
 अपने पूर्वज-सा किया कहीं तक नृपति-कर्म  
 सन्तान-समान प्रजा-पालन कर सका कहीं !  
 घर-घर का दुख सचमुच दशरथ हर सका कहीं !  
 मुझसे जितना बन सका, किया उतना ही तो  
 छिपनी न छिपाए, छिपी हुई असफलता जो  
 दामन में कुछ नुटियाँ तो रह ही जाती हैं  
 मेरी आँखें चुपचाप बहुत मनुचाती हैं ।  
 प्रभु-वृषा कि मेरे पुत्रों ने कुछ किए काम  
 कर्मों के कारण ही प्रसिद्धि पा सके राम  
 मैं स्वयं कहूँ कैसे सुत के गुण का वर्णन  
 संभव है जान चुके होंगे सहृदय जनगण  
 श्री राम सुशिक्षित, शास्त्र-शस्त्र-विद्या-प्रवीण  
 वे नहीं चाहते कोई भू पर रहे दीन  
 है शील-पराक्रम का उनमें अद्भुत मिलान  
 समदर्शी आँखें रखती हैं भव और ध्यान

मैं वृद्ध पके फल सा, जाने कब गिर जाऊँ  
 ढीले शरीर से कितनी सेवा कर पाऊँ ।  
 अन्तिम इच्छा मेरी कि बने युवराज राम,—  
 यो वही देखते वर्षों से सब काम-धाम  
 अनुमति दें सब कोई कि कहूँ इच्छा पूरी  
 अब अधिक नहीं है मेरी सध्या की दूरी  
 अभिषेक-महोत्सव को देखूँ मैं भी सहर्ष  
 इस इच्छा को जनमे हो गए अनेक वर्ष  
 जानना चाहता मैं कि आपका क्या विचार  
 मेरी इच्छा तो उर-तनी का एक तार  
 जन-मन की सहमति लिए बिना झकार कहाँ  
 रघुकुल मे प्रेम-रहित ग्रामन-अधिकार कहाँ ।"

आगत नरेग-ऋषि-सचिव, अन्य जन आनन्दित  
 सम्पूर्ण सभा सागर-तरंग-सी हिन्दोलित  
 उतसुक मुख से उच्चरित राम की गुण-गहिमा !  
 किसके न हृदय मे व्याप्त राम की रवि-महिमा !  
 ऊँची लहरो-भी उठी समर्थन की हिलोर  
 फँली प्रसन्नता की लतिकाएँ सभी ओर  
 निमके नयनों मे रामचन्द्र की छटा नहीं !  
 कोई भी दृग मे प्रिय विरोध की घटा नहीं !  
 दशरथ प्रमन्न, दशरथ प्रसन्न, दशरथ प्रसन्न  
 उयो सफल किमान देख कर मुदित, अपार अन्न  
 जयजयवारो के बीच विमर्जित हुई सभा  
 आनन्द-लालिमा व्याप्त कि जैसे प्रात-भ्रमा !  
 निर्णोत कि कल ही शुभ दिन—कल ही शुभ मुहूर्त  
 प्रिय चैत मास मे होने को कामना पूत  
 कुलगुर वसिष्ठ-ऋषि ने निर्धारित किया समय  
 सुन राजकीय घोषणा, चतुर्दिव जय ही जय !  
 विश्वासी प्रिय मंत्री सुमन्त सूचना-सफ ठ,—  
 राजाज्ञा से वे मिले राम से द्रुत अविकल

कर प्राप्त पितृ-आदेश, उपस्थित पुन राम  
 सब कुछ वह कर ही दशरथ का वाणी-विराम !  
 सुन पितृ-वचन, श्रीदशरथनन्दन निस्तरंग  
 पहले जैसा ही शान्त, न उद्वेलित उमंग  
 ओठ पर सुमन-मुस्कान, सुमुख की कान्ति वही  
 तन मे, मन मे, नयनो मे शीतल शान्ति वही !  
 लज्जित स्वर मे यह अमृत-वाक्य : जो आज्ञा हो !  
 मन मे सहृदय यह प्रश्न कि भरत नहीं है जो !  
 वह तो ननिहाल गया है प्रिय शत्रुघ्न-संग  
 फीका क्या नहीं लगेगा उसके बिना रंग ?  
 युवराज बनूँ औ' वह न रहूँ ! यह अनुचित-सा  
 कैसे प्रसन्न होऊँगा मैं उस पद को पा  
 भाई के उत्सव मे ही यदि भाई न रहे,  
 कैसे मन के वन मे आनन्द-समीर वहे !

निर्वृन्द नृपति ने पाम बिठाया प्रिय सुत को  
 नयनो ने अतिशय स्नेह दिया उस क्षण उनको  
 यद्यपि गुणनिधि श्री राम किन्तु उपदेश सदय  
 आनीर्वचनो को देकर गद्गद् पितृ-हृदय !  
 लौटे भावी युवराज भवन मे निज गति से  
 क्षरती भ्रातृत्व-विरण उनकी सुधिमय मति से  
 आए सुमन्त फिर ज्यो झोके पर नव शोका ।  
 इस वार कदाचित् किंचित् उज्ज्वल मन चौका !  
 इस वार सुमन्त-दृगो पर कुछ क्षण राम-दृष्टि  
 साँवली घटा पर ज्यो शशि की चन्द्रिका-वृष्टि  
 'चिन्तित तो नहीं पिता मेरे ?'—बोले कुमार  
 इस वार चरण मे चंचल गति ज्यो नव बयार !  
 इस वार राम के सुधि मय पय पर भरत-रूप,—  
 उसके शुभागमन की आती-सी मधुर घूप  
 मन मे प्रसन्नता-लहर कि आँगे भाई  
 छाएगी तभी सफल उत्सव की अरुणाई !

मोचते-मोचते पहुँचे राम पिना-सम्मुख  
 जिज्ञासित अन्तर मे न कहो भासित दुख-सुख  
 फिर किया उन्होने पहल-ता ही चरण-स्पर्श  
 इम बार अयोध्यापति के मुख पर अधिक हर्ष ।  
 दशरथ ने प्रिय पुत्र को छाती मे लगा लिया  
 दृग ने ही दृग को शीनठ चन्द्र-प्रकाश दिया  
 भरपूर मे गंगा-स्नान-सदृश आलिंगन मुख  
 आनन्द-पद्म-सा खिला खिग श्रीराम-भुमुख ।  
 टूटी जब स्नेह-ममाधि, तुरत बोले दशरथ  
 हे पुत्र ! देखना अत्र मैं अपना सन्ध्या-पथ  
 इतना मैं वृद्ध कि घट सकनी दुखमय घटना  
 मेरा वात्सल्य-मोह चिन्ता से आज घना ।  
 केवल युवराज बनाना ही पर्याप्त नहीं  
 विधिवत अत्र स्वयं सम्हालो तुम प्रिय अवध यही  
 मिहामन पर मैं तुम्हे देखना चाह रहा  
 कल ही शुभ दिन वह ! मव गुरु जन ने यही कहा  
 अन्तिम इच्छा को कठ ही मैं साकार करूँ  
 हे राम ! तुम्हारे मस्तक पर निज मुकुट धरूँ  
 प्रिय बधू-सहित मगल व्रत-पाठन करो तात ।  
 पूजा प्रारंभ करो अपनी आज ही रात  
 निविघ्न पुष्य-नक्षत्र वने मगन्दायक  
 प्रस्तुत हो जाओ हे भावी रघुकुठ-नायक ।  
 दुख है कि भरत-शत्रुघ्न अयोध्या मे न आज  
 होंगे कुछ चिन्तित त्रम कारण परिजन, समाज  
 क्या करूँ किन्तु, वे बहुत दूर मामा के घर  
 ममत्र न पीघ उनका आना हे पुत्र-प्रवर !  
 है नहीं अयोध्या को कोई पुष्यक विमान  
 शत्रुघ्न-भरत की ओर लगा है अभी ध्यान !  
 मरना है मगठ उत्सव मे प्रिय का अभाव  
 पटना है प्राणों पर निदचय त्रिदुडन-प्रभाव  
 क्या करूँ किन्तु, क्या करूँ किन्तु, मैं बना मोन  
 भुजमे बट कर चिन्ताकूल है दूमरा वीन ?

मगल मुहूर्त्त वर्षों तक ऐसा नहो अन्य  
 सम्राट् राम से होगी निश्चय घरा धन्य  
 आणे असुर नहो करने उत्पात यहाँ  
 भूमण्डल पर राम-सी दूसरी शक्ति कहां ?  
 है सत्य-मुरक्षा-हेतु वाण, मैं जान रहा  
 इनके भय मे कोई भी राक्षस आ न रहा  
 मुनता है, सागर-तट पर दानव का प्रकोप  
 कृषि-कानन मे भी महज शान्ति का हुआ लोप !  
 जाओ हे राम ! करो अपना अव व्रत-पालन  
 इन क्षण मे ही करता मैं उत्सव-उद्घोषण  
 मेरे निर्णय मे तुरन्त उठेगा हर्ष-ज्वार,—  
 राम के लिए जन-मन मे तो प्यार ही प्यार !

आने-आते श्रीराम स्वयं रक् गए वहाँ,—  
 माता कौमल्या थी पूजा मे लीन जहाँ  
 वह जान चुकी थी पहले ही नृप का निर्णय  
 देखने लगी वह निज सुत मे मातृत्व-विजय !  
 आशीर्वचनों में शब्द-भुगन्धित स्नेह मुखर  
 हर्षाकुल माता के दृग मे दिग्गु-छवि सुन्दर  
 अपने कर मे प्रिय मुत-मुख को मिष्टान्न-दान  
 ममता के कारण ही अब तन माता महान !  
 मुक्क-मजल राम-शोचन को लख, सीता विभोर,—  
 दिव्याघर पर अमृताभा की हँसती हिलोर  
 निज नन्दन के मँग मुदित मुमिता दृश्य देव,  
 मन मे उल्लास अपूर्व कि कल राज्याभिषेक !  
 राज्याभिषेक बर ही ! उच्छल गृह की दानी  
 नूतन वमन्त-सम पुलकित राजभवन-चामी  
 विद्युत्-मा फँट गया मुक्क-सुरभित समाचार  
 राज्याभिषेक बर ही ! गुजित मुख पर पुकार  
 बोले लक्ष्मण से राम वही : 'यह कठिन भार  
 मैं स्वयं अकेले कैसे पाऊँगा सँवार



अन्तर न तनिक मुझमें-तुझमें,—सब भाई मैं  
हम सब हैं एक समान पितृ-परछाईं में !  
जो कुछ मेरा है वधु ! तुम्हारा भी है वह  
एकाकी राज्य-भार मेरे हित तो दुम्मट  
खण्डित न व भी भ्रातृत्व-भाव, खण्डित न स्नेह  
हम चारों भाई प्रेम-प्रसूनित एक देह !  
दशरथनन्दन हम एक-देह, हम एक-हृदय  
माताएँ सारी एक-प्राण- एकात्म-निलय  
आदर्श-सुरक्षा-हित अद्भुत भ्राता-नाना  
जीवन भर देव-समान प्रणम्य पिता-माना !

—इतना कह कर श्री राम प्रिया के सग-सग,—  
निकले निज माता के प्रिय गृह से निस्तरण  
अति स्नेहमयी कँकरी की छवि लोचन में  
उनके दर्शन की महज पिपामा अब मन में !  
पथ पर ही यह भवाद वि 'आए गुफ वसिष्ठ  
आपके भवन के सम्मुख ही है रथ प्रतिष्ठ'  
यह सुनते ही, कुछ दुनिधा में पड़ गए राम  
कुल-गुफ महर्षि उम ओर, इधर माता ललाम !  
मुस्कुरा उठी जानकी कि ज्यो अघखिले फूल  
मुधि-रत कुमार को प्राप्त मानृ-स्मृति-चरण-धूल  
अविलम्ब लौटने लगे राम निज भवन-ओर  
कँकरी तक जा सका न निर्मल मन-झरोर !  
राम ने उतारा रथ में गुरु की सप्रणाम  
लै गए उन्हें भीतर सभक्ति देकर विराम  
सदन्विपत व्रत-उपवास शास्त्र-नियमानुसार  
उम क्षण से ही सयमित मुदम्पनि निराहार !  
लौटे वसिष्ठ जन-हर्षित पथ की भीड़ चीर  
रामानिपेक से पूर्व मुखद चर्चा अधीर  
मंत्र के मन में अनुकूल भाव-इच्छा-नरग  
उर की उत्सुकता में अपूर्व आशा-उमग !  
गृह-शोभा-सज्जा में सलमन नगरवामी  
शुभ दिन के लिए सभी आँखें बच से प्यासी

हर घर पर रग-विरगी सुपमा-लता व्याप्त  
 इतनी जल्दी, इतनी नामग्री कहां प्राप्त ?  
 सुन्दरित अयोध्या तोरण-वन्दनवारो से  
 गु जित गृह-पथ गीतो की प्रिय झकारो मे  
 आमोद-अमोद-निमग्न नगर उल्लास-भरा  
 राज्याभिषेक का समय स्वय मधुमाम-भरा ।  
 धन-धन का सुरभित पवन चतुर्दिक् चलता-मा  
 पुष्पित ऋतुराज हृदय मे स्वय मचलना-मा  
 उडते धूलो मे परिमल के कु कुम-गुला  
 उत्सव का वातावरण चम्पई लाल-गरु  
 सातो रगो मे होड नारिया मे हिलोर  
 इस ओर और उस ओर तरुणियां सभी ओर  
 बच्चे, बूढे, नवयुवक—सभी उत्साह भरे  
 रे, इतने सुख-सौरभ, कब और कहां विखरे  
 सरयू मे भी लहरें, कूलो पर हिलकोरें  
 समरसता का आनन्द भला किसको छोडे ?  
 प्रत्येक व्यक्ति मे, जड-चेतन मे एक भाव  
 ऐसा भी कोई जिसे राम से ? दुराव ?

‘क्या व्रत-पूजा प्रारंभ हो गई हे गुरुवर !’  
 —नृप ने आतुरता से पूछा आनन्द-मुखर  
 आशानुरूप पाकर बसिष्ठ से प्रिय उत्तर,  
 निर्देश सचिव को स्वय विविध सत्वर-सत्वर ।  
 सतुष्ट वृद्ध दशरथ कि ‘धर्मवत् सभी कार्य  
 रघुकुल मे उत्तम कर्म-भाव ही शिरोधार्य  
 मुझसे जितना बन सजा, हुई उतनी सेवा  
 मे बना भाग्यशाली चारो पुत्रो को पा  
 जिस घर मे राम-समान पुत्र, वह धन्य सदन  
 जिस घर मे कटुता-द्वेष नहीं, वह स्वर्ग-भवन  
 शीतल स्वभाव के कारण ही सम्बन्ध मधुर  
 निष्पट प्रेम से ही होता है निर्मल उर

ईश्वर हे ! यह अन्तिम दिन मेरे शासन का  
 सक्त्प पूर्ण हो, विघ्न-रहित मेरे मन का  
 फल पूर्ण सफल हो जन-इच्छित राज्याभिषेक  
 भर दो—भर दो हे देव ! सभी उर मे विवेक  
 पूरी कर दो दशरथ की यह अन्तिम इच्छा  
 में माँग रहा हूँ प्रभु हे ! तुममे यह भिक्षा  
 हो गई चूक यदि कही, उसे तुम क्षमा करो  
 निर्विघ्न राम के सिर पर शासन-मुकुट धरो !  
 निवघनुप तोड़ कर पाई जिमने बँदेही,  
 वह राम सहज गुण के कारण जन मन-स्नेही  
 वह राम कि जिमने कहा कि 'सब भाई नरेण,—  
 मैं ही क्यों राजा ? सबका है यह अवघ देश !'  
 वह राम कि जिसमे कभी न कोई अहवार  
 हो जाता जिमका वाण तिमिर के आर-पार  
 वह राम कि जिमने मुझसे कुछ माँगा न कभी  
 पात्रन करता जो रहा पितृ आदेश सभी !  
 करता होगा वह अभी बधू-भोग इष्ट-ध्यान  
 कर लेगा वह परिपूर्ण अनुष्ठित व्रत-विधान  
 कुरा की शय्या पर बाटेगा वह आज रात  
 चाद्यो की ध्वनि सुन, देखेगा कल वह प्रभात !'

सरयू मे स्नान हेतु जिसकी इच्छा प्यासी,—  
 बँकेयी की जो अति प्रिय मूँहलगू दासी,—  
 काली कुवडी मन्यरा गई सरिता-तट पर  
 वानु पर बैठ, देवती जलधारा मुन्दर !  
 उमके ममीप आई महमा नूतन युवती  
 दोनो ही एक समान भयकर रूपवती  
 आवृति-भ्रमानता के कारण क्षण मे मिलाप  
 भौंह चमका कर वागचीन वाप रे वाप !  
 आँवो मे चटक-मटक, ओठो पर इचक-विचक  
 अनगढ़ दाँतो मे त्रिजुरी-जैमी चमक-दमक

बाँहो मे लहर, तर्जनी मे सकेत-चाण  
 अंगी की उछल-बूद से दोलित प्राण-प्राण !  
 इधरे-विधरे-से बाल, गाल इचके-पिनके  
 कधे से कधा सटा शब्द-नाटक रग के  
 रंगता बान मे मुँह, ऐसी बानाफूसी  
 क्षण मे हँमती, धण मे ही के ऋठी-म्सी !  
 बातो-यातो मे दिया मन्थग ने परिचय  
 'मेँ दूर देख केवय वी नारी हूँ महदय  
 राजा ददाग्र्य ने किया वही अन्तिम विवाह  
 उनके चाँयेपन वी मेरी म्यामिनी चाह !  
 मृदू उन पर मम्राट रि गेमी गनी वह  
 कैकेयी बूटे पति की प्रिय इन्द्राणी वह  
 पटगनी पौसत्या वा कुछ चलता न कभी  
 उनका आचरण विसी जो भी खलता न कभी  
 तो सुन, म चेगी उसी कुमुम-कैकेयी की  
 यदि वह न रहे तो मैं भी हो जाऊँ फीकी  
 उनके ही दिए हुए मेरे ये आभूषण  
 उनका ही दिया हुआ है सखि, यह नील बसन  
 हँमती क्यों है ? है नही जन्म से मैं कुबड़ी  
 आँखे अतीत-दुर्घटना से है अशु-भरी  
 झटका मारा वीमरत्या-मुत ने बचपन मे  
 मैं गिरी उसी क्षण, क्षोभ अभी तक है मन मे !  
 जो होना था सो हुआ, अभी जीवित तो हूँ  
 पहले से भी अब अधिक प्रसन्न-मुदित तो हूँ  
 चुपके से वर्षों बाद नदी-तट आई मैं  
 तुझसे मिल कर हूँ आज अधिक लहराई मैं !  
 अब तू बह अपनी बात कि कैसे तू बानी  
 चल, धूप लग रही, बुला रहा सरयू-पानी  
 आ इधर, उधर तो केवल बछुओ का समूह  
 चल वहाँ, जहाँ पर श्वेत-भजल बालुका-रूह'

यह कैसा जयजयकार ? मन्थरा चौक पड़ी  
 मन पर प्रिय भरत-आगमन की आशा त्रिखरी  
 पर, स्नान-सहेली बोली व्यग्य लिए मुख पर :  
 'कैसी तू री मन्थरे ! कि अवगत नहीं लहर ?  
 अपने घर की बातें भी तू जानती नहीं  
 लगता कि महारानी तुझको मानती नहीं  
 दीपक के नीचे रहता जो, तू वह तम है  
 जो तथ्य नहीं जानता वही तो तू भ्रम है !  
 तू डींग हाँकती थी मुझसे कुछ पहले क्या ?  
 उँगलियाँ नचाती थी ऐसी-वैसी यो-या  
 पर, हँसी आ रही अब कि मन्थरे ! तू भूठी  
 लगता कि महारानी तुझसे निश्चय लठी !  
 अन्यथा न आती आज अभी तू सरयू-तट  
 तू राजभवन में वही उठाली मगल घट  
 मजती अपने को विविध वसन-आभूषण से  
 मागती आज कुछ तू भी दशरथ-नन्दन से ?  
 गाती तू मगल गीत, बजाती अभी ढोल  
 करती तू अन्य दामियों से रसमय ठिठोर  
 युवराज राम ही बने, इसी की सभा आज  
 तू नहीं जानती ? आज बहुत हर्षित ममाज  
 यह जयजयकार उमी का गूँज रहा है अब  
 आती है उसकी ध्वनि इस तट पर भी जब-तब  
 पगडण्डी से ही क्या तू यहाँ चली आई ?  
 अपनी जाँखों से जनपथ-भीड़ न लम्ब पाई ?  
 रोनी है तू इस पानी में ? छि छि यह क्या ?  
 होने को अशुभ नहीं राजा का किया-धिया  
 मत फुटा साँस, आँखों में मत अगर घोर,  
 अब जल्दी डुबकी लगा, गाँठ अब नहीं खोर,  
 सभव कि शीघ्रता में आयोजित हुई सभा,—  
 अवगत अन्त-पुर को हो अब निर्णित प्रभा  
 सभव कि राजनीतिक रहस्य गृह को न ज्ञात  
 कुछ वान हो गई होगी तय रात ही रात ।

'पूर्वाग्रह के कारण भी ऐसी सत्वरता  
 है न्वय मुझे भी अखर रही नृप-निर्ममता  
 हो ही जानी है भूल-चूक प्रिय, कभी-कभी  
 चिन्ता में नू मत डूब चतुर मन्यरे ! अभी  
 दामी ! नू नहीं राजरानी, मीमा में रह  
 अच्छा हो यदि कैंकेयी में भी कुछ मत कह  
 भाग्य के खेल भी बड़े निराले होते हैं  
 मव कुछ पाकर भी भाग्यहीन नर रोते हैं !  
 बुद्धि ही बुद्धि से नित पड़्यन्न किया करती  
 भावुकता डरती किन्तु न चतुराई डगती  
 जो है अनाक्त, उसको जग में पूछना कौन  
 मन्यरे ! मन्यरे ! व्ययं हुई तू करण-मौन !  
 मूर्ख मन होना दुखी पराई वानां से  
 होनी हताश दुखलता ही आघातों में  
 तू मोह-पक में फँसी मौन-सी तडप रही  
 कुछ ही पहले तू मन-मृग-सी थी छडप रही !  
 मैं परदेसी 'झलटा' न कर मुझको उदास  
 तू पहुँच गई मैं आज यहाँ पर अनायास  
 उस सभा-भीड में भटक गया मेरा भाई  
 तू डती-डूँढती सरयू-तट पर मैं आई  
 मन्यरे ! विहँस कर व्ययं यहाँ तू रोती है  
 री मूर्ख ! तू किस कारण अश्रु सँजोती है ?  
 तू त्रिया-चरित में निपुण, दूर से आई है,—  
 विद्युत् चमका कर सघन मेघ-सी छाई है !  
 अब तो समाप्त कर तू अपना रोना-धोना  
 आता है तुझे स्वयं ही अग्नि-धीज बोना  
 झलटा भीनरी चमक-दमक को जान गई  
 कैंकेयी की दासी को मैं पहचान गई  
 तेरे हित सचमुच हँसने की यह घड़ी नहीं  
 तेरी रानी कौन-या से है बड़ी नहीं  
 तू कुवटी बनी हुई है अब तक हाय-हाय  
 तू स्वयं टूट सकती चतुरे ! अपना उपाय

मत काप नदी मे, चल बाहर, नव वसन पहन  
 कर रहा प्रतीक्षा तेरी, उत्सुक राजभवन  
 घनि-मफल दृष्टि से देख कि क्या हो रहा वहाँ,—  
 विखरी प्रसन्नता कैसी कैसी कहीं-कहीं !  
 तू नील आवरण मे सचमुच शनि के समान  
 फँस सकती तू कुशल कुटिगता का वितान  
 आ गले-गले मिल ले दीदी ! तू एक वाग  
 तू मेरी भूल-भूब सहचरि ! देना विचार  
 तू ऐसी शनि-मणि जिसको मैंने ही जाना  
 है नही निरर्थक तेरा सरि-सट पर आना  
 तो विदा मन्थरे ! रखना मेरी बात याद  
 चलने की बेला मत कर—मन कर तू विपाद  
 सुन-सुन कर नव जयकार सोच क्या करना है,—  
 कैकेयी-गृह में कैसे अब पग धरना ह  
 यदि न्वय जानती वह तो तुझमे कहती ही  
 तेरी विचार-धारा पर रानी बहती ही,—  
 इसलिए, कि तू ने उसे बुद्धि से लिया जीत  
 तू केवल दासी नही, बालपन से सुमीन  
 तू साथ-साथ खेली-कूदी, लगता ऐसा  
 हितचिन्तक उनका कौन आज तेरे जैसा ?  
 कुबडी जिस दिन तू बनी, नही रानी उदास ?  
 क्या दुख की घडियो मे न रही तू आस-यास ?  
 आए जो दुख मे काम, विश्व मे मित्र वही  
 मिलते हैं सच्चे मित्र जगत मे कहीं-कहीं !  
 अच्छा, तो जा तू इधर, उधर में चलती है  
 तेरी चुप्पी से मन-ही-मन मैं जलती है  
 है जैसी तू वाचाल, मौन भी तू वैसी  
 तुझमे नुन्दर गुण-गरिमाएँ कौसी-कौसी !  
 हे देवि ! तुझे करती हूँ मैं मविनय प्रणाम  
 चरितार्थ शीघ्र ही हो तेरा मन्थरा नाम  
 सुन सङ्गे दूर में भी तेरी कस्तूर-कथा  
 कानना यही मेरी कि फूल-भी मिले व्यथा !

अब इधर वहाँ ? जा उधर, पकड़ अब नई राह  
 कब तब भीतर रख पाएगी तू ओह-आह ?  
 उर मे जो ककड़ पटा, उने अब तू निकाल  
 मन्थरे ! फेंक अब अपना केवड़ एक जाट !"

आई अपने गृह मे कँकेयी की दानो  
 उमका अन्दोलित मन न अवधपति-विश्वामी  
 मर-मर-मर नीटी पर चट कर अब वह छन पर  
 उम छन से भी ऊपर कुछ और अधिक ऊपर !  
 आँसू अधीर देवती नगर में बहुत भीड़  
 पध-पय पर जन-उन्मात् नरगायित शरीर  
 अविग्ल पानी-छिड़नाव म्रच्छतर गगिया में  
 नारियाँ मुनञ्जित, नव निखार ज्या कलियो में !  
 गृह-गृह के शिखरो पर गौरव-ध्वज लहराते  
 गाँजे-वाजे के तीव्र तुमुल स्वर छिनराते  
 'क्या कर' हाय, हो रहा आज कितना अनर्थ  
 इम राजभवन में मेरा आना हुआ व्यर्थ  
 चकराता मेरा मिर, उफनाती बुद्धि विबल  
 हो रहा अनह, अब कपटी नृप का बल-बल-छट  
 चुपचाप राम को बना रहा मुवराज हाय,  
 करना ही है कोई उपाय—कोई उपाय  
 पर रहा प्रतिज्ञा भग अयध-मन्नाट चतुर  
 वह भूल गया अन्तिम विवाह का वचन मधुर :  
 'कँकेयी से उत्पन्न पुत्र होगा नरेग  
 रघुकुल में यद्यपि प्रथा नहीं पर, प्रण विशेष !'  
 उम प्रण के कारण ही कँकेयी से विवाह  
 जननी-मन मे क्षोभ का नह कोई प्रवाह  
 सब कुछ मुझसे कह दिया विदाई से पहले  
 निर्णीत कि 'भाक्षी-मजग साथ मन्थरा चले !—  
 देने कि मुपुत्री रहे वहाँ पटरानी-मी  
 गूजे उसकी गरिमा आनन्द-कहानी-सी



इन्द्राणी-सदन-समान मिले प्रासाद उसे  
 हो कभी न जीवन में कोई अवमाद उसे  
 भोगे कैंवेयी मुख ही मुख यह भी निणय  
 नृप से न निरादृत हो उमका मृदु कुमुम-हृदय  
 नित करे निरीक्षण वह उमके अन्त पुर का  
 आनन्द उठाए परिणीता कोमल मुर रा ।  
 देखे दगरथ कैंवेयी मुख मुख-दर्पण म  
 खो जाए अपने को आनन्द-ममर्पण म  
 वय को प्रियार कर करे मधुर अनुराग मदा  
 आने मत दे कैंवेयी पर कोई विपदा ।  
 रख दे ऐश्वर्य सभी पग पर, इतना माने  
 कैंवेयी की कोमलता को वह पहचान  
 रण मे भी जाए तो ते जाए उमे बहा  
 उमके समान रण-रमणी नारी मंग कर्ता ।  
 सिललाया उसे पिना ने ही तो रण-वीरक  
 उसकी कोमलता में शारीरिक जीवन-धूल  
 वह पहन चुकी है बार-बार जय-युद्धवस्त्र  
 वह चग चुकी है समराङ्गण में अस्त्र शस्त्र ।  
 उस बार वीर दगरथ के रथ का चक्र भग  
 बैठी थी कैंवेयी पति के ही सग-सग  
 करते थे शत्रु बाण वर्षा भीषण रण मे  
 सगिनी काम आई उस दिन मकट-क्षण मे ।—  
 उस ध्वस्त चक्र की धुरी सम्हाले रही वही  
 अति विवट परिस्थिति मे ऐसी क्षमता न वही  
 वच गया वीर पत्नी के कारण पति महाम्  
 उस विजय विभा का आज मुझे आ रहा ध्यान ।  
 कैंवेयी को उस दिन नृप न दो वचन दिए  
 कुम्हागाए क्या वरदान-मुनन जो वहाँ गिए ?  
 तब की वे बातें राजा को अब याद नहीं  
 मेरी रानी को भी कोई अवमाद नहीं ।  
 बुद्धि को मलिन कर देना अनिश्चय भोग-भाव  
 जाती है इव विलास-भँवर मे तृप्ति-भाव

वरदान, भोग के कारण ही अभिगाप बना  
 अनि सुत्र के कारण प्राप्त पुण्य भी पाप बना !  
 उठनी न उठाए अब कँकरी शय्या से  
 अलनानी वह अब भी चँती पुरखँया से  
 सुत्र की मदिरा पीने वाली चुपचाप पड़ी,  
 नौ-छों न जानती है मेरी सुन्दरी परी !  
 रानी ही जब निश्चिन्त, करे यह दानी क्या ?  
 सचमुच वह नहीं जानती राज-रहस्य नया  
 सब दिन सबका नांभाग्य नहो रहता नमान  
 कन् दता भक्ति को अष्ट विद्या-विबुध ज्ञान !  
 वह कौसल्या जो सदा विराग-भरी नारी, —  
 जब दखो पूजा-पाठ कर रही बेचारी  
 उसका कोई भी दिन न निरयंक कभी हुआ  
 अनि कृष्णा का उमने न कदाचित् फूट छुआ  
 श्रद्धा की वह देवी कितनी है दयावान  
 उमकी आत्मा नित दानशीलता से महान  
 सब दिन नत्सग मुमिना से, सब अन्न-पालन  
 सब दिन गो-पूजा, धर्मनिष्ठ प्राय हर क्षण !  
 क्या नहीं जानती वह कि भरत भू-अधिकारी ?  
 पूजा-निमग्न क्या न्यायमयी है वह नारी ?  
 नृप का तीसरा विवाह उसी की इच्छा से  
 अवगत क्या है वह नहीं सुपरिणय-भिक्षा से ?  
 धार्मिकता कहीं गई उमकी ? क्यों चुप है वह ?  
 नित पति से प्रणय-सत्य को वह सकती थी वह  
 छिप जाती लोभ-तिमिर से उचित बात मन की  
 किनमें न दीख पड़नी है दुर्वलता तन की !  
 जब भरत नहीं है यहाँ तभी यह आयोजन !  
 हैं फिर हुए सब ओर घोर शका के घन  
 विजयी-भी यह मन्यरा जकेली तटप रही  
 अपनी ही मुधि के नभ से कत्र से कडक रहो !  
 लगता कि शिलाप्रानाद-गिखर हिल रहा अभी  
 मेरे मन को सबैत एक मिल रहा अभी

ज्ञाना-सी मेरी बुद्धि, ज्ञानोरो-मा विचार  
 आँधी-भी मैं हूँ खड़ी, नयन मुझमें हज़ार ।  
 मेरी ईर्ष्या में तर्क, क्रोध में सन्य मित्र  
 जाने किसने मरयु-तट पर कुठ दिया पित्त  
 मैं नहीं पूछ पाई कि मखी झझटा कान ?  
 सुनते ही जयजयकार, हुई मैं चक्किन मौन !  
 अद्भुत नारी कुछ बात बता कर चली गई  
 सचमुच ही वह भी थी कोई मन्थरा नई  
 प्रतिरूप भाव-भी वह क्षण में साकार हुई  
 कामना दूध-पानी-भी एकाकार हुई ।  
 कुवडी हूँ पर, सीडी से विद्युत्-सी आई  
 मैं देख चुकी हूँ नगर-डगर की तरणार्ड  
 किस में पूछूँ कुछ बात कि बुद्धि बटोर्न में  
 अपनी विजली को वहाँ, किम समय तोड़ूँ मैं ।  
 नीचे चल अब मन्थरे ! चरण रख भूतल पर  
 रख एक अनल-बण आज किमी के गतदल पर  
 वह कौन जा रही इधर ? गुँजता नूपुर-स्वर  
 उतरूँ, उतरूँ अब जल्दी नीचे घन घड-घड  
 'रक' री पटरानी की दासी ! कुछ पूछूँ मैं ?  
 कैसी है कैसी, आज नगर में नूतन जय ?'  
 सहचरी उछलती-भी धोली : 'निर्णीत आज,—  
 हो जाएँ श्रीरामचन्द्र कल अवधराज ।'

बस, एक वाक्य सुन कर मन्थरा बनी नागिन  
 शोयाग्नि-लपट मन-ही-मन बटनी-भी पल-छिन  
 'मुझसे छोटी दामी को भी सत्र तथ्य ज्ञात ?  
 की मुझमें उमने बहुत एँठ कर आज बात !  
 तो कल से क्या होगा ? क्या होगा अब कल से ?  
 चुपचाप हो रहे सभी काम केवल छट में !  
 लगता कि एक मछली हो रही अग्न जल से  
 पड़्यन्त कर धुकी कौसल्या निज नृप-त्रय से

वह बनी सफलता की लक्ष्मी चुपचाप यहाँ  
 कँवेयी उधर चपटना की चाँदनी वहाँ  
 निश्चिन्त राम, निर्विघ्न राम क्या भाग्य मिला !  
 कँवेयी-तन-तर का बोर्ड पत्ता न हिला ।  
 देखूँ कुछ इधर-उधर भी तब मिलने जाऊँ  
 कुछ ताक झाँक कर ही अपने घर में आऊँ  
 रे मन ! चल अब उम आर जहाँ जानकीनाथ  
 देखूँ किस मुद्रा में व दोना नाथ-माथ  
 चागे वहना का एक पेट, यह जान रही  
 है नहीं कहीं कुछ भेद-भाव, यह मान रही  
 सब में अटूट मैत्री मर्यादित मधुर स्नेह  
 मन एक किन्तु चारों की अविचल चार देह ।  
 उस ओर पड़ेगा नहीं बुटिलना का प्रभाव  
 उनमें अब तक हो सका नहीं। कोई दुराव  
 जैसी शिक्षा वैसी काया—वैसा ही मन  
 आचरण उच्च तो छत्र-प्रपञ्च का कभी न रण  
 मन्थरे ! निरर्थक उधर न जा, रख अक्षय एक  
 जाना-पहचाना कँवेयी का वक्ष देख,  
 वह अपनी एक अबली है जो व्यया सुने,  
 दूसरा वैन, जो पीडित मन की कथा सुने ?  
 होन को है अब साँत और कठ राजतिलक ।  
 मैं देख चुकी अपनी जाँसों से दृश्य-झलक  
 हो जाएगा सब कुछ नम्पन्न, प्रात में ही  
 करना है मुझे मर्मा कुछ आज रात में ही ।  
 आज ही रात—आज ही रात मर करना है  
 अन्यथा डूब कर सरयू में ही मरना है  
 दायित्व निभाना है इस चिन्तित दामी को  
 देना है तृष्णा नीर सिंहिनी प्यासी को ।  
 उस ओर राम माँता-समेन पूजा-निमग्न  
 इस ओर मन्थरा देख रही नव स्वप्न-रुग्ण  
 उस ओर वर चुकी वीमन्या घन-धान्य दान  
 इस ओर मन्थरा करने को अब बुटिल ध्यान ।'

यह कँकेयी का वक्ष : स्वर्ग-प्राप्ताद-खण्ड,—  
 सुख-भुरमित भोग-विलास-भरा ऐश्वर्य-दण्ड  
 लम्बे-लम्बे दर्पण-सुचित्र, सब कुछ सज्जित  
 इन्द्र भी भवन को देख वुरत होगा लज्जित !  
 दीवारों पर सोना-चादी, मणि-रत्न-कान्ति  
 हीरो से चकमक-चकमक मनमोहक प्रशान्ति  
 सर्वत्र मुगन्धित वायु, सुरभि ही सुरभि यहाँ  
 है अवधपुरी में सचमुच ऐसा भवन कहाँ ?  
 कौसल्या-सदन स्वच्छ, सादा, सात्विक केवल  
 सीता-गृह भी निमल जैसे नभ चन्द्र-धवल  
 गैरिक प्रकाश-सा सदा सुमित्रा-कक्ष शान्त,—  
 ज्यो मुन्दर गिरिगिहरो पर क्षिलमिलक्षिल दिनान्त !  
 पर, कँकेयी-गृह-छटा रुचिर इच्छानुकूल  
 हर कोने में, प्रतिदिन पात्रों में विविध फूल  
 ऊपर-नीचे—हर ओर नयन-रमणीय रूप  
 कँकेयी को सचमुच कितना मानते भूप !  
 आना पड़ता है यहाँ उन्हें प्रायः प्रति दिन  
 उनके कारण अब तक न कभी मुख हुआ मलिन  
 इन्द्राणी-सी कँकेयी की सुख-दशा सदा  
 दशरथ के रहते उसे भला कोई विपदा ?  
 अक्षययीवना सुभग नारी वह प्रिय रानी  
 वरमाती जुही-चमेली ही उमकी बाणी  
 लम्बे-लम्बे मृगलोचन में मदिरा धूती  
 काली-धुँधराली केशरानि भू को छूती !  
 नख में शिख तक मोटक शरीर मानन्द सदा  
 दशरथ के रहते उसे भला कोई विपदा ?  
 जादू है, जादू है उमकी दो बाँहों में  
 झर जाते स्वर्ग-बुसम आलिंगित छाँहों में !  
 मिलती है कही-नहीं ही ऐसी वासन्ती  
 योमल कँकेयी कितनी है रस-रूपवती !

पुण्यां से होनी प्राप्त मोहिनी सुन्दरता  
 मिलनी है किमी-किसी को ऐसी रूप-लता !  
 सुखमय शशिचदन देख कर नृपति-नयन शीतल  
 चाँदनी ओढ़ कर बहता मन दा गगाजल  
 मन्तान-सिद्धि के लिए प्राप्त परिणय-सुपमा  
 आँखें न खोज पाईं उमकी कोई उपमा !  
 जैसा उसका प्रिय रूप, भवन भी वैसा ही  
 भूषण-परिधान प्रसाधन तन के जैसा ही  
 सुन्दर शरीर पर ही घोबता बसत सुन्दर  
 पाकर अनुरूप अलङ्कृति, जाना रूप निखर !  
 सौभाग्यवती कंचेयी मुख-अनुगग-भरी  
 उसकी पिय-बोली अब तक कभी न आय-भरी  
 हावण्य-ललित शोभा अपनी ही सीमा मे  
 रानी की रूप-रात नृप-मन रहता धामे !

धीरे-धीरे, धीरे-धीरे-पग की मन्हाल,—  
 आँखों में आँसू टिए, भुका कर तनिका भाल,—  
 आई स्वामिनी-निवट मन्धरा निनकती-सी,—  
 कर्कश करुणा से पिघियाती, कुछ बकती-सी !  
 लेटी-सी नैनेमी फूँगे-सी शय्या पर  
 ऊँधी-ऊँधी आँखें निद्रा की नय्या पर !  
 सुन प्रिय दासी का रुदन स्वामिनी उठ बैठी  
 अँगटारै लेनी सुरभिष देह-न्यता ऐंठी  
 'क्या हुआ मन्धरे ! क्यों,—तू क्यों आई इस क्षण ?  
 किस कारण दुखी हुआ है तेरा कोमल मन ?  
 बोलती क्यों नहीं ? साँसें फुग रही है क्यों ?  
 अपनी आँखों को इतना रूपा रही है क्यों ?  
 लक्ष्मण ने कुछ कह दिया ? बोल क्या हुआ जाज ?  
 रो बोल-बोल, तुझ पर कँसी गिर गई गाज ?  
 हे राम ! अशुभ तो नहीं कहो ? —बोली रानी  
 दासी के दृष से बहता अब झर-झर पानी !

साँसों में त्रिया-नरग, तुरत हिचकी-टुचकी  
 हाथों की अगुलियाँ अब छाती पर चिपकी  
 भीगता लोर से चोली का ऊपरी भाग  
 प्रतिपन्न फुँफकार रहे दोना नासिका-नाग !  
 'प्यारी दामी ! इतनी पीडा तुझमें न कभी  
 आई है तू इस समय कहां से, बोल अभी ?  
 किसमें झगडा हो गया आज ?'—बोली रानी,  
 निकली न किन्तु, निवली न किन्तु पीडित वाणी !  
 जब खड़ी हुई कँकेयी, आनर तनिक निकट,  
 तब लगी निकलने आकुल मन की शब्द-रूपट .  
 'क्या होगा कल से—क्या होगा ह कल्याणी !  
 किम के बल पर अब गर्व करूँगी मैं रानी ?

हँस कर बोली कँकेयी 'यह क्या कहती है ?—  
 किमके बल पर मन्थर ! सुखी तू रहनी है ?  
 अब बोल कि किम शका स तू इतनी पीडित  
 तेरी आँखें किसके आँसू में हैं मोघिन ?  
 सबकुशल है मैं तो तू क्यों चिन्ता करती है—  
 मेरे रहते किमसे तू इतनी डरती है ?  
 नहर से तू आने वाली मेरी दामी  
 तू सब दिन से शत प्रति शत अन्नर-विद्वामी !'  
 नयनों में नूतन अश्रु लिए बोली कुपटी .  
 'पटरानी ! मेरे जीवन की यह कठिन घड़ी  
 क्या कहूँ और क्या नहीं कहूँ, ऐसी दुविधा  
 लगता समाप्त होने को है अत्र सुख-सुविधा !'  
 इतना कह कर मन्थरा लगी अकुलान फिर—  
 लग गई अमिट शका-घन-सी मडगान फिर  
 इन धार स्वाभिनी ने उसके दृग को देखा  
 भीतर-भीतर ही काँठी बिजली-सी रेखा !  
 साँसों में लहर लिए बोली मन्थरा तभी  
 'आज्ञा हो तो हे देवि ! आज कुछ कहूँ अभी

इतिहास बदलने वाला है कबूट्टे रानी !  
 लपटा पन आ-आकर छिप-छिप जाती दाणी  
 बट नकली मेरी जीभ अगर में सत्य कहूँ  
 निट नकला मेरा धर्म अगर चुपचाप रहूँ  
 अच्छा होता यदि आप तनिक बाहर आती  
 तब मैं कुछ कहन न निष्कटक बच जाती !  
 जाँवो में देखा हुआ दुःख ही नच होना  
 अपना ही दृग्दल अपने आँसू की टोना  
 मैं कहूँ और तब मुनें आप यह उचिन नती  
 केवल मुन कर ही नती निबलनी दान सती !

'क्यों इतना घना-फिरा कर बोल रही है तू ?  
 उन्मुक्ता में शक़ाएँ घोल नहीं है तू  
 तेरी बानी पर विद्या न तब दिग्दान भन्ना ?  
 क्यों नमस रही अपने को तू इतनी अबला ?'

—बोली कंबेयी—'कह दे जो कुछ कहना है  
 रहना है मेरे सग मुनी को रहना है  
 मैं क्यों जाऊँ बाहर जब तू ने देख लिया  
 जदी अब कह कि कहीं, जिन्ने क्या आज निघा ?'

ज्यो बिल में अपना मप निबालता है निपघर,  
 हो गई नैन दानी दो-चार दाक्य कह कर  
 चुन कर विभेद-बाणी, कंबेयी ने डाँटा  
 वह नहीं लगा पाई केबिन बोई नाँटा  
 दोली कि 'गम ने प्यारा जैन हमारा है ?  
 किनकी जाँवों का नती पुन वह तारा है ?  
 होने दे बल राजशासिषेव यह उचिन दान  
 मुम नमाचार मुन नोद न होगी आप गन !  
 हैं मुत्तते अपिक प्रसन्न जैन ? ले गन्हार,  
 क्या कंबेयी ने विद्या गम की कम दुलार ?



मेला वह मेरी गोदी में त्रिय वचन में,—  
 कौतूहल भरता रहा मदा मेर मन में  
 तू नहीं जानती ? भरत-राम किन्ना अभिन्न  
 मेरे मुख-यष्ट पर दोना के हैं चरण-चिह्न !  
 किसको कम प्यार किया मैं, यह नहीं ज्ञात  
 मेरी आँवों में अकित दोना के प्रभात  
 जानता राम ही, मैं उसकी प्यारी माता  
 क्या कौम या से कम कैंकेयी का नाता ?  
 मन्थरे ! सदा चेरी-जैमी ही बात न कर  
 अत्र मैं एसा अनुचित कोई आघात न कर !  
 करती हूँ क्षमा कि फिर ऐसी अब भूल न हो  
 दे तू ऐना ही फूट कि जिममें छूट न हो  
 आश्चर्य कि मेरी चरी मैं प्रतिक्कूट भाव  
 कह सकती यह मन्थर ! कि किस कारण दुराव ?

'कहने से अत्र क्या लाभ ?'—मन्थरा उठी बोल—  
 मन-ही-मन मचित शब्दों को सहसा टटोल  
 'मैं नीच नारि, ऊँची बातें जानूँ कैसे  
 लेकिन असत्य को मरय आज मानूँ कैसे !  
 कुबड़ी है, कपटी है, कुरूप है, काली है  
 दुष्टा, घर-फोडी, गरल छिपाए व्याली है  
 मच ही दोगूँ तो कौन करे विश्वास यहाँ  
 लगना, धरती ऊपर, नीचे आकाश यहाँ !  
 जानती ममी दामियाँ कि वर राज्याभिषेक  
 आए है दूर-दूर के भी राजा अनेक  
 आज ही प्रात में हुई एक मुनिगाठ सभा  
 सम्पूर्ण नगर में फँगी है आनन्द प्रभा  
 पर, मेरी रानी कुछ भी नहीं जानती है !  
 इमगिण्ड कि वह बेटे को बहुत मानती है  
 छोटी बात छोटी पटरानी हिन केब  
 पर, बड़ी बात में साम्राज्ञी ही मदा सफ़र !

बैठे कोई गद्दी पर, हानि हमारी क्या ?  
 दासी भी बन सकती है राजदुलारी क्या ?  
 मैं नहीं सोचती कुछ भी अपने लिए कभी  
 आई क्या अपने कारण मैं इस समय अभी ?  
 जानें भगवान कि आई मैं किस लिए यहाँ  
 राज्याभिषेक है यहाँ, भरत-शत्रुघ्न वहाँ ।  
 मैं नीच नारि, ऊँची बातें जानूँ कैसे ?  
 चाँदनी रात को स्वर्णिम दिन मानूँ कैसे ?  
 है अधिक बोलना भी दुर्गुण ही जीवन में  
 पर, कैसे कोई बात छिपा लूँ मैं मन में  
 कहती आई जब सब कुछ अपनी रानी को  
 तो कैसे आज छिपा लूँ कठिन कहानी को ।  
 इतनी जल्दी क्या थी कि तुरत राज्याभिषेक ?  
 किसने भर दिया नृपति के मन में यह विवेक ?  
 किस कुटिली की यह चाल कि दो भाई न यहाँ  
 दौडाऊँ अपनी दृष्टि आज मैं कहीं-कहीं ।  
 हे भरत-जननि ! मुझमें तो उतनी बुद्धि नहीं  
 कहने आई कुछ बात किन्तु मैं सही-सही  
 दासी हूँ, पूरी बात नहीं कह सकती मैं  
 टूटे-फूटे गब्दों में ही कुछ बकती मैं  
 चाहता कौन यह नहीं कि राम वनों राजा  
 शका का कारण नहीं बधाई का बाजा  
 कुछ नहीं जानती आप, यही सदेह एक  
 कल से क्या होगा ? उठती शकाएँ अनेक ।  
 सदेह—स्पष्ट सदेह, यहाँ मैं वहाँ व्याप्त  
 सदेह—कुटिल सदेह वहाँ से यहाँ व्याप्त  
 किसकी यह बलुपित राजनीति ? बोलो रानी !  
 मेरी आँखों से अर्थ नहीं झरता पानी  
 खाकर नित नमक, रही मैं सब दिन सदा पास  
 लेता है नाम तुम्हारा ही प्रत्येक श्वास  
 आई नहर से मैं अटूट विश्वास लिए,—  
 मानोगी मेरी उचित बात, यह आस लिए ।'

इतना कह कर हो गई मन्थरा तनिक मौन  
 कैकेयी की पहली बरुणा कुछ हुई गौण  
 देखी दासी ने उसकी मुख-मुद्रा नवीन  
 गभीर नयन शका-समाधि में हुए लीन ।  
 रानी हो गई खड़ी कुछ क्षण, शय्या-समीप  
 सुधि-पथ पर केवल वीसल्या, केवल महीप .  
 मुझसे भी नृप न किया भला विश्वासघात ?  
 काटूँगी कँस रे मन, अपनी आज रात ।  
 करना था जो कुछ उन्हें, पूछ कर ही करते ।  
 किसलिए—किसलिए व मुझसे इतना डरते ?  
 कब मुझसे विघ्न हुआ कोई कि तिरप्कृत मैं ?  
 मगल विचार-चिन्तनय स भी क्या वचित मैं ?  
 परिणय-प्रण की आ रही याद क्यों प्रथम बार ?  
 था वन्द, प्रेम के कारण मेरा स्वार्थ-द्वार  
 माँगू कैसे अधिकार ? कश विपरीत रीति  
 निष्कपट राम पर मेरी सदा अटूट प्रीति ।  
 छोटा हो जाता कभी-कभी नारी-स्वभाव  
 लोभी मन ही करता अपनो से भी दुराव  
 बुनने लग जाती नारी जब-तब कपट-जाल  
 बन जाती ईर्ष्या के कारण वह कभी ब्याल  
 बन्धुत्व बिखर जाता नारी के खटपट से  
 चूने लगता पानी गृह के पूटे घट से  
 बिखरा देता विद्वेष एकता की माला  
 धर देती कलुष कुटिलता ही मन को काला ।  
 मैं कँकेयी क्या करूँ ? वरूँ मैं किस पथ को ?  
 दौडाऊँ मैं किम ओर आज शका रथ को ?  
 करना था जो कुछ उन्हें, पूछ कर ही करते ।  
 किसलिए—किसलिए वे मुझसे इतना डरते ?  
 आ जाता यदि प्रिय भरत भग्न तो क्या होना ।  
 राज्य के लिए उमवा मन कभी नहीं रोता,—

भाई के मुकुट-महोत्सव में रहता भाई  
 पड़ मकी न उस पर छत्र-प्रपंच की परछाई  
 सन्देह भग्न पर भी—मुझ पर भी प्रथम वार  
 है नहीं तब मैं हीन मन्यरा का विचार  
 पड्यन्त सौन का ही डममे, उगता ऐसा  
 इन घड़ी न कोई टूटती कदाचित्त मुझ-जैमा !  
 सूचना गम ने भी न मुझे दी क्यों कोई ?  
 किसने उससे निश्छत्र मन में ईर्ष्या कोई ?  
 ईश्वर है ! इम जग में ऐसा भी छत्र-प्रपंच ?  
 क्या नाटक हो रहा कि अब हिल रहा मंच !  
 वह गम जिस में मुन-मा ही किया प्यार,  
 अपनी माता के लिए दिया मुझको विमार !  
 वह राम कि जिसके लोचन मेरे लोचन में  
 वह राम कि जिसका रूप नदा मेरे मन में,—  
 भूला कैसे, वह निज कैसेयी माता को !  
 क्या तोड़ दिया उसने भ्रमत्वमय नाता को ?  
 वह राम कि जिसका नाम भरत लेता प्रति पल,  
 क्या छोड़ दिया उगने प्रिय भाई का सबल ?  
 भगवान् ! प्रेम का यह क्या परिणाम आज !  
 सठा है, सठा है मुझ में भी गम आज !  
 लगता कि विधाता ही मुझमें हो गए विश्व  
 मिटने को मेरे उर के अर वात्सल्य-चिह्न  
 कौसू किमको ? कौन या को या प्रिय पनि को ?  
 धिक्कार मैं इम समय भला किसकी मति को ?  
 दरना था जो कुछ उन्हें, पूछ कर ही वगते  
 पिसलिए—किमलिए वे मुझसे उतना उरते ?

रानी के दृग में अश्रु ! मन्यरा ने देखा  
 आँखों में अक्षित दुःखिघा की चंचल रेखा  
 बोली वह 'क्षमा करो रानी ! दुख हुआ तुझे  
 तुझसे कुछ भी कम नहीं हुआ है केश मुने !

है समय बड़ा बलवान, प्रेम घटता, बटता  
 नीचे जो आज, वही फिर कल ऊपर चढ़ता  
 चलती ही रहनी दूटनीति सब के घर में  
 म्बिर रहनी है सब दिन मत्ता किमके कर में ?  
 मुल-दुल का चक्का तो चलना ही रहता ह  
 दुर्बल मन ही विश्वासघात को सहता है  
 दुर्दिन जाने पर चुप रहना ही चतुराई  
 पनझर में बंभे ल लनिकाएँ अंगराई ।  
 देख, उत्सव में कल जाना होगा कि नहीं  
 यो ही जाने स घुरा मान ल नृपति कही ।  
 अनुचित ही तो है बिना सूचना के जाना  
 सभव न बदाचित आज यहाँ नृप का जाना ।  
 लगता कि महारानी ने जादू फेर दिया  
 उमने ही उनसे कोमल मन की चुरा लिया  
 अन्यथा अयोध्यापति इतने निर्मम न कभी  
 होते वे अपनी बंभेयी के पास अभी ।  
 पर हाय ! राजमाता-पद-लोभी बुद्धि कुटिल  
 प्रौढ कौस-या का मानम इतना पक्कि ?  
 कर सकती वह कल से अनिट भी हे रानी ।  
 मेरी आँखों से ध्यर्थ नहीं झरता पानी  
 हो मक्ता बड़ी भरत कि ऐसी आशका,  
 दुर्बुद्धि पीटनी सदा कुटिलता का डका  
 दुर्गति होगी कल में ही स्वयम् तुम्हारी भी  
 डिटिंगी तुम्हें वहाँ नागरज नारी भी  
 छा जाएगा इन घर में भय का अघकार,—  
 तुम पा न भरोगी अब नृप-पति का नरक प्यार  
 नक्षत्र ऐश्वर्य खिर जाएगा क्षण भर में  
 रह जाएगा कुछ भी न तुम्हारे डम कर में ।  
 अन्तिम दिन की तुम हो रानी, यह याद रहे  
 चुप रहे मन्वरा कर्म इस क्षण बिना बहे  
 अन्तिम दिन भी अब वहाँ ? मात्र अब एन रात  
 मुनना चाहो तो मुन सकती हो एन वान ।

वन, एक रात की रानी तुम, ममज्ञो रहन्य  
 ह शक्तिशालिनी ! इनी रात तव तुम नमन्य,—  
 पर तव, जब मेरी केवल दो ही बात मुनो  
 मुन कर बृछ करने के पहले तुम स्वय गुनो !  
 गनी मन कहना मुझे कि घात्ता दिया तुम्हें  
 कहना न कभी दिग्भ्रान्त कभी भी किया तुम्हें  
 कौमल्या की सेविता न बनने दूंगी मैं  
 लौटानी हूँ नणिमात्र, नहीं, यह लूँगी मैं !  
 बल दोगी जो कुछ कर लूँगी न्वीकार उसे  
 देखूँगी विजयी दृग न चारम्बार उसे  
 यह अन्तिम रात तुम्हारी प्रबल परीक्षा की,—  
 रघुकुट की मयांदा की उज्ज्वल निष्ठा की !

बँकेयी विहँस उठी महना सुन, शेष वचन  
 उमकी प्रमत्त भावृति पर ही मन्यरा-नयन  
 'वह कौन बात तेरे मन मे ?'—बोली रानी,  
 मुनने को आतुर कुनुम-वर्ण-कोमल वाणी !  
 'भय लगता है कि कहीं तुम कहना मानो ना—  
 अपने हित को भी रानी तुम पहचानो ना'  
 श्रौली चतुरा मन्यरा उठा कर सिर ऊपर  
 वह खड़ी हो गई नागिन-नी अपने भू पर !  
 तव बँकेयी ने कहा 'बोल क्या कहना है—  
 अब इन घर मे अथवा नहर मे रहना है ?  
 कौमल्या की दासी बन कर रहना न मुझे  
 है पराधीनता के दुख को महना न मुझे !  
 मुन को वन्दी होने से मुझे वचाना है  
 कह री ! क्या मुझे यहाँ मे जन्दी जाना है ?  
 दी तू ने आँसू खोद, बोट क्या करना है ?  
 बँकेयी की विजगी को वहाँ विखरना है ?  
 किस पर मैं दद ? बोल, बोल,—तू तरन बोल ?  
 मन की बाँधी से इच्छा-लतिवा रही डोल

क्या लेना है प्रतिशोध ? मन्थरे ! तुरत बता,  
मेरे मानस पर फैल चुकी अब अग्नि-शता ।'

ले गई मन्थरा हाथ पकड़ कर कोने में  
थी कूटनीति कितनी उसके प्रिय रोने में  
दासी ने उसके कानों को विष पिन्ग दिया  
चतुराई ने चतुराई से ही काम किया ।  
उन बातों को मुन कर कँकेयी मुदित हुई  
वह कूटिल कालिमा-धूमकेतु-सी उदित हुई ।  
दशरथ के दो बरदानों की मामयिक याद  
खिल गया लाल पाटल-मा रस-गन्धित विपाद ।  
वन गए फूल, पत्थर उसकी कोमला के  
मिट गए माधवी चिह्न मधुर निर्मलता के  
लुट गए भाव-बँभव उज्ज्वल निश्छलता के  
उग आए अकुर अग्रिम स्वार्थ सफलता के ।  
नारी नागिन बन गई उपेक्षा के कारण  
अनुचित प्रलोभ से हुआ अचानक वृषित मन  
बहुता का गरल पिलाना कितना सरल काम  
करती कँकेयी कूटिल मन्थरा को प्रणाम ।

सम्पूर्ण अयोध्या में अपूर्व उल्लास व्याप्त  
राज्याभिषेक के सभी कार्य प्रायः समाप्त  
चिन्ता-विमुक्त नृप दशरथ थके-थके-से अब  
मन में उमंग क्व से कि 'प्रिया को देखूँ कब ।  
कब म्वय मुनाऊँ जाकर सब मुछ रानी को  
क्य मुनूँ अमृतमय उसकी कोमल वाणी को  
मैं वही आज की रात गिनाना चाह रहा  
दुख है कि दो दिनों में उससे कुछ भी न कहा ।  
ज्योतिष-विचार में उलझा रहा तरंगित मन  
पर, मिला पुष्य नक्षत्र कि जिममें हो पूजन

अब शीघ्र मुनाल वंकेयी को मुखद वात  
 काद उम्के लानन्द-भवन मे आज रात ।  
 उसकी रमणीय दाटिका मे विचर बुछ घण  
 देखे इन जांलो मे दनन्त के विले नुमन  
 देहे उपवन के स्फटिक नरोवर के नमीप  
 आज ही रात तय तो रघुदुय का मे महीप ।  
 धूम रनी के सग-सग पुष्पिन पथ पर  
 देखे चक्षुनर पर चट कर मन्ध्या-दिनकर  
 मोन-मी लाली मे देखे मुरभित मुखदा  
 वंकेयी का मुख अब तक पुनम का टुकटा  
 उनक घु घराले केग कि जंस मोर-पत्र  
 उसकी लम्बी श्रीवा जंस स्वताभ धल  
 उसके नयना मे मुघा-यामिनी की राका  
 निकला प्रेमानृत ही, जब-जब उनन ताका ।  
 आ जाते उनके निकट हन पछी अनक  
 उसकी मुन्दरता मे अदभुत शासन-विवक  
 सकट मे उसने मदा वंटाया कृन्ल हाथ  
 वंकेयी ने मव दिन ददाग्य का दिया साथ ।  
 होता स्वभाव-ममता के कारण प्रेम मधुर  
 होता न कभी भी हृदय वृद्धि-सा स्वाप-चनुर  
 उर ही करता मव बुछ अर्पण, यह नन लकाट्य  
 करने गती है चतुर वृद्धि ही कुटिल नाट्य ।  
 थजा ही सर्वोत्तम गुण ह त्रिय नारी का  
 है अमृत भरा हर पूर हृदय की ब्यारी का ।  
 —नोचते-नोचते दगरथ बहुत दर आए  
 आनन्दित मन मे मुघियो के नपने छाए  
 लहराए स्नेह-समीर मृदित मन के भीतर  
 आत्मा के पट पर अकिन राम-रूप मुन्दर  
 स्मृति-निहासन पर सीताराम मुकुटधारी  
 जन-मन-मयक की निखरी बिलरी उजियारी ।  
 वामल्या, वंकेयी—मद बोई अति प्रनत्र  
 सचकी आंखे राज्याभिषेक मे प्रभाच्छत्र ।



- सुधि मे निमग्न दशरथ पहुँचे अब द्वार-निकट  
 झुक गए सभी ग्रहरी-दासी के भस्तक झट ।  
 उलमुक तन-मन का अब अन्त पुर मे प्रवेश  
 लम्बे दर्पण मे प्रतिबिम्बित कोस-अनरेन  
 क्यों नही अभी तब नृदुल प्रिया का आलिंगन ?
- अति द्यग्र-व्यग्र पल भर मे ही नृप-विक्रम मन  
 सौरभ-भुरमित प्रासाद जित्तु प्रेयसी बहा ?  
 चाँदनी हर जगह किन्तु नही चन्द्रमा यहा  
 दो पुष्पहार है यहा, बहा पर प्रणय-गान  
 सब कुछ है, सब कुछ, लेकिन कहां चकोर-प्राण ।  
 खाली है बनवासन, सुनी है प्रिय शय्या  
 जाने किस ओर प्रवाहित चंती पुरवाँया  
 क्या अभी प्रनाधन-व्यस्त प्रिया ? देखूँ भीतर  
 पर, कहां ? यहाँ भी नहीं, वहाँ भी नहीं लहर ।  
 घबल मुलोचने ! कहां छिपी, तू कहां लुकी  
 हेरते-हेरते आँखें मेरी धकी-झुकी  
 है धका आज हे प्रिय ! वसन्त-परिहाम न कर  
 छिप-छुप मर मेरे मन में केठि-नरग न भर ।

इतने मे नृप के निकट एक दाम्नी आई  
 एक ही वाक्य कह कर वह मत्सा मकुचाई  
 'हे महाराज ! देवी तो कोपभवन में है ।'  
 आश्चर्य-विकित दशरथ वि आज क्या मन में है ?  
 आए वे कोपभवन में पहली बार कहां  
 विखरे हैं आभूषण भूत-पन जहाँ-नहीं  
 दिखरा है हीरकहार, उधर विखरे मोनी  
 बंकेयी की आँखें न अभी हँमती-रोनी  
 हैं गुने वेश, है मग्नि वसन, मूर्च्छित-गा मन  
 पर, वसव रहा है पहले-सा ही चन्द्रवदन  
 सुन्दरता वंसी की वंसी नू पर लेटी  
 वाशों के वादल में किम पूनम की बेटी ?

आंखें नीचे ही गड़ी हुई, फैली बांहें  
 उठती-गिरती-सी सांभें भरती-सी आंहे  
 अगूरो-सी चरणागुलि मछली-सी छटपट  
 मणि-मुख पर लटकी-सी अपनी ही नागिन-लट !  
 दोनों मुट्टी में नोध, मुकटि में कपट-लहर  
 जाने कैसा होगा जिह्वा का गुप्त जहर  
 किम हठ के स्मारक-नी इतनी रठी नारी  
 छवि के प्रकाश से निकल रही अब अधियारी !  
 आते ही कुछ भयभीन हुए भावुक दशरथ  
 सूझा न शुद्ध मन को कोई भी गवा-पथ  
 'प्रियतमे ! न ऐसा कभी किया पहले तुमने,—  
 कलक तो हँस कर प्रीति निभाई है हमने !  
 —बोले चिन्तित नृप बैठ, तुरत भू पर सट कर,—  
 कँकेयी के कर-कमल प्रकम्पित कर में धर :  
 'तुम कभी नहीं इतनी रठी भोली रानी !  
 क्यों नहीं निकलती है मुख से कोई वाणी ?  
 हे देवि ! कहो जल्दी कि तुम्हें क्या हुआ आज ?  
 किस करण नोध में डूबी मन की मधुर लाज ?  
 अधखुले नयन खोलो, बोलो हे इन्द्राणी !  
 क्यों नहीं निकलती है मुख से कोई वाणी ?  
 देखो अब मेरी ओर कि कितने दुखी नयन  
 हो रहा असह कोमले ! तुम्हारा भूमि-शयन  
 किसने अपमान किया प्रिय है ! मेरे रहते ?'  
 —हो गए मीन दो क्षण दशरथ कहते-कहते  
 तब तक तन-मन में बहुत व्याप्त मन्थरा-गरल  
 ईर्ष्या के कारण मुन्दर नारी क्रोध-विकल  
 अपनी ही ज्वाला से जलता अपना शरीर  
 अपनी ही पीडा से पीडित नारी अधीर !  
 अब नहीं नाटिकाएँ केवल तन में, मन में  
 प्रतिशोध-भावना तडित-चपल चिन्तन-रण में  
 कांपने लगी आनोश-भरी दामिनी-देह  
 मन-ही-मन शोषित प्रदन कि 'भूठा नृपति-स्नेह !

शामक वो क्या विश्वास कि कब क्या कर खेल  
 किसको कब किस गड्ढे म दे सहया घकेंल  
 मनमानी उसकी बात, हठी उसका मानस  
 कह दे वह दिन को रात, रात को दिव्य दिवस ।  
 कब किसको दे वह छोड़, साथ दे कब किमका  
 कर लेता है वह सग कभी जिसका तिसका  
 वचनो को जाता भूल, अहम् मे रहता वह  
 रहती न याद उसको कि कहां क्या कहता वह ।

अति विकट परिस्थिति देख, अयोध्यापति विचलित  
 चित्तवन चिन्तित, आगा-उत्कठाएँ चिन्तित  
 अगुलियाँ सहलाती सी मसृण मयूर-कण  
 लोचन-जल मे सुन्दरी प्रिया का मलिन वग ।  
 फिर तुरत गिडगिडाए दनरथ हूँ किस दण्ड ?  
 किसका मैं घूर करूँ रानी, किसका घमण्ड ?  
 तुम स्वय जानती, क्या होती सघ्राट्-शक्ति  
 उस पर भी तुम पर मरी वितनी स्नह-भक्ति  
 प्रिय । उठो, कहो क्या करना है ? आज्ञा दो अब  
 माँगना चाहती क्या मुझसे कोई वैभव ?  
 योलो क्या हूँ ? क्या नहीं तुम्हारे पास प्रिये ?  
 होता है मुझ पर क्या न आज विश्वास प्रिये ?  
 दो वचन दिए थे कभी तुम्हे भीषण रण में,—  
 वे याद अभी तक हैं रूपसि, मेरे मन म ।  
 मुझ पर जो प्रेम तुम्हारा बह किसको न ज्ञान,  
 प्रिय उठो, करो हँस कर मुझसे अब मधुर बात ।  
 मेरे शासन की बची हुई है एक रात  
 माँगो, प्रिय माँगो कुछ मुझसे अब करो बात  
 सूरज ढलने की बन्ग यह, निबलो बाहर  
 मानिनि । देखो, बाहर बँसी आनन्द-रहर  
 वजते हैं वाद्यवृन्द, छाया उल्लास-हाम  
 कोई भी पुर-वासी न वही विचित् उदास

पथ-पथ पर चहल-पहल, जन-जन में हर्ष-नाद  
 कोई भी नहीं बदाचित् जिनम कुछ विपाद्  
 वेदल तुम—वेदल तुम प्रिय हे ! अति व्यथित मान  
 वह दो मुझसे वह दो मुझसे है व्यथा कौन  
 कर ही न तुम्हारे प्रिय मुन दा राज्याभिषेक  
 माना था तुमसे कभी अभीष्ट मुखाव नेक  
 बोली थी तुम उन दिन कि राम न श्रेष्ठ कौन !  
 मुन मर्यादित प्रिय वचन, हुआ था हृदय मान  
 किन्ना सुखकर था महज तुम्हारा पराननं  
 रक्षित तुम स नव दिन रघुचुल का महादर्शन !  
 मेरी रानी ! तुमन न कभी नै निन्न हुआ,—  
 पल भर न कभी भी तुमन जन्म निन्न हुआ  
 कुछ बात बटा छटा, नग्न कान या की  
 प्रियतम ! किन्तु माकार तुम्हारी नव क्षांकी !  
 बानी यदि काटे बान, उस पूरा कर दू  
 इच्छा की क्षोत्री का नहण क्षण म भर दूँ  
 बैठेगा राम तुम्हारा ही निहानन पर  
 माँगूंगा तब तुमसे ही मत्र कुछ जीवन भर !—  
 तुम दोनों म अति म्मह, तुम्हारा वह पूजक  
 वाम्मल्य-प्रभूपित पुत्र मदा आज्ञापालक  
 हे भरतमानु ! मन्त्रमुच म मुम्हीं राम-माता  
 निज जन्मी मे भी तुमसे उनका प्रिय नाना  
 किन दिन न तुम्हारे चरणो पर उनका मन्तन !  
 तुमको भी चैन वहाँ बाए न राम जब तक  
 सभव कि आज वह भी मुझसे हो निग नहीं  
 हो नहीं मिया म्रत के वाग्ण अवकाश वही  
 रानी ! अत्र शीघ्रें मोगे, मेनी द्यवा हरो  
 यदि कोई भूल हूँ नृचने लो क्षमा करो  
 मेरे ज्ञानन की बची हूँ है एक रात  
 माँगो, प्रिय माँगो कुछ मुझसे, अब करो दात  
 दो वचन दिए थे कभी तुम्हें भीषण रण में,—  
 वे याद अभी तक है रूपनि ! मेरे मन में

मुझमे न कभी भी छत्र प्रपच, तुम जान रही  
 कँकेयी ! तुम तो दशरथ को पहचान रही !  
 क्या हुई उपक्षा प्रिय, मुझसे ? क्या मैं नोचिन ?  
 देता ही आया तुम्हें प्रेममय आदर निन  
 कहने को तुम छोटी रानी पर, तुम्हा बड़ी  
 आई न किसी दिन निरस्कार की कभी घड़ी  
 मेरे सम्मुख तुम प्रणय-पुष्प मी निन-नवीन  
 नीडित नयनों के शीतल जल मे नयन भीन  
 प्रिय ! उठो-उठो, अब उठो उठो, अब उठो आज'  
 —इतना कह कर चुप हुए निवेदित महाराज ।

रानी कँकेयी के उर मे विपरीत भाव  
 मन की सरिता पर तिरनी मी प्रतिशोध-नाव  
 पनि की निष्कपट पुकार तरंगित कानो मे  
 सारी इच्छाएँ केन्द्रित दो वरदानो मे !  
 आस्या की दृढ दीवार अचानक हिलती-मी  
 मन के भीतर मन्थरा स्वप्न-सम मिलती-सी  
 'कँकेयी ! रहना सावधान चतुराई से  
 वचना राजा की प्यार भरी परछाई से ।  
 सब कुछ कह कर भी उसने तुमसे कुछ न कहा  
 यों ही वह भावुकता की धारा पर न वहा  
 दो वचन अभी तन याद उसे ! पर सत्य वहाँ ?  
 अब भी क्यों दृष्टि नहीं पड़ती है भरत जहाँ ?  
 तेरे विवाह की शक्त उस कया स्मरण नहीं ?  
 ऐंसे महत्त्व की वान लोग भूलता बहो ?  
 तेर दोनो वरदान भरत-हित भाग्य-वाण  
 इनम ही छुपा हुआ तेर मन का निदान  
 मत भूल कि तू अन्तिम निशीथ की रानी है  
 तू कोप भवन की अन्तिम प्रणय-कहानी है  
 विश्वाम आज पर कर, क्या का न भरोसा है  
 सा ले, थाली मे जो कुछ आज परोसा है ।

है तेरा अति प्रिय राम, भरत क्या पुत्र नही ?  
 तेरे अपने उर का वह अपना नून नही ?  
 पाला है किसे उदर मे ? तू यह जान रही  
 अपने के रहते तू किमको पहचान रही ?  
 कुछ कहना था राजा को तो पहले कहता  
 अनुमति पाकर ही वह अपनी गति पर कहता  
 सब कुछ करने के बाद अभी वह आया है  
 तेरे मन पर वह असमय घन-मा छाया है !  
 सकल्प तोड़ देने पर फिर अन्तित्व कहां ?  
 भ्रुक जाने पर रह जाएगा व्यक्तित्व कहां ?  
 अपने को अपना मान, छोड़ अन्य का मोह  
 अपमानित नारी ही करती है उग्र द्रोह  
 उठ कर अब बैठ, विकल नृप-नयनों को निहार  
 सुन्दरता के सम्मुख उनका मन गया हार  
 तेरे चगुल में फँसा हुआ सम्राट् आज  
 मत कर—मत कर चंचले ! तनिक भी लोकलाज !

कैकेयी के मानन मे अब मन्थरा-गरल  
 ऐसा प्रलोभ-मद कभी-कभी विश्वास-विरल  
 रह-रह कर वृद्धि-विकल मन मे विस्फोट घोर  
 अब आत्म-नाटिका अनल-अश्रु से मराबोर !  
 मन्तिष्व-पटल पर विविध दृश्य आते-जाते  
 भीतर ही भीतर प्राण बढ़त ही जकुलाते  
 लगता पि अयोध्या मे राक्षस-सेना आई  
 अन्तःपुर तक उद्भ्रान्त असुरता छितराई !—  
 इस न्वपिञ्च चिन्ता-क्षण मे मक्षम राम-चाण  
 पुरपोत्तम वीर पुत्र सचमुच वितना महान  
 —कैकेयी की आँखों मे अनीगन न्वपिञ्च,  
 निश्चय ही रामचन्द्र जन-जन का महामित्र !

मन्थरा-गरल अब अधिक तीव्र, अब अधिक लाल  
 डँसने को व्याकुल भूपति को अब कपट-व्याल  
 फँला दशरथ-दृग मे प्रिय का मुग्धमणि-प्रकाश  
 आसन पर अब दोनों, अघरो पर मधुर हास ।  
 विद्युत् की लता-चट्टी-सी तन-तर-वाँहो पर  
 विखरे-विखरे-से फूल रूप की छाटो पर  
 कामना-सपेरी तुम्बी तुरत वजाती-भी—  
 मोहिनी माधुरी तन-भन पर विपराती-सी ।  
 कलिका-भी हँसती कँकेयी ने कहा—'नाथ ।  
 निष्ठापूर्वक क्या रही न मैं आपके साथ ?  
 कल आ न सके क्यों ? रही प्रतीक्षा करती मैं  
 जाने क्यों कुछ कहने मे है अब डरती मैं ।  
 नृप के रहते मैं नहीं किसी से अपमानित  
 होती आई है हर प्रकार मैं सम्मानित  
 एक ही रात की अब रानी—पटरानी है  
 कल ही कुम्हला जाए वह कुसुम-कहानी है !  
 दो दिए गए वचनो की याद दिला दी क्यों ?  
 सुधि की मदिरा आपने सहपं पिला दी क्यों ?  
 इच्छा पूरी कर दें तो कुछ मैं आज कहूँ  
 या यो ही अबतक-सा केवल चुपचाप रहूँ ।  
 आज्ञा हो तो कुछ बोलूँ मैं हे प्रिय नरेश ।  
 वचनो को पूरा करते क्या होगा न वंश ?  
 कुछ माँगूँ लेकिन मिले नहीं तो दुख होगा  
 आश्चर्य नहीं नि देख केवल मुक्त होगा  
 यहिए तो मैं कुछ कहूँ अन्यथा नहीं कहूँ  
 वरदान प्राप्त कर भी पर्यर-सी मौन रहूँ  
 कुछ लेने को ही वीपभवन मे आई मैं  
 करती है अपने लिए आज निठुराई मैं ।

निरुद्ध दशरथ आह्लादिन प्रिया-निवेदन से,  
 बोले वे रूप-मन्त्र-मोहित प्रमुदित मन से—  
 'कहता है राम-दास्य लेकर, मांगो नुससे,—  
 छल किया कभी भी हे रानी ! मैंने तुमने ?  
 वीरता तुम्हारी याद अभी तक है रण की  
 भूलूँ कैसे अनुपम सेवाएँ उन क्षण की  
 मेरे घायल तन से निकाल कर बाणों को—  
 हे देवि ! बचाया था तुमने ही प्राणों को !  
 तुमने ही फूटे निर मे पट्टी बाँधी थी,—  
 मेरे रण-रथ पर तुम नाहन की बाँधी थी  
 यदि तुम न वहाँ होती तो मिलती नहीं विजय  
 वह केवल भीषण युद्ध नहीं, था समर-प्रलय !  
 भिट जाना मैं, यदि तुम न वहाँ रथ पर होती  
 गिर जाता मैं यदि तुम न खड़ी पथ पर होती  
 होना है अभी उरुण, मुझसे मांगो ही अब  
 तुम आज नहीं मांगोगी तो मांगोगी कब ?  
 मन्नाट आज भर ही है मैं, मांगो प्रिय हे !  
 मांगो इस क्षण ही, आगे समय रहे न रहे  
 है यही उचित अवसर कि चुका हूँ ऋण अपना  
 बनने मत हूँ मैं सत्य-वचन को अब नपना !  
 खाता न राम की शपथ, अगर कपटी होता  
 देना न वचन, यदि मन कोई भी छल टोता  
 उपकार भूल जाता केवल बलुपित मानव  
 जो छली-प्रपची, वह भी तो नू का दानव  
 मांगो, प्रिय मांगो, निकलो कोपभवन से अब  
 उद्यानकुञ्ज मे चलो, सुनो नूनन बलरव  
 गमगमा उठे हैं चारो ओर वसन्त-फूल  
 वाटिका-वीथि पर उडते सौरभ के दुल्लू  
 'रघुकुल की रीति यही कि प्राण से थपु वचन  
 मांगो, मांगो हे देवि ! अभी इस क्षण, इस क्षण !'  
 —नुन कर सुखकर पति-व्यन, वज्र-मन अति कठोर  
 निर्ममता की गहरो का कोई नहीं छोर



अति निठुर नयन, अति निठुर प्राण, अति निठुर देह  
 पत्थर बन जाने पर उर मे क्यो रहे स्नेह !  
 आग्नेय कठ मे विष ही विष का विषम कोष  
 सुन नृप अवाक्-निर्वाक्, गरुडमय शब्द-धोष  
 'सम्राट् ! स्थगित हो स्थगित, राम-राज्याभिषेक  
 वंठे गद्दी पर पुत्र भरत, यह मांग एक ॥  
 दूसरी मांग यह हे रघुवशी विश्वासी !  
 चौदह वर्षों तक राम बने अब वनवासी ॥  
 दण्डकारण्य मे रहे राम, इच्छा मेरी  
 जाने मे नही करे वह ममताबन्ध देरी  
 श्यामे वह सुन्दर राजवस्त्र, पहने वल्कल  
 गंगा-तट तक ही रथ-यात्रा, बाकी पंदन ।'

सुन अग्नि-नाद, दशरथ के दोनो कान सत्र  
 केवल शरीर ही नही, प्रकम्पित प्राण सत्र ।  
 उच्चरित मात्र 'हे राम !' कांपते होठो पर,  
 तन थर-थर-थर, मन थर-थर-थर, आत्मा थर-थर !  
 'क्या कहा मुझे—क्या कहा मुझे कँकेयी ने ?  
 उसने क्या अपने मुँह से कहा जहर पीने ?  
 भगवान ! सही क्या सुना ? मुझे विश्वास नही !  
 कँकेयी धरती छू सकती, आकाश नही !  
 हे राम ! तुम्हारी माना कितनी क्रूर-क्रूर  
 वह भेज रही है तुम्हे यहाँ से दूर-दूर  
 कँकेयी ! निज निर्णय पर कर तू फिर विचार  
 अपनी आँखो से फेंक न इतना अन्धकार !  
 जिसने तुझमे भर दिया गरल ? वह कौन ? कहाँ ?  
 क्या अपने दशरथ के समीप तू खड़ी यहाँ ?  
 जिसने तेरे मन मे भर दी कुत्सित माया ?  
 तेरे उर मे किस कटुता की बलुपित छाया ?  
 दाघिन ! तू ने किसके मृग पर पजा मारा ?  
 तेरी आँखो मे क्या से इतना अधियारा ?

किस कररण सररर खेल वरगड रही है तू ?  
 नरज कर से ही उदरन उजरड रही है तू ?  
 छर छर कैकेयी ! तू क्या वररघर को वेटी ?  
 थी गरल छररर कोरररवन डे तू लेटी ?  
 करपी होती है अतर आकरररक नररी क्या ?  
 सररर को छररर कर रखती है डुलवररी क्या ?  
 तेरे कररण रघुकुल-डरररररर हुरई डग  
 तेरी सरररर डे कर से जररीणी तररग ?  
 डीने तो शुदु हृदय से तुझको कुररर डररर  
 झरझोर दररर डर, तूने उर को एकर वरर !  
 कर डरर वरररर कर डरर वरररर, कर डरर वरररर  
 तू ने इस करण क्या कहा, सोच तू वरर-वरर  
 अरनी गलती को सडड और डरर कर नरररर  
 डुन अरने आरुड-वुडररर डररर कर एकरनुत वरनय  
 आडररर न कर ऐसर कुर नरकलने लगे डुरर  
 डत चलर हृदय डर अरनर अनुचरन डनुद-खरण  
 तू रघुकुल की ररनी, है दशररर-डरररर तू  
 करररररर नही जरनती जो वर आररर तू  
 इतरररर हुरेगर तुझ डर, गरली डेगे सब  
 इस वररर डडी डे कर तू स्वडडु सतुड-अनुडव  
 नैतरर अरररर नही कर तू डेरे रहते  
 तेरे कररण ही वृग से अब आंसू वरते !  
 आरर कुरे तेरे डन डे कुतररर वररर  
 उरररर हुआ डरनस डे क्या ऐसर वररर ?  
 ऐसी कुवुदुदरर कुरर हुरई कुर इतनी डलरन दृषुतर  
 नररुरे ! तेरी आंसू से ऐसी डरर-वृषुतर ?  
 जरगल डे ररड रहे ! कुरे डर कहा हरर,  
 वररने वतलररर तझे अनैतरर डर उडरर ?  
 किस कररण तू दे रही ररड को करूर दणुड ?  
 दणुडकररणुड डे रहते हरररर जनतु वणुड !  
 डड की आडररर होती डुररररर उड वन डे  
 चरनुतर ही चरनुतर नरत डररती रहती डन डे

कव कौन जानवर आकर किसको खा जाए  
 कव कौन सर्प सोए मे जीभ मटा जाए !  
 कव कौन ऋक्ष पी ले शोणित, कव दौड़े गज  
 कव किस कोने से सिंह-सिंहिनी उठे गरज  
 आए वाराह-भ्रुण्ड कव दन्त-कृपाण लिए  
 कव घेरे विपिन-ध्याघ हाथो मे बाण लिए !  
 सोचा तूने वन का दारुण परिणाम कभी ?  
 जगल मे जी सकता है मेरा राम कभी ?  
 उसकी कोई निन्दा न किसी ने अबतक की,  
 मेरे सहृदय सुत ने तो सब की सुधियाँ ली  
 कँकेयी ! तेरे प्रति तो उसकी अतुल्य भक्ति  
 सेवा के कारण ही उसमे नेतृत्व-शक्ति  
 सुर-मुनि-ऋषि-सा वह तेजवन्त नित स्नेहशील  
 है दर्शनीय उसका मुखमण्डल सुभ्र नील !  
 वह सत्य-शौर्य-व्रतिरूप, विनय-विद्या-प्रतिनिधि  
 गुणगान करूँ उसका कितना, कैसे, किस विधि  
 हूँ पिता, स्वय अपने मुख से क्या कह पाऊँ ?  
 गुण ही गुण जिसमे, उसका क्या-कह बतलाऊँ ?  
 कँकेयी ! मेरी मनोदसा दयनीय अभी  
 दुख का ऐसा अनुभव जीवन मे नही कभी  
 जाने मत दे तू मुझे अधर्म-सरणि पर हे !  
 चढने मत दे तू कभी अनीति-तरणि पर हे !  
 मत बन पिशाचिनी प्रिय पत्नी, मत बन निर्मम  
 तू स्वय समझ कर विषम भाव को बना सुगम  
 ले अब विवेक से वाम, मर्म पहचान आज  
 मेरी मर्यादित बात भामिनी ! मान आज  
 है राम-भक्त निष्पट भरत की जननी तू  
 है नही षपट-कालिमा-कलवित रजनी तू  
 हूँ साक्षी मैं तेरे सब सुन्दर बर्णों का  
 पारखी रहा हूँ मैं तेरे गुण-मर्मों का  
 निकली कँसे तेरे मुख से निष्ठुर वाणी  
 उतरा कँसे तेरी इन आँखों का पानी

नारी ! तू कैसे वनी आग की चिनगारी ?  
 किस कारण तेरी शीतल बुद्धि गई मारी  
 आई थी स्वर्ग वसाने तू इस पृथ्वी पर  
 नारी के बिना अधूरा ही रह जाता नर  
 मृदुता-ममता का अमृत मिला है तुझे नारि !  
 तेरी आँखों में करुणा का आनन्द-चारि  
 तू पुलक प्रेम की मूर्ति, स्नेह-श्रद्धा की छवि  
 तेरी गुण-गरिमा का वर्णन करता है कवि  
 कौसी निर्ममता आज कि ऐसी आग वनी ?  
 किसके कहने पर अब तू गरल-पराग वनी ?  
 घर को उजाड़ कर चैन भला पाएगी तू ?  
 अपनी मर्यादा से बाहर जाएगी तू ?  
 किस बाहुकार ने तेरे मन को मोह लिया ?  
 किसकी विष-वाणी पी, तू ने विद्रोह किया ?  
 चुगली से बढ कर पाप नहीं कोई चंचल  
 भीतर ही भीतर भर देती है यह हलचल  
 दूषित हो जाता मन, चकराने लगता सिर  
 उठने लगता है क्रोध, उच्चता जाती गिर !  
 रह सावधान ऐसी विषमय नर-नारी से  
 बच कर रहना तू चुगली की चिनगारी से  
 दुष्टता नहीं ऐसी कोई, यह याद रहे  
 विश्वास न करना, कोई जब खल-वाक्य कहे !  
 मदिरा-सी मीठी होती चुगली की वाणी  
 निन्दा की ध्वनि होती न कभी भी कल्याणी  
 चढ जाती उसकी भादकता मन के ऊपर  
 भंगराने लगती है ईर्ष्या की लपट-लहर !  
 नारी में जब दुर्गुण, समाज में विषम व्यथा  
 मत बन कँकेयी ! तू अवगुण की आत्मकथा  
 निन्दा का शब्द-जाल ही पातक होता है !  
 सहसा अगियाया मन अति घातक होता है !  
 कँकेयी ! इतनी तू न बन—तू तू न बन  
 शीतल विवेक से स्थिर कर, स्थिर कर चंचल मन

मत भेज राम को वन, रहने दे उसे यहाँ  
 उसके जाने पर देखेगी तू मुझे वहाँ ।  
 बस, जान कि दशरथ राम-रहित होगा न कभी  
 प्राणों का पछी उड सकता है अभी-अभी  
 तू नहीं समझ पाती कि दशा क्या है भेरी  
 मैं देख रहा हूँ अथु लिए आँखें तेरी  
 रह पाएगी सीता क्या अपने राम बिना ?  
 सबव न अकेले ही उसका भू पर जीना  
 मर जाएगी कौसल्या छाती पीट-पीट,  
 रोएगी उसके बिना भवन की ईंट ईंट  
 सूना हो जाएगा सब कुछ, सब कुछ सूना  
 तब होगा ही तुझको भी मुझसे दुख दूना  
 जीवित न रहेगा भरत, वचेंगे बन्धु नहीं  
 उस घोर विपद से मर जाए तब तू न कही ।  
 कँकेयी हे । मैं तेरा चरण पकड़ता हूँ  
 उठने वाली दुख की झझा से डरता हूँ  
 घर के दीपक से घर में आग लगा न कभी  
 अनुचित अन्याय-अनल-कण नो मुलगा न कभी ।  
 अपने वरदानों को न आज अभिशाप बना  
 तू प्राप्त पुण्य को स्वयम् न दुस्सह पाप बना  
 अपने हाथा से अपने को विध्वस्त न कर  
 उगते-से अपने दिनमणि को तू अस्त न कर ।'

यह कहते-कहते दशरथ का तन-मन कम्पित  
 बोली कँकेयी तत्क्षण ही 'राजन्, धिक्-धिक्' ।  
 उल्टी-सीधी बातों पर अब विश्वास नहीं  
 मेरे समीप धरती, सुदूर आवास नहीं ।  
 नर भी तो नारी-सा अबुलाता कभी-कभी  
 क्या-क्या न सुना मैंने पनि मुख से आज अभी  
 उत्तम कुल का व्यक्तित्व लोभ-आलायित क्यों ?  
 मोह में फँसा मानव इतना करणायित क्यों ?

समराङ्गण मे मांगे न वचन, वे स्वयम् मिले  
 मिलने की वेला ही झझा मे फूल हिले,—  
 झोको से कोमल पन्डुडियां झरती जानी  
 अपनी ही आंखो मे अब आंखें अबुझती !  
 धिक् ! राम-शपथ खाकर भी यह आनाकानी  
 भूटी होने को है क्या अब रघुकुल-वाणी ?  
 अपनी बातो स हाथ, नृपति अब मुकर रहे  
 अपने ही कारण अब वे मृदु पर विगड रहे !  
 अब अपनी वस्तु नहीं कोई क्या इन जग मे ?  
 जलधार नमस्त कर भटका मन-मृग मरु-नग मे !  
 मर्यादा दृट रही कि वचन का मू-य नहीं  
 लगता कि आज रघुकुल रविकुल के तुन्य नही  
 देकर भी पदचानाप और लेकर भी दुख !  
 कितना विचित्र होता जीवन का मिथ्या भुख  
 सत्यमय वचन वा जिवि ने या निर्वाह किया,—  
 याचक को तन का मान काट कर नुरत दिया !  
 आखें निवाल कर दी अर्क ने वचन-हेतु  
 मन-कम-वचन-पालन से ही दृट घम-सेनु  
 मत करें वचन को भग, प्रतापी महाराज,—  
 अन्यथा गरल पी दूंगी मैं इस समय आज !  
 विपपान न मुझमे दूर, मृत्यु मेरे समक्ष  
 बन जाएगा म्मारक मेरा यह कोप-वक्ष  
 देखेगा मेरे शव को कांसल्या-कुमार  
 खुद जाएगा सहना रहस्य का बन्द द्वार  
 मैं भूठ नही कहती हूँ हे चिन्तित राजन्,  
 करना होगा अब मुझे मरण का अभय वरण  
 खाती हूँ भरत-शपथ में भी यह करने को  
 पंकेयी अब तैयार वचन-हित भरने को !  
 प्रिय पति को नही कलकित होने दूंगी मैं  
 पी लूंगी मैं—अब जालबूट पी लूंगी मैं  
 पालूंगी मैं इदवाकु-वद का वचन-प्रमं  
 होगा उद्घाटित निश्चय ही वरदान-ममं !

कहिए राजन् ! इच्छा पूरी करते कि नहीं ?—  
सत्-पथ पर अपने पग को अब धरते कि नहीं ?  
मैं मोच-समझ कर माँग रही अन्तिम उत्तर  
जो कहना है, वह कहिए अभी मुझे सत्वर'

दशरथ के चिन्ता-सागर में अति व्यथा-ज्वार  
दुःख ही दुःख केवल दीख रहा है आर-पार  
'अति हठी त्रिया की जिह्वा में विष-मोघ-अनल  
प्रतिघोष-रोग से नमरा चञ्चल मन दुर्वल !  
नोधित नारी में नहीं स्नेह-सतुल्य-भाव  
अति स्वार्थ-सत्रल अन्तर में ही कपटी दुराव  
सोचा न कभी था, वर इतना निर्मम होगा,—  
देने के पूर्व कभी दाता को भ्रम होगा !  
लोभी मन ही तो अनुचित लाभ उठाता है  
सञ्जन मनुष्य ही जग में बहुत ठगना है  
कँकेयी को अब कँसे, कितना समझाऊँ  
बुद्ध करने के पहले अब मैं ही मर जाऊँ !  
होना है सुलकर नहीं जगत में बहु विवाह  
उमके कारण ही आज हृदय में ओह-आह !  
रघुकुल-रक्षा-हित ऐसा करना पडा मुझे,—  
मन-ही-मन इस युवती में डरना पडा मुझे !  
फट मिला रूप-पूजा का अब कितना खोटा !  
सम्राट् चक्रवर्ती लगता कितना छोटा !  
दयनीय दशा मेरी है कितनी दुःखदाई  
मैं देख रहा हूँ स्वयं मृत्यु की परछाई !  
क्या कहूँ और क्या नहीं कहूँ, ऐसी उलझन  
कँसे में छोड़ सकूँगा अपना सत्य-वचन !  
पर हाय, राम-वनवास ! इमे टालूँ कँसे ?  
किञ्चित् कृष्णा कँसेयी से पा लूँ कँसे ?  
कहूँ कि भरत ही होगा राजा, राम नहीं !  
पर, वन-निष्वासन तो है अच्छा काम नहीं'

बोले दत्तरथ : 'अर्द्धाङ्गिनि ! मेरी बात मान  
 मत मुझे—मुझे मत देवि ! पराया पुरुष जान  
 कर एक बार तू दया, दिला अपनी ममता  
 तू देख सभी पुत्रों में प्रेममयी समता  
 क्या राजा बनना चाहेगा अति नम्र भरत ?  
 क्या नहीं जानती है तू उसका बान्धव-व्रत ?  
 उसमें न तनिक भी कही राज-नद है रानी,  
 वह मदा बोलता सुमधुर माधु-सरज बाणी  
 तू अपनी इच्छा से उस पर आघात न कर  
 उसके आचरण-विरुद्ध आज तू वान न कर  
 जानता पिता भी अपने पुत्रों का स्वभाव  
 है नहीं किमी से मुने लेश भर भी दुराव  
 साक्षी है मेरा घमं अचानक निर्णय में  
 है छिपा भरत-बल्याण राम की ही जय में !  
 निर्णय मेरा ही नहीं, प्रजा का अभिमत भी  
 गुरु, ज्ञानी, ऋषि-मुनि का निर्णीत विमलं यही  
 मनमाना नहीं किया, तुलसे सच कहता है  
 प्रत्येक कार्य में घमं-मार्ग पर रहता है !  
 तू मांग दूसरी वस्तु, उसे दूँगा निश्चय  
 पर, रहने दे ज्यों का त्यों सामूहिक निर्णय  
 राजा है लेकिन मन में है जनतन-भाव  
 है देश-देश में व्याप्त सहज रघुकुल-प्रभाव  
 यो ही न चक्रवर्ती है, है दायित्व अधिव  
 सहृदय प्रभुता के कारण शासन निर्वाधित  
 सीमित मेरा सुख-भोग, सुनिश्चित नृप-साधन  
 जनयुक्त जनार्दन का करता मैं आराधन  
 सात्विक नदिव आचरण, सभी कुछ रहते भी  
 मन में मिठास, बटु मत्स्य वाक्य को कहते भी  
 कँकेयी ! तू मेरा अपना अब घमं बचा,—  
 तू निपटुर हठ को छोड़, तुरत अपने में आ !  
 कर क्षमा कि मैंने कुछ बडवी-मी बात कही  
 मेरे मन में कोई भी कही दुभाव नहीं



तू स्वयं जानती दशरथ को, पति, भूपति को  
 जानती सदा से तू मेरी निश्छिन्न मति को ।  
 मैं क्षमा शत्रु को भी करता, तू जान रही  
 कैंकेयी ! तू तो रोम-रोम पहचान रही  
 तुझसे छल कभी किया मैंने ? री, बोल-बोल  
 सारे जीवन की तू अपनी सुधियां टटोल  
 छल किया कभी मैंने तुझसे ? पटरानी हे !  
 थव नही उतरने दे आंखों का पानी हे !  
 राज्याभिषेक की सारी तैयारी समाप्त  
 होने दे अपने रामचन्द्र को तिष्क प्राप्त ।  
 वह देख, उधर वातायन पर हँस रही भोर  
 आती है चैती प्रात-पवन की अब हिलोर  
 कुछ घड़ियों में ही होगा उत्सव-गुमारम  
 सच कहता हूँ, कुछ भी न राम में राजदम ।  
 सच कहता हूँ, कौसल्या ने भी कुछ न कहा  
 उसका निष्पक्ष हृदय अपने में सदा रहा  
 प्रभु-इच्छा से ही मेरी इच्छा हुई ध्वनित  
 मत हो—मत हो निर्णय से तू आश्चर्यचकित  
 लगता, सरसू-तट चले गए अब साधु-सन्त  
 गूँजता स्नान-मन्त्रों से किंचित् दिग्दिगन्त  
 हो रहे मलिन उज्ज्वल तारे, हँसता अम्बर  
 अब गूँज रहे होंगे मंगल वाद्यों के स्वर ।  
 पूजा पर बैठा होगा विधिवत् अभी राम  
 दीपक से चमक रही होगी मृत्त-छवि ललाम  
 देवी सीता भी होगी इम क्षण ध्यान मग्न  
 आ रहा प्रसन्न मुहूर्त्त,—पुष्य नक्षत्र-लग्न  
 कैंकेयी ! तुझे शपथ मेरी, तू मान वान  
 कट गई तुझे समझाने में सम्पूर्ण रात  
 नयनों में केवल राम, हृदय में सिर्फ राम  
 अधरो पर उसका नाम, श्वास में राम-नाम  
 रानी ! आंखों में वादर अब, तू वान मान  
 तू वचा प्राण, तू वचा प्राण, तू वचा प्राण

होने दे नुख का नूयोंदय हे कल्याणी,  
मेरी रानी ! मेरी रानी—मेरी रानी !

रानी पत्थर-नी बडिग रही, वह बटल रही  
फुँफकार-भरी विष-जानों विह्वल चपल रही  
टकराना ही रह गया प्रथम्वित शोध-उवार  
मूर्छित राजा के मन में अब नूतन विचार :  
'अब एक मार्ग ही बचा राम विद्रोह करे  
मेरे विरुद्ध वह राममुकुट-हित स्वयं लड़े  
उम घटना ने जितना प्रनत्र होलंगा मैं  
तब नहीं मरूँगा, नहा कभी रोजंग मैं  
मारो जनता देगी ही उन्कर माय अमय  
पाएगा मेरा राम अवश्य अभीष्ट विजय  
पर कर न मरेगा वह कोई भी घृणित वान  
जो पितृवचन पाले मदेव वह पुत्र राम !  
क्या करूँ ? करूँ क्या ? अब तो मैं सब विधि निराग !  
नव विधि निराग—नव विधि निराग, हतप्रभ, हनाग  
चल रहा मृत्यु-जातास ! हो रहा सर्वनाश  
हित्ती मन की धरती, हिलता उर-दिगाबाग !  
जिस पाप-कर्म का फल नुसलकी मिल रहा अभी  
आ रही याद, मने भी की थी भूत अभी :  
मध्या में लोट रहा था मैं वन से, रथ पर  
सहना वानों में पडा किनी मृग का पग-स्वर  
क्षण में ही नदी-ओर मेरा नर नर-नर-नर  
नुन कर नर-आर्त्तनाद, बाकुड मन धर-धर-धर  
किनकी हत्या हो गई ? तपस्वी क्या छोई ?  
तम-धरे पुठिन पर साधु मनस्वी क्या बोई ?  
दाँडा में रथ को छोड, उधर-उस ओर तुरत  
हा ! वाण-विद्ध ऋषि-पुत्र रक्त से था लथपथ !  
था अब पिता-माता का इकलौता नुत वह  
जितना मार्मिक था उस दिन का वह दुःख दुःसह !

मैं उसे उठा, ले गया अब दम्पती निकट  
 उस घटना के साक्षी हैं अब तक पीपल-वट  
 वह धायल श्रवणकुमार वही पर मृत्यु-लीन  
 असहाय पिता-माता जैसे जलहीन मौन ।  
 छटपट-छटपटछट जीर्ण-शीर्ण जर्जर शरीर  
 अधी आँखों से अविरल चाहित अश्रु नीर  
 अविराम तडपते प्राण, रुदन-चीत्कार कण्ठ  
 कम्पित मेरा अन्तरतर दारुण स्वर सुन मुन  
 'हितक राजा ! अपराध जघन्य तुम्हारा है  
 अब कोई नहीं हमारा यहा सहारा है  
 भीतर-बाहर हर ओर व्याप्त अधियारा है  
 मर जाने के अतिरिक्त न कोई चारा है  
 तीर्यटिन करा रहा था हमें सुपुत्र सब  
 वह एक मात्र था दुखद बुढ़ापे का सम्बल  
 अब कौन कि इतनी सेवा करे हमारी अब  
 सोचते यही हम भी कि प्राण को छोड़ कर ?  
 पापी दशरथ ! यह कहकर ही मरते हैं हम  
 सुत के कारण होगा तुमको भी वृक्ष विषम  
 हम से भी बहुत अधिक तडपोग तुम राजन्,  
 दुस्सह दुःख स—दुस्सह दुःख से बाँपेगा मन ।'

क्या उसी पाप का फल मुझको मिठ रहा अभी ?  
 साकार हो रहे उस ऋषि के दुःख वाक्य सभी ।  
 कुछ समझ नहीं पाता कि अभी क्या करना है ।  
 मरना है, मुझको भी इस क्षण ही मरना है  
 कितना दुस्सह दुःख ! कितनी भीषण आत्म-व्यथा  
 पीडा ही पीडा पहुँचाती यह कोप-कथा  
 है असह भोव-सतप्त हृदय, परितप्त प्राण  
 शोकित बेला में साथ न देना कभी ज्ञान ।  
 अथ क्या निदान ? अब क्या निदान ? अब क्या निदान ?  
 मैं कर न सका बलुपित शका का समाधान

राजा से सभव नहीं प्रजा-इच्छा-मालिन  
 परिवार-प्रदन से लोभ-अन्तित नृन-राजभवन !  
 सभव न सत्यगत न्याय व्यक्तिगत वाग्ण से  
 हो रहा घोर अन्याय वचन-निर्घारण से  
 क्या कहूँ, सूतना नहीं अभी कोई उपाय  
 पत्नी के कारण गृह-विभेद उत्पन्न होय !  
 सुखमय-स्नेहिल भ्रातृत्व मलिन होने को है  
 पुत्रत्व-प्रेम-गरिमा नारी खोने को है  
 भाँतिपता का यह लोभ-ग्राभ कितना दूषित  
 कैंकेयी के कारण नन-नन आश्चर्यचकित !  
 होगा क्या घर-घर में कैंकेयी का निवान ?  
 होगा क्या इस कारण स्वदेश का नर्बन्धन ?  
 जैना गृह-चरित, ठीक वैना ही राष्ट्र चित्र  
 गृह ही स्वदेश का चारित्रिक उत्थान-मित्र !  
 यदि गृह-विभेद-पीडित शासक नो रण्य प्रगति  
 जैसा शासन-आदर्श, ठीक वैसी जन-मति  
 सुरज पर यदि वादरु तो भू पर भी प्रभाव  
 भँवरो में भटक रही है मेरी बुद्धि-नाव !  
 निरुपाय व्यथित दगरथ में उतनी शक्ति नहीं ?  
 कर सकूँ सत्य-रक्षा, अब मैं वह व्यक्ति नहीं !  
 टाचार हो गया मैं अपनी ही करनी से  
 मैं हार गया निज कैंकेयी शशिवर्णी से !  
 पूर्णिमा-प्रताप नहीं उत्तम, वह गरल-बल्लभ  
 उसके कारण रघुकुल को आज मित्र अपयश,—  
 ऐसा यह त्रिया-चरित कि मुकी-भी कीर्ति-ध्वजा  
 कौसेगी मुझे दुगो तक नित निष्पक्ष प्रजा !  
 होने को अब प्राणान्त, अमित आघात अनह  
 क्या कहूँ कूड़ कैंकेयी को ? रे मन, कुल वह,  
 'वनवास' शब्द मैं स्वयं निवालूँ किन मुत्र से ?  
 पीडित हूँ, पीडित हूँ अब मैं दुःख ही दुःख ने  
 हूँ चिन्तित मैं, हूँ विचिन्तित मैं, हूँ जर्जर मैं  
 रह गया आज तिमिरा वैभव, वह बडहर मैं

बुझने को जिसकी शिक्षा, वही मैं करण दीप  
लुट गया सभी कुछ जिसका, मैं हूँ वह महीप !  
'कँकेयी ! कर ले स्वयं, तुझे जो करना है  
तेरे ही त्रिप से अब दशरथ को मरना है !'

—इतना कह कर व्याकुल सम्राट् हुए भूचिन्तन,  
इतना सुनकर, कँकेयी हुई अधिक हर्षित !—  
हर्षित इतनी कि नयन दोनो फड़फड़ा उठे  
सवेग-प्राप्त मन-प्राण तुरत घड़फड़ा उठे  
खिलखिला उठी निज कोपभवन में वह नारी  
कामना बन गई तुरत कल्पना-फूलवारी !  
हो गई विजय ! लो घन्यवाद मरे स्वामी !  
तुम सचमुच मेरी सुन्दरता के अनुगामी  
अब बैठ सकेगा मेरा सुत सिंहासन पर  
मेरे दृग में राज्याभिषेक की स्वप्न-लहर !  
है कौन प्रसन्न अधिक मृगमे इस समय कहीं  
दोनों आँखें देखती अभी सम्पूर्ण मही  
बन गई राजमाता अब मैं, अब मैं अब मैं  
इस कोपभवन में हुई त्रिया की त्रिषिघ्र विजय !  
वातायन से लालिमा निकल आई नूतन  
भेजूँ नँहर निज चतुरदूत को अब इस क्षण  
कितनी प्रसन्न होगी माता मुन कर दातें  
काटूँगी मैं कैसे तबतक सुखमय रातें !  
उछरेगा भरत क्या मुन पर नानी-ममीप  
उमरे नाना का नाती भी होगा महीप !  
केवल महीप ही नहीं, चक्रवर्ती भी तो  
भावी सम्राट् भरत ! तुम युग-युग जिओ-जियो !  
तेरे वारण ही तेरी जननी जीन गई  
कँकेयी विजय-वसन्त प्राप्न कर हुई नई  
हो गया पराजित हठी पिता तेरे वारण  
तेरे वारण ही आज मुरक्षित तन-मन-धन !  
चतुराई की तलवार विजयिनी हुई यहाँ  
जान यह चमत्ती बंद-बंद, कितनी जग कहाँ

याँदन में जय करने की क्षमता हुई सफल  
 हो गया विफल कीसन्ध्या का पद्यन्त्र उबल  
 चुप हुए न्वय सत्राट् कि निध्या ठकं सभी  
 पालंगी पराधीनता का न प्रसाद सभी  
 जादंगी स्वयं सभी को अनुचित बर्नों पर  
 दिग्वास करंगी तौह प्रनामन-बर्नों पर  
 पूछूंगी मदा मन्यग से नद-नद उपत्य  
 बु बुन-नी बनरेगी वृबडी वह वृणाजाय  
 वह नीनि निपुण नारी प्रपाम के योग्य नित्य  
 मिलता है सभी-सभी ही उन्वा मुत्तद नृत्य

पर, यह नद क्या मैं सोच रही उन समय यहाँ  
 पुचकात् अब अपने पति को जो पता यहाँ  
 कर सक्ता है विद्रोह गम मेरे दिरु  
 हो सक्ता है वह पूज्य पिता पर लाज नुद !  
 नरयू-जल पर जगमगजग नूतन नृदंकिरण  
 चचल ममीर में गोविन्द शूरों में बम्भन  
 अननय वादर का टुकड़ा नभ की गाली पर  
 उस अनक-जातिमा में नी प्रात-प्रभा मुन्दर !  
 ते न्वपंकलश आपूरित पृण्य सरित-जल से,—  
 पय पर चलने में जो न सभी निचित् छात्रे,  
 आ रहे राजगुरु अपि वनिष्ठ निज शिष्य-सग  
 शोभायात्रा से राजमार्ग पर जन-तरंग  
 मज्जित हाथी, मज्जित घोडे, सज्जित रथ-पय  
 मयु, दही, छत्र, धी, पूर्ण कृष्ण—ज्ञानगी शत  
 मंगल मृदृत्त में वाद्य वृन्द की ध्वनि मंगल  
 आनन्द-तरंगित जनसमूह से प्रिय हलचल !  
 आते-आते आए वनिष्ठ प्रासाद-निवट  
 नमनुत्त मुनन्त को देख, न्वय वे बोले क्षट :  
 'राजा की मूर्खता कर दें अब कि विलम्ब न हो  
 ज्योतिष-निर्णोत वार-क्षण विचित् भग न हो !'

सम्राट्-गयनगृह-द्वार-निकट आए सुमन्त  
 बोले व निज वाणी मे भर शाब्दिक वसन्त  
 'हे इन्द्र-तुल्य राजाधिराज ! शय्या त्याग,—  
 धर रहे प्रतीक्षा सभी, कृपा कर अब जागे  
 राज्याभिषेक की तैयारी हो गई सभी  
 इतनी प्रसन्नता जन मन मे पहले न कभी  
 आकर दर्शन दें ताकि काय हो संचालित  
 —इतना ही कह कर, मंत्री मौन प्रसन्न नमित !  
 भीतर से रानी वंकेयी ही बोली झट  
 'भेजिए राम को स्वयं यही पर अभी तुरत  
 अस्वस्थ नृपति गहरी निद्रा मे हैं इस क्षण  
 वे अधिक रात तक करते रहे विविध चिन्तन !'

मन्त्री के सँग चल पड़े गम आज्ञानुसार  
 यह देख, अनेक व्यक्तियां म विस्मय प्रसार  
 पर, साहस विसमे वहाँ कि कुछ पूछे कोई  
 जिज्ञासा की लहरें जिज्ञासा म सोई !  
 है राजभवन के बाहर भी अब खड़ी भीड  
 आते हैं अब भी लोग भीड को चीर-चीर  
 तट पर ज्यो सागर-ज्वार, उपस्थित जन-तरंग  
 आई न कभी, आई न कभी ऐसी उमंग !  
 जनता के नयनों के नूतन भगवान राम  
 अपने सत्कर्मों के कारण ही वे महान्  
 दर्शन से ही दृग-नृप्ति, वात से मुदित हृदय  
 उनके सम्मुख जान पर नहीं किमी को भय  
 जो रमण कर रहे जन-भन मे, हैं वही राम  
 सुख-शान्ति भरे जो लोचन मे, हैं वही राम  
 बर्याण करें सबका प्रति दिन, है वही राम  
 सम्मान करें सबका प्रति दिन, है वही राम

आगत असस्य नर-नारी मे चर्चा-प्रसंग  
 आई न कभी, आई न कभी ऐसी उमंग  
 है महालोक-नायक मे सद्गुण ही नद्गुण  
 उनमे पर-पीडा हरने की है पावन धुन  
 अभिप्रेक-चार्य मे कयो विलम्ब ? यह प्रश्न-लहर  
 जन ही जन ने है भरी खचाखच नगर-डगर  
 है वहाँ राम ? ऊँची स्वर-ग्रहरी जाती-भी  
 जिजासा की शाब्दिक तरंग टकराती-सी ।  
 छन वे ऊपर से मौन मन्यरा देख रही  
 पर, उसका कपट-प्रधान ध्यान अन्यत्र कही  
 'क्या कैंकेयी अमफल ? कर लूँ क्या हत्या मैं ?'  
 जिममे न बुद्धि-बल, क्या ऐसी हूँ भृत्या मैं ?  
 बुद्धू रानी ! तू नही जानती कुटिल कला  
 तू केवल सुख-मौन्दर्यमयी नारी अबला  
 धिक् ! मैंने इतना व्यर्थं तुझे भमझाया क्यों ?—  
 उम बुझे दीप को फिर से म्वयम् जलाया क्यों ?  
 रमणी, तू केवल रमण-राग ही जान रही  
 तू नही मन्यरा को कुछ भी पहचान रही  
 मे गुप्तचरी रावण की ! माधारण न कभी  
 पर असफलता को देख, दुखी हूँ बहुत अभी  
 था हुआ जनपूर मे रावण-अपमान घोर,  
 जब शिव पिनाक को दिया राम ने तुरत तोड़  
 सीता के लिए विक्रम था कितना लकापति  
 मैं जान चुकी हूँ गुप्त रीति से उसकी गति ।  
 कैंकेयी ! तूने मेरा खेल विगाड दिया  
 क्या तेरे राजा ने प्रपञ्च को समझ लिया ?  
 फँस गई मोहिनी ! तू उनके ही चगुल मे ?  
 गति की अगूठी व्यर्थं बीच की अगुल मे ।  
 इतना हितचिन्तक रामचन्द्र का तेरा मन ?  
 है सर्प-रहित तेरे यावन का सुन्दर वन ?  
 ईर्ष्या का गरुड नही तुझ मे ? तू स्वच्छ सदा ?  
 तू नही समझ पाई अपनी अग्रिम विपदा ?



तू समझ गई थी किन्तु उसे समझा न सकी  
 अपनी चिनगारी से तू आग लगा न सकी  
 अपने मे तू शायद खुल खिल कर आ न सकी  
 अबुला न सकी इसलिए वज्र वरसा न सकी !  
 तू कोपभवन मे त्रिया-चरित्र दिखा न सकी  
 तू रुठ-रुठ कर पति को खूब लुभा न सकी  
 आँखो को तू भरमा न सकी, तडपा न मकी  
 कोमल कलिका-भी तू खिल कर सकुचा न मकी !  
 तू निर्मम नाट्य दिखा न सकी, गरमा न सकी  
 तू अधिक फनफना कर निज को नरमा न सकी  
 अपने हाथो से अपना जहर पिला न सकी  
 उनके मन मे तू अपनी लहर उठा न सकी !  
 कंकेयी ! तू अपनी भी प्रभुता पा न मकी ?  
 खेटे के लिए उचित कत्तब्य निमा न सकी ?  
 पाए को भी तू पा न सकी, मुसका न सकी ?  
 अब तक भी अपने घर से बाहर आ न सकी ?  
 तू मुझसे भी कुछ कह न सकी ! कुछ सुन न सकी  
 उलझन की वेला मे विष-कलिका चुन न सकी  
 तू सीधी की सीधी रानी, टेढ़ी न तनिक  
 तू नहीं राजमाता के योग्य कभी धिक्-धिक् !  
 सिंहिनी नहीं तू वह कि झपट्टा भी मारे  
 इतनी कठोर तू नहीं कि दाव नहीं हारे  
 मोई की सोई तू अथतक, अबतक, अग्रतक  
 तबतक बाहर उल्लास-हास, चकमक-चकमक !  
 तू नहीं रोक पाई रानी ! राज्याभिषेक  
 भर दिया चतुर नृप ने कोई नूतन विवेक  
 जागती रही मन्यरा रात भर चिन्तित-सी  
 आँखें मेरी सन्देह-रहित सुधि-चित्रित-सी !  
 जो होना होता है, वह तो होता ही है  
 दुःख सहने वाला हृदय दुःख ढोता ही है  
 झपट्टा प्रतीक्षा मे होगी, मैं बहुत विवक  
 नीचे अपार जन ही जन, जन ही जन नेवरु !

कितने प्रसन्न हैं सभी ! सभी क्या राम-भक्त ?  
 दे सकते हैं ये न्योग मुकुट के लिए रक्त ?  
 भोली-भाली जनता उत्सव में आई है  
 आँखों में तडक भडक की ही परछाई है !—  
 हाथी-घो-रथ-वाद्यवृन्द, सैनिक-सजधज  
 संगीत-नृत्य, मडप-तोरण, लहराते ध्वज,—  
 ये ही आकर्षण मुरख आज, कोई न अन्य  
 वे इन्हे देख कर ही सचमुच हो रहे धन्य !  
 यह भीड़ राम के लिए नहीं, मैं जान रही  
 मन्थरा अयोध्यावासी को पहचान रही  
 अभिप्रेत भरत का भी होता तो ये आते  
 वे इसी तरह ही तब भी प्रतिपल लहराते !  
 होती है अधी राजभक्ति भय के कारण  
 भय के कारण ही शासक का जय-उच्चारण  
 भय के कारण ही जनता शीत दिखाती है  
 मूरख जनता तरग-सी दौड़ी आती है !  
 स्वर्गिक सुखभोगी शासक प्रभुसत्ता-स्वामी,—  
 साधारण प्रजा सदा सीमित सुख का कामी !  
 मन्थरा और कँकेयी एक ममान नहीं  
 स्वार्थी शासक चतुराई में नादान नहीं !  
 रावण की लका सोने की ! सुनती है मैं  
 कैसे सभव यह ? अपना सिर घुनती है मैं  
 जा पाती मैं भी वहाँ, जीतती यदि रानी  
 होती साकार झञ्झटा की प्रिय प्रण-चाणी !  
 सयोग एक, उस दिन उसका मुझसे मिलना  
 उन बातों को होठों पर लाना अभी मना  
 राम का वन-गमन होता तो मन्थरा मुदित  
 उस घटना से हो जाता मेरा भाग्य उदित  
 सोने की लका में रह पाती मैं कुटिला,—  
 विखरानी रावण के महलों में कपट-कला  
 पर हाय, मन्थरे ! तू चेरी की चेरी ही  
 तेरे पैरों में परवशता की वेड़ी ही !

राम का वनगमन रानी को स्वीकार न था  
 उमके मन मे कुछ भी ईर्ष्या-अगार न था  
 मैं भी यह नहीं चाहती थी, पर क्या करती !  
 राक्षसी झझटा से तो अब मैं भी डरनी  
 राजा-रानी मे जाने क्या-क्या बात हुई  
 किससे पूछूँ सफल या विफल रात हुई !  
 बबतक देखूँ जन-उवार ? न देखा जाता यह  
 इतनी ईर्ष्या मन मे कि पराई कीर्ति असह !  
 यदि भरत आज होता तो मैं दिखला देती  
 कैंकेयी को कुछ और बात बतला देती  
 वह भी तो बुद्धि-चतुर पर, उसका हृदय साफ  
 कर सकती है वह किसी घूक के लिए माफ  
 उसका स्वामी यो ही न उसे है मान रहा  
 उसके हर गुण को वह अवश्य पहचान रहा  
 कैंकेयी को है राजनीति का प्रखर ज्ञान !  
 वह जटिल समस्या का करती झट समाधान  
 वह कोपभवन मे गई वृद्धि के बल पर ही  
 रुठी होगी वह राजनीति के छल पर ही  
 पर, नहीं सफलता मिली उसे, मैं हुई विफल  
 बबतक देखूँ मैं राजमार्ग की चहलपहल !  
 मैं विफल बन्दरी-सी ऊपर-नीचे करती  
 मेरी चिन्ता अब से बल्पना-कलश भरती  
 है उधर बहुत कोलाहल क्यों ? क्या हुआ वहाँ ?  
 भगदड ही भगदड, पागल हाथी जहाँ-जहाँ ?  
 रह-रह कर गूँज रहे नारे, अब इधर-उधर ?  
 अभिपेक-हेतु राम ही आ रहा क्या रथ पर ?  
 रथ पर तो राम नहीं, कोई दूसरा व्यक्ति  
 ईर्ष्या के कारण मलिन दृष्टि की ज्योति-शक्ति !  
 पगली-सी मैं मन्यरा अभी नोचती बाल  
 चुनचुना रहा है चिन्ताओ से चपल भाल  
 आता है मुझे शोध अपने पर बार-बार  
 छा जाता आँखो मे रह-रह कर अधवार !

अब चलो किसी कोने में नीचे सो जाऊँ  
 असफलता के कारण इतना क्यों पछताऊँ ?  
 उफसा कर अपने को अब क्यों जाऊँ बागे ?  
 मैं कैंकेयी से कहूँ कि वह अब गृह त्याग  
 मुझको भी नहा सुहाता अब यह राजभवन  
 अब होगा शीघ्र अयोध्या का साम्राज्य-पतन  
 पर, राम बड़ा ही प्रबल,—बड़ा ही नीति-वृक्षाल  
 वह धीर, वीर गभीर सदा ही सत्य-बटल !  
 इस घर में वास कहीं मेरा ! वह गुण-ज्ञानी  
 वह मुन न सबेगा कभी कुटिलता की वाणी  
 बन्दी न बना सकता है वह निज भाई को  
 छू सकता कभी न वह कटुता-परछाई को !  
 मन्यरा कहीं फंके पास ? क्या खेल करे ?  
 किमको विगाट कर किससे-किससे मेल करे ?  
 जो नहीं चैन से रह सकती, मन्यरा वही  
 जो कुटिल बात ही कह सकती, मन्यरा वही !  
 नित खटपट होता रहे, नित्य कुछ अनबन भी  
 कुछ भेद-भाव, रगडा-झगडा, कुछ उलझन भी  
 तब जीवन का आनन्द मुझे मिल पाता है  
 ईर्ष्या का रस ईर्ष्या से ही टकराता है !  
 लटपट-खटपट ग्वल-वल्-प्रधान नर-नारी में  
 उठती चिनगारी चुगली की अधियारी में  
 राम के राज्य में पूछ न कुटिल मियारों की  
 मर्यादा केवल उज्ज्वल उच्च विचारों की !

अपनी गति से जाए सुमन्त के संग राम  
 अब अन्त-पुर की ओर पद्म-पग प्रिय ललाम  
 धीरे-धीरे नृप-शयनबक्ष में नव प्रवेश  
 दर्पण ही केवल देख रहा अभिपेक-भेष !  
 कैंकेयी ने देखा कौमन्यानन्दन को—  
 देखा, ललाट पर शोभित पूजा-चन्दन को

पीताम्बरधारी राम विष्णु-सा दर्शनीय  
 मोहक मुखमण्डल पर न दर्प-च्युति राजकीय !  
 निर्मल नीरजनयनो मे अमृतप्रभा केवल  
 अधरो पर प्रिय मुस्कान प्रात मे ज्यो उत्पल !—  
 देखा कैकेयी ने छिप कर ही राम-रूप  
 क्या यही व्यक्ति होने वाला है अवध-भूप ?  
 ममता का पहला स्नेह हृदय मे आया-सा  
 वह राम सुधि-भुधा बन कर दुग मे छाया सा !  
 क्या यही पुन प्रतिदिन करता था चरण-स्पर्श ?  
 बिखराता था क्या यही प्राण पर नित्य हर्ष ?

—कैकेयी के भीतर कैकेयी चिन्तित-सी  
 मन के मर्मस्थल पर प्राणात्मा नन्दित-सी  
 कर देती है सकुचित, बुद्धि को लोभ-दृष्टि  
 निर्ममता के कारण ही दुग से अनल-वृष्टि !  
 आए सुन्दर श्रीराम पितृ-शय्या-समीप  
 लगता कि शोक मे डूबे हैं विचलित महीप !  
 कर चरण-प्रणाम पिता-माता का, पुत्र मौन  
 पग-ध्वनि ही सुन, भूपति-मुख से उच्चरित—कौन ?  
 हे राम !—कहा वसिष्ठ ने इतना ही केवल !  
 नेत्रों से अधु-प्रवाह आह, अविरल-अविरल  
 दुस्सह दुख से अति अग्न मुखाकृति वाग्निहीन  
 दयनीय दशा अत्यन्त दीन—अत्यन्त दीन !  
 मन-ही-मन पिता-व्यथा से तत्क्षण चरित राम  
 माता कैकेयी के सम्मुख है नमित राम  
 'क्या हुआ इन्हें माँ ? क्यों ये इतने विचलित-से ?  
 किम कारण पितृदेव हैं इतने चिन्तित-से ?  
 अपराध हो गया मुझसे क्या कोई ऐसा ?  
 तब तो इस भूतल पर न अधम मेरे जैसा !  
 क्या बट्ट हुआ मुझसे कि पिता बोलते नहीं ?  
 इस क्षण अपनी आँखों को भी खोलते नहीं !  
 ऐसा न कभी भी हुआ कि मुझसे हुए व्यथित  
 वे करते मुझको बहुत प्यार, यह सर्व विदित

क्या उन्हें किन्ती ने अनह व्यथा पहुँचाई है ?  
 किनलिए—किसलिए मां ! आंखें अबुलाई हैं ?'

'हे राम !' कहा बँकेयी ने—'तो तुम सुन लो  
 उनकी आज्ञा का सत्य, -वचन सत्वर गुन लो  
 अवधेश भरत होगा, यह नृप का कहना है  
 दण्डकारण्य में तुम्हें राम हे रहना है,—  
 रहना है वहाँ चतुर्दश वर्षों तक केवल  
 जाना है तुम्हें पहन कर तपसी-सा बन्कल  
 पालन करना है प्रतिदिन तापस धर्म वहाँ  
 करना न तुम्हें है भरत-विरोधी कर्म वहाँ !  
 पालन करना है तुम्हें सहर्षं पितृ-निर्णय  
 हे आज्ञाकारी पुत्र ! सदा से तुम सहृदय  
 विश्वास पिता की है कि वचन तुम मानोगे,—  
 इस निर्णय से तुम किंचित् कुपित नहीं होगे !'

सुन कर, प्रसन्नता व्याप्त राम-मुखमण्डल पर  
 ज्यो प्रात-पद्म प्रस्फुटित क्षरद्-निर्मल जल पर  
 कुछ और दिव्यता व्याप्त, दिव्य प्रिय लोचन में !  
 तन से प्रफुल्लता अधिक राम के रवि-मन में  
 बोले वे : 'आज्ञा शिरोधार्य, इसमें न तर्क  
 मां ! मुझमें और भरत में कोई नहीं फर्क  
 भाई भूपति हो, इससे अच्छी बात नहीं  
 इस भू पर भरत-समान नम्रतर तात नहीं !  
 गुण ही गुण जिसमें वही भरत मेरा भाई  
 उसकी सज्जनता मेरे प्राणों पर छाई  
 वह नव प्रकार से सदा न्याय करने वाला  
 उमके नयनों में वही न किंचित् अधियाला  
 है भरत प्रेम-वर्णा की मंगल मूर्ति मृदुल  
 उसके प्रकाश से आलोकित होगा रघुकुल

माँ ! इन निर्णय से मैं प्रसन्न—मैं अधिक मुदित  
 पर, ऐसा क्या कारण कि पिना हो गए व्यथित ?  
 क्या व्यथित इसलिए वे कि रहूँगा मैं वन में ?  
 वन में रहने की मेरी भी इच्छा मन म  
 कौशिक के आश्रम में ही यह इच्छा जागी  
 जगन् में अनायास मिलते ऋषि, मुनि, त्यागी  
 सेवा करने का अवसर पाऊँगा प्रतिदिन  
 देपूँगा हरे-भरे दृश्यों को मैं पल छिन  
 चौदह वर्षों का समय वस्तुतः अधिक नहीं  
 सुन्दर फल खाऊँगा, जाऊँगा जहाँ नहीं !  
 जाऊँगा माँ ! आज ही विपिन में जाऊँगा  
 पूरी निष्ठा से अपना घमं निवाहूँगा  
 दे अशीर्वाद पिता कि सफल हो मेरा व्रत  
 सिंहासन पर बैठे जन्दी अब बन्धु भरत  
 माँ ! भेजो जल्दी दून कि आए अनुज यहाँ  
 दीडाओ अदवारोही को तुम तुरत वहाँ  
 शुभ कार्यों में विलम्ब करना है ठीक नहीं  
 तब तक मेरे भी पग पा लेंगे वन्य-मही !

पाकर प्रसन्न श्रीराम पितृपग-रज पावन  
 पर, दशरथ के व्याकुल लोचन में सावन-धन  
 पाकर प्रसन्न श्रीराम मातृपग-रज पवित्र  
 पर, कँकैपी की छवि अद्भुत मुख से विचित्र !  
 निकला दशरथ-मुख से केवळ 'हे राम !' अभी  
 ऐसी दयनीय दशा जीवन में नहीं कभी !  
 वे रोने-रोते क्रन्दन करने लगे हाय,  
 दुःख की ममाग्नि का अभी नहीं कोई उपाय !  
 सूने-सूने-से प्राण राम के जाने पर  
 अकुशल वडती गई और अनुलाने पर  
 आँसू ही आँसू ! क्रन्दन ही क्रन्दन केवल  
 विह्वल तन, विह्वल मन, प्राणात्मा भी विह्वल !

मूर्च्छित दशरथ को रही देखती वह रानी  
 उसकी आँखों में नहीं विन्दु भर भी पानी  
 साँसों को फुला-फुला कर वह मुस्काती-सी  
 अपने पर ही वह अपना तीर चलाती-सी  
 राजा ने देखा उसे कि उजली नागिन को ?—  
 जो विष की रात बना देती है शुभ दिन को !  
 दुख-मुख-सगम की घटना एक अनूठी-सी  
 रानी अपने राजा से आज न हठी-सी !

‘मन्यरा कहाँ ?’—यह उत्तुकता उसके मन में  
 ‘जाएगा राम आज ही वन अब कुछ क्षण में  
 हो जाए पहले यही काम तब करूँ अन्य  
 तेरे कारण मन्यरे ! हुई मैं धन्य-धन्य  
 मुझमें न भ्रान्त भावुकता अब, मैं बुद्धिमती  
 इतना पा लेने पर भी हूँ सौभाग्यवती  
 कितना सुशील है राम कि आज्ञा मान रहा  
 सब कुछ पाने वाला ही अब कुछ पा न रहा !  
 उसकी कोई निन्दा करना भी महा पाप  
 है वह महान अपने ही गुण से स्वयं आप  
 उसकी महानता आज दिखाई पड़ी मुझे  
 उसकी उर-वाणी अभी मुनाई पड़ी मुझे ;  
 क्षण में ही उमने राजमुकुट को त्याग दिया,—  
 सिंहासन के बदले में कठिन विराग लिया  
 उसके मुख पर कोई न क्षोभ-छाया देखी  
 उसके भीतर कोई न कनक-माया देखी !  
 वह मानव है या देव, समझना बड़ा जटिल  
 पर हाय, लालची कंकेयी तो बड़ी बुटिल,—  
 पिघली न तनिक भी मैं उसकी निश्चलता से  
 वन गया क्रूर यह मन अपनी ही खलता से !  
 लेकिन यह सब क्या सोच रही ? भावुकता क्यों ?  
 मेरा मन अटसंठ रह-रह कर बकता क्यों ?  
 आगे आकर पीछे जाना है ठीक नहीं  
 कुछ कर लेने पर पछताना है ठीक नहीं !



है किसका कौन यहाँ ? दो दिन का नाता है  
 कुछ किए बिना कोई न कभी कुछ पाता है  
 माया न अगर फँलाती तो क्या पानी में ?  
 यह मुकुट भरत के लिए कहाँ से लाती मैं ?  
 पड़ता ही मुझ पर कौसल्या का नित दयाव  
 पड़ता अपने भाई का भाई पर प्रभाव  
 यह नहीं प्रेम का अर्थ कि हो दासत्व-ग्रहण  
 अपनी स्वतन्त्रता नहीं चाहना किसका मन ?  
 निर्णय के ही अनुसार काम को करना है  
 कटुना की खाई घों हिलमिल कर भरना है  
 सबका विरवास प्राप्त करना है खेल नहीं  
 प्रेम के बिना सभव न किसी से मेल बर्हि ।

श्रीरामचन्द्र निकले बँकेयी-गृह से जब  
 शुभ कलश देख कर किसी व्यक्ति से बोले तब  
 'होगा अभिप्रेक भरत का अब कुछ दिन में ही  
 वन में सेवा करने की आज्ञा मुझे मिली  
 इस छत्र-चौवर को आप लोग लें हटा अभी  
 प्रिय भाई के हित रखें सुरक्षित स्नेह सभी  
 मव निर्णय से ही भगल होगा जनगण का  
 होगा सब विधि उत्थान भरत से शामन का'  
 राम के वचन को सुन कर सग्न सभी तत्क्षण  
 मन-ही-मन श्रौघित—उत्तेजित भाई लक्षण  
 'किसने पड्यन्त्र किया ऐसा ? यह प्रश्न उदन्ति'  
 आग्नेय सुमित्रानन्दन अति आञ्चयंचकित,—  
 'अपमान—घोर अपमान हुआ क्यों भाई ना ?  
 पड गया प्रभाव तुरत किसकी निठुराई का ?  
 मेरे बानो में बँकेयी के क्रूर वचन  
 या सुना दूर से मैंने सहमा पितृ-रुदन ।'

माता कौमल्या के समीप आए रघुवर  
 इस समय त्रोध से सधमण का मन थर-थर-धर  
 रोसमी वसन मे जननी पूजन-हवन-व्यस्त  
 ग्विल गए राम को देख, सुरत तन-मन नमस्त  
 मूँघ कर पुत्र-कुन्ल सहसा स्नेहालिन  
 अनुरोध कि 'ग्रहण करो भावी भूपति ! आनन'  
 पर कहा राम ने 'अनुचित आसन-ग्रहण अभी  
 वन-पय की ओर जननि ! बटने की चरण अभी  
 दण्डकारण्य जाने की आज्ञा शिरोधार्य  
 चौदह वर्षों तक कर पालंगा विपिन-कार्य  
 माँ ! आगीर्वाद मुझे दो, वन जाऊँ महर्षं  
 होंगे व्यतीत जल्दी मेरे वनवास-वर्षं !'

कौमल्या सुत-नवाद श्रवण कर तप्य-वकित  
 इस वस्त्रपात से सहृदय माता मौन-नमित  
 कुछ क्षण सुधि-सिचिन राम-जन्म-घटना अद्भुत  
 आँखों मे लगी चमकने ममना की विद्युत् !  
 'शैशव की कौतुक-किटकारी भूलूँ कैसे ?  
 वात्मन्य-विचुम्बित फुन्वारी भूलूँ कैसे ?  
 माँ है—मैं माँ है, जाने हूँ सुत की वन मे ?  
 वात्सल्य नहीं क्या अब कौसल्या के मन में ?  
 क्या नहीं पिता-आज्ञा निर्मम ? क्यों जाने हूँ ?  
 अपने रहते आत्मज पर सक्कट जाने हूँ ?  
 मेरा भी तो अधिकार अर्घ, मैं दूर नहीं  
 राम के हृदय से कौमल्या है दूर नहीं !  
 पाला है, पोसा है मैंने, अब वन भेजूँ ?  
 अपने मुँह से वन जाने की मैं बात कहूँ ?  
 भगवान ! कौन-सा पाप किया कि दुखित हूँ मैं  
 किमकी मे कहूँ कि कितनी आज व्यथित हूँ मैं !  
 जाऊँ क्या स्वामी मे मिलने ? कुछ कहूँ बात ?  
 किसने भर दी भूपति के दृग मे अशुभ रात ?

मपना हो गया सत्य, केवल दो ही क्षण मे  
 ऐसी विचित्र घटना न घटी इम जीवन मे ।  
 क्या से क्या कर देना है निप्टुर, नूर काल  
 हो गया क्षणो मे छिन्न भिन्न उत्सव विशाल  
 निश्चय इममे कुछ बात, रहस्य छिपा इनमे  
 है क्रूर काल से बट कर शक्ति कहां, किसमे ?  
 मेरा वैटा है वीर घनुर्घर, परानमी  
 उसमे अपूर्व सुर-शक्ति, अनुरता नहीं कही  
 होगा जगल मे भी मगन, विश्वास मुझे  
 दिखलाई पडता है सुधि वा आकाश मुझे ।  
 क्या सोच-समझ कर ही नृप ने दी आज्ञा यह ?  
 उनके विरुद्ध कौसल्ये ! कोई बात न कह ।  
 तू वह नारी जिसने पति मेवा ही जानी  
 सेरी आँखों मे मदा प्रेम घन कल्याणी  
 मन-वचन-कर्म से तू ने अहित किया न कभी  
 तू ने ईर्ष्या का आमव तनिक पिया न कभी  
 तू ने न कपट-कालिमा कभी देखी मन मे  
 तू ने न दम उत्पन्न किया कोई तन मे  
 तू सदाचार-व्रत-पात्रन मे तल्लीन सदा  
 कहते हैं पति तुझको, प्रसन्न गृहिणी शुभदा  
 तुझमे न लोभ का लेश, सदा सतोपी तू  
 क्यों बनना चाह रही सुत के हित दोपी तू ?  
 जाने दे वन, जाने दे वन, जाने दे वन ।  
 पति के विरुद्ध मत कर कुछ भी कोई चिन्तन  
 विश्वासहीन नारी मे ही सन्देह-भाव  
 उत्पन्न लोभ के कारण ही कोई दुराव  
 बन-आज्ञा पति की, कंकेयी की—दोनों की  
 रह गया शेष क्या अत्र ? मम्मिलित विचार सही  
 है भरत मुझे बिनना प्रिय यह मे ही जानूँ  
 उसकी जननी का निर्णय भला नहीं मानूँ ?  
 मुझसे वह गुण मे बढी, बुद्धि उमकी तीव्री,  
 मेने उसमे ही बडी-बढी बातें सीखी

कितना प्रिय उमको राम, नभो यह जान रहे  
 सद्गुण के कारण उमे अधिक नृप मान रहे  
 गुण के अनुमार प्रतिष्ठा सबको मिलनी है  
 खिलने वाली काठियाँ ही हों कर खिलती हैं  
 आँसे ईर्ष्या करतो अभाव के कारण भी  
 करता है करण शोध विषमय उच्चारण भी ।  
 निन्दा से होती ह अपनी ही हानि सदा  
 बट-बट कर बात करने से आती विपदा  
 घोरज धारण करने में होना कष्ट दूर  
 पर-मुख में ही नाचता शुद्ध मानन-मयूर  
 में भी जाती दण्डकारण्य में सग-नग  
 एकाकी मुन में भरती ने माहम-उनग  
 पर, पुनः वधू के साथ रहेगी यहाँ कौन ?  
 रह सकती बभो अकेली प्रिय जानकी मौन ?  
 चौदह वर्षों की दीप प्रतीक्षा युवनी की ।  
 हो जाएगी उसकी कामना बहुत फीकी  
 मुझसे भी बट कर उसे कष्ट होगा प्रतिदिन  
 चाटेगी कौने रात जंगलियों पर गिन-गिन ?  
 उमके उर पर तो बज्रगत ही हुआ हाथ,  
 जीवन को मुझी बनाने का अब क्या उपाय ?  
 विरहिणी वधू कब तक खेरेगी दुम्मह दुब  
 चौदह वर्षों के वाद मिलेगा क्या वह मुन ?  
 नारी की अपनी एक अवस्था होती है—  
 जब वह फूलों के नपनों में ही मोती है !  
 पर हाथ, मैथिली ! तुझ पर अग्नि-प्रहार हुआ  
 आनन्द नहीं, आँसू ही तेरा हार हुआ !  
 माना तो सह लेगी नर कुल पर, वधू नहीं  
 नभव है, प्राण-विहग उनका उड़ जाय कहीं  
 हे राम ! तुम्हारे बिना न नीताँजी सकती  
 कब तक वह केवल व्यथा-अश्रु को पी सकती !  
 वनवास-दण्ड में विचलित होग जनक नहीं ?—  
 काँपेगी भला न क्या मिथिला की सरस मही ?

तडपेगी सीता-माना भी निर्णय मुन कर  
रोएंगी आँवें सुध्रि-रोफाली चुन-चुन कर ।'

कौमन्या चिन्तित मौन किन्तु लक्ष्मण रोधित  
उनके मन मे उच्चरित 'कूर कँकेयी धिक् !  
तू माना नहीं, प्रेनिनी है—तू धाधिन है  
नारी-म्हस्व मे तू जहरीली नागिन है !  
तेरे कुकर्म की उपमा काई नहीं यहाँ  
विप ही जगलेगी, जाएगी तू जहाँ-जहाँ  
तेरी चुटकी न मसल दिया अच्छाई को  
अपनाया कँसे तूने विपन बुराई को ?  
मह लिया राम ने सब कुछ, यह भी अचरज है !  
कँकेयी ! तेरा हृदय पीज से बजबज है  
तेरी कुतुहिल के रग रहे कलुपित कीडे  
निकलगे पिन्लू ही यदि कोई उर चीरे !  
जी करना है, अब अपना तीर चगा दूँ मैं—  
आज ही तुझे सुरघाम स्वय पहुँचा दूँ मैं  
पर हाय ! भरत की माता तू—नृप-रानी तू—  
रघुकुल के गौरव की जीवन्त कहानी तू  
अन्यथा आज, निदचय कुछ तो हो ही जाता  
लक्ष्मण जघन्य अन्याय न इस क्षण मह पाता  
पर, क्षमाशील हैं राम कि तू भी जीवित है  
इम घर मे आग लगा कर भी तू पूजित है ।'

कौमन्या ने वह दिया राम से 'जाना है,—  
वन जाकर ही अब अपना धर्म वचाना है  
प्रिय, माता और पिता की तुम आज्ञा मानो  
उनके वचनो मे ही मेरी सहमति जानो ।'  
'जाऊँगा माँ ! मैं भी—मैं भी,—बोले लक्ष्मण,—  
'हैं जहाँ राम बस, वही सुमित्रानन्दन-तन ।'

भाई की सेवा ही मेरा उद्देश्य प्रमुखा  
 इसमें ही मिलता मुझे अमीम नपस्या-मुख !  
 माँ ! कहो अग्ग क्या रह नवता मैं भाई में ?  
 हो सकता है नवि दूर कभी अरणाई में ?  
 जाना ही है माँ ! मुझे विपिन में जाना है  
 सेवा का अबनर मुझे वहाँ भी पाना है !  
 जीवित न रहेगा राम-विना लक्ष्मण जन मे  
 जाऊँगा मैं भी सग-भग उनके मग मे  
 जो बन्धुहीन वह क्या जाने भ्रातृत्व-भाव  
 जो स्नेहहीन, उममे ही तो परिजन-दुराव !  
 भाई हूँ मैं—छोटा भाई, जाऊँगा ही  
 भाई की सेवा का अवसर पाऊँगा ही  
 मैं नहीं रूँगा उनके कुछ समझाने से  
 क्या उन्हें मिलेगा माँ ! मेरे मर जाने से ?  
 अपित जिमका मन राम-चरण मे वह लक्ष्मण  
 जिसका तन रक्षित राम-शरण मे वह लक्ष्मण  
 जो दान राम का, पाम राम के, वह लक्ष्मण  
 श्रीराम स्वय मेरे प्राणो के तन-मन-धन !  
 आज्ञा दो माँ ! हो रही देर, आज्ञा दो अब  
 बन्धुत्व भाव मे ही मेरा जीवन-वैभव  
 है अमृत बधु का प्रेम, स्नेह उनका नीतल  
 भाई का उज्ज्वल प्यार हृदय का गगाजल  
 वह नर अनाथ जिसको न मिला कोई भाई  
 बन्धुत्व-विमलता पर मातृत्व-प्रभा छाई  
 वह अनुज धन्य जिम पर अग्रज का सहज स्नेह  
 भाई अनेक पर उनका आत्मिक एक देह !'

उत्फुल्ल नुमिना बोली - 'मैं क्यों रोऊँगी  
 प्रिय सुत को पुण्य-यथ पर क्यों मैं टोऊँगी ?  
 अब तक तुम साथ रहे तो साथ रहो अब भी  
 यदि घोर विपद भी आए तो जाओ तब भी

हे पुत्र ! राम को तुमने तो पहचान लिया,—  
 वास्तविक प्रीतिवश वन जाने को ठान लिया  
 गौरव करती माता तुम-जैस आत्मज पर  
 है दृष्टि तुम्हारी अग्रज के पद-पंकज पर !  
 प्राणो से श्रेष्ठ ममज्ञाना सेवा को लक्ष्मण !  
 तुम सफ़र बनाना सेवा से ही निज जीवन  
 चेतन प्रहरी-मा जाग्रत रहना तुम हर क्षण  
 करना चरितार्थ नाम को तुम मेरे लक्ष्मण !

स्वीकृति पाकर सतुष्ट मुमित्रानन्दन अब  
 पर, कंकयी-नृप पर क्रोधित अन्तर जब-तब  
 कह दिया राम से भी कुछ उत्तेजित होकर  
 क्रोधित दृग से भी आज अशुधारा शर-झर !  
 पर, कहा राम ने 'भाई, तुम मत हो अधीर  
 मैं ममज्ञ रहा हूँ सरल क्रोध की तरल पीर  
 सोचो कि पिता की है कितनी दयनीय दशा  
 पहुँचाओ मत हे तात, उन्हें अब भीर व्यथा !  
 वे सत्य-मार्ग पर अटल सदा, यह रहे ध्यान  
 हम करें न कोई दुःख देकर दुःख का निदान  
 माता की कोई निन्दा करना भी अधर्म  
 आशानुसार ही करना है अब उचित कर्म !  
 होता ही रहता है जीवन में उलटफेर  
 लेता है बड़े-बड़ों को भी दुर्भाग्य घेर  
 उसके आगे ससम्प दूट जाता नर का  
 बुझ जाता बाल-प्रभजन से दीपक घर का !  
 होनी को टाक मका कोई ? प्रिय, धैर्य धरो  
 करना है जो कर्तव्य, उसे चुपचाप नरो  
 ऊँचा रखना है हमें मनोऽऽ दुःख में भी  
 उत्तेजित होना है न कभी अति मुख में भी !  
 देवी निर्णय या स्वागत करना है मन से  
 लाना है सत्य-प्रवाण स्वयं दण्डव-चन से

दुख है कि भरत से होगी इस क्षण भेंट नही  
 अबुलाएंगी आँखें नुधि मे हे बन्धु, वही !  
 रहना यदि भरत यहाँ, हो जाना राजतिलक  
 देखता उसे निहानन पर मैं भी अपठक  
 देकर अपना आशीष उसे, जाता वन मे  
 कितनी प्रमन्नता छा जाती उसके मन मे !  
 उसके नुदिव्य मन का करता आश्रितन मैं  
 चलने की बेला करता स्नेह-समर्पण मैं  
 उनके नयनों का अमृत लिए जाता पथ पर  
 दो क्षण दो बातें करके ही चढ़ता रथ पर  
 पर, ह लक्ष्मण ! इन समय दूर हैं दो भाई  
 मेरे प्राणों पर उनकी नुधि की परछाई  
 मेरे अभाव मे उनको कोई कष्ट न हो  
 वे जब आएँ तो निश्चय इतना उन्हें कहो :  
 'मिलने न दिया उम निरुर काल ने भाई से  
 पूछे न कभी कागण वह अपनी माई मे !'

—वम, इतना ही कहना लक्ष्मण ! कह देना तुम  
 कहने के पहले भरत-चरण छू लेना तुम !  
 करना न कभी तुम मोघ, प्रेम से तुम रहना  
 कटु वचन कभी भी तुम भाई को मन बहना  
 सब कुछ मन्हाल लेना कि शान्ति नित बनी रहे  
 अनवन है इन पर मे, यह कोई नही बहे !  
 सबकी सेवा करना लक्ष्मण, भूलना नही  
 हो नही पिता-भाता को कोई कष्ट कभी  
 अपित करना नुन उन्हें नित्य मेरा प्रणाम  
 भूलना नही—भूलना नही यह राम-नाम !  
 जनगण को होगी व्यथा लौट कर जाने मे  
 लग जाएँगे कुछ दिन अनुजों के आने मे  
 सर्वोत्तम विधि मे हो अभिषेक भरत का अब  
 लक्ष्मण ! मेरी बातों से क्यों होते हत-प्रभ ?  
 आओ, अनुचित आँसू को पोछूँ मैं कर से  
 रोते हो तुम इन समय हाथ, किमके डर से ?



प्रिय, भरत बहुत कोमल, अतिशय वह है उदार  
 उसका उज्ज्वल अन्तर है लक्ष्मण ! निर्विकार  
 जग में अच्छा भाई मित्रना कितना दुर्लभ  
 तुम क्यों हत-प्रभ ? तुम क्या हत-प्रभ ? तुम क्यों हत-प्रभ ?  
 जाओगे जितना निकट, स्नेह-रस पाओगे  
 मन-मन्दिर में जाकर न लौट कर आओगे !  
 तुम मुझे भूल जाओगे, ऐसे उभरें गुण  
 जन-सेवा की मुझ से घट कर है उभरें धुन  
 अवगुण अनेक मुझमें, उसमें तो गुण केवल  
 है वही नहीं उसमें कोई भी हिंसक बल !  
 मैं तो किया ताड़का वध, तुम जान रहे  
 तौड़ा पवित्र शिव धनु बंधे, यह भी ध्यान रहे  
 मैथिली-स्वयंवर में अनगिन नृप हुए व्यथित  
 देखा ही तुमने, रावण या कितना त्राघित !  
 मृदुता ही मुझ में नही, भरी निर्दयता भी  
 थोड़ी रसमयता, अधिक बाण-विस्मयता भी  
 जन हित जयता ही नही, अडिग निर्भयता भी  
 निश्चित प्रण के अनुसार बठोर हृदयता भी !  
 पर, भरत-भाव में सदा शील, निर्मल प्रवाह  
 उमका विशाल अन्तर सागर-सा है अथाह  
 सारा प्रेम की मूर्ति भरत, यह याद रहे  
 है भरत वही जो मृत्यु-वचन ही सदा बहे !  
 माता बँकेयी का निर्णय अनुचित न कभी  
 जाना है बँदेही से मिलने मुझे अभी  
 लक्ष्मण ! मेरी बातों पर अब विश्वास करो  
 अपनी शक्ति में आस्था की नव शक्ति भरों !'

भुग गए सुमित्रानन्दन अग्रज के पग पर  
 भुग की कुछ ऊपर उठा, तुरत वे हुए मुखर :  
 'हे नाथ ! मुझे भी वन जाना है सग-सग  
 रोकें न आप मेरे अन्तर्मन की उमंग

माता से भी अनुमोदित मेरी अभिलाषा  
पूरी होने दें पूज्य बन्धु ! मेरी आशा  
आपके बिना मैं यहाँ नहीं रह पाऊँगा  
हे राम ! दण्डकारण्य साथ ही जाऊँगा !

निर्वाक राम कुछ क्षण, भाई के इस हठ पर  
गभीर कठ से निकला सहसा स्नेहिल स्वर :  
'भाता न मुझे हे तात, तुम्हारा बन जाना  
मेरे कारण मत करो आज तुम मनमाना  
वनवास मुझे है मिला, मुझे ही जाना है  
चौदह वर्षों के बाद फिर यही आना है  
तुम इसी अयोध्या में सेवा का करो कार्य  
मेरे सम्मुख हठ करो नहीं हे अनुज आर्य !  
जाना न तुम्हारा उचित पितृवचनानुसार  
रोको अपनी उमग को प्रिय हे ! एक बार  
भावुकता में इतना न बहो कि उठे सशय  
होगा अरण्य में मुझे नहीं कोई भी भय !'

आ गए सुमित्रानन्दन कैंकेयी-समीप  
मूर्च्छित-सँ थे उस समय वृद्ध दशरथ महीप  
लक्ष्मण की विनती को माता ने मान लिया  
कुछ सोच-समझ कर ही उसने आदेश दिया !  
लौटे हर्षित लक्ष्मण निज तन-भन को उछाल,  
था चमक रहा उनका सुन्दर सुविशाल भाल  
गृह-पथ पर ही लग गया मन्थरा को घक्का  
गिरते ही उसका मन सहसा हक्का-चक्का !  
डूँढा लक्ष्मण ने भाई को पर, वे न यहाँ !  
तो गए वहाँ ? वे गए कहाँ—वे गए कहाँ ?  
बँदेही-गृह का स्मरण तुरत उत्सुक मन में  
तबतक घटना का तथ्य व्याप्त प्रिय परिजन में !

पुरजन में भी विजयी-सी बातें हुई व्याप्त  
 जन-मन को भी मगध का व्यथा-प्रवाह प्राप्त  
 उठनी-गिरती लहरें मौ-मौ शकाओं की  
 आँवों में काली घटा घोर विपदाओं की !  
 यी भीड़ लड़ी की खड़ी, राम के दर्शन-हित  
 नयनों में शीविन उत्सुकता आश्चर्यचकित  
 कोटाहट में कुछ कभी किन्तु करुणाद्वेषिन  
 मुखझाया-भुरझाया-सा मन सब ओर व्यथित !  
 नगरी उदास, डगरी उदास, प्रहरी उदास  
 घैंती ममीर की बहती-सी लहरी उदास  
 मण्डप उदास, मानव उदास, गृह-पथ उदास  
 होने वाले नूतन नृप का वह रय उदास !  
 इस समय राम हैं यही किन्तु जन-मन उदास  
 वादल में घिरा हुआ-सा अब दिनमणि प्रकाश  
 वे तोरण-वन्दनवार—सभी फीके-फीके  
 वे सजेधजे घर-द्वार—सभी फीके-फीके  
 कदवी के पत्ती में कम्पन, ध्वज में कम्पन  
 हो गया वन्द, हो गया वन्द गायन-गु जन  
 अनगिन आँखें रीनी, -रीनी, रीती-रीती  
 मन में आनी-जानी बातें बीनी—बीनी !  
 दुःखान्त नाटिका-सी मुधियाँ चक्ररानी-सी  
 पय-पय पर नव नारियाँ बहुत घबरायी-सी  
 मग-मग में पण्डित-प्रद्वन कि रघुकुल में अनर्थ  
 ग्रामीण-हृदय जानता नहो गभीर अर्थ  
 कानों में कुछ कानाफूसी, गुपचुप बाणी  
 कुछ नयनों में ममता का कण-कण पानी  
 वृद्धाओं में हिचकी-हुचकी, आवुल रोदन  
 उस एक राम के लिए व्याप्त इतना क्रन्दन !  
 तबतक लक्ष्मण-उर्मिला-मिथुन की विचल थड़ी  
 उम कमलकोमल पत्नी-दृग में प्रणय-झड़ी :  
 'एसाकी ही रहना हांगा हे देव ! यहाँ ?  
 मिलने भी जा न सकूँगो क्या मैं कभी वहाँ ?

क्या कहूँ, और मैं क्या न कहूँ ! चुप रह जाऊँ !  
 इस क्षण इस घोर व्यथा में कितनी अकुलाऊँ !  
 चौदह वर्षों की दीर्घ प्रतीक्षा असह-असह  
 रे मन ! तू इनमें इम वेग कुछ भी मत कह !  
 कट सकती तो काटूँगी प्रदी प्रतीक्षा की  
 आई है कठिन अवधि उर्मिला-परीक्षा की  
 मैं प्रबल वीर की पत्नी हूँ, सह लूँगी सब  
 अपनी बातें अपने को ही कह दूँगी सब  
 शय्या पर रख दूँगी प्रसून हर रात स्वयम्  
 पूछूँगी अपने दर्पण से ही बात स्वयम्  
 गमकेगी चौदह वर्षों तक मुग्ध की कलियाँ  
 भीगेगी विरह-झड़ी से ही मन की गलियाँ !  
 चमकूँगी विजली बन कर प्रिय है ! पावस में  
 मैं वास करूँगी वन के फूलों के रस में  
 पर, विघ्न न दूँगी कभी, सहपं पुवारूँगी  
 उत्तम सेवा के लिए सदा ललकारूँगी !  
 चौदह वर्षों का विरह-मिन्धु कितना अपार  
 उर्मिला तरंगों को लेगी निश्चय सँवार,—  
 खुलने न अधिक देगी मन की पखडियों को  
 रोकेगी आँखें ही आँखों की झड़ियों को !  
 वासन्ती झोके आ-आ कर लीटेंगे ही  
 विह्वलता के विद्युत्-मृग कुछ चौकेगे ही  
 मन का मयूर देदेगा नहीं मघन घन को  
 सौरभ-समीर छू पाएगा न कभी तन को !  
 हे देव ! करूँगी मैं भी तप मन के वन में  
 भर लूँगी हिम-भी शीतलता निज यौवन में  
 गृह की तपस्विनी नित मिन्दूर लगाएगी,—  
 अपने हाथों से नित्य प्रदीप जलाएगी  
 स्मृति के मन्दिर में ही होगी पूजा प्रतिदिन  
 विरहिणी उर्मिला का मुख होगा नहीं मन्दिन  
 चौदह वर्षों तक विरह-तपस्या करनी है  
 मुग्ध की सरयू में नित निज गागर भरनी है !

कैसे कितना क्या कहूँ ! नयन भर-भर आते  
 जाने क्यों मेरे प्राण अभी ही अकुलाते !  
 भर गया अचानक क्यों कम्पन मेरे उर में ?  
 छा रही उदासी क्यों मेरे अन्त पुर में ?  
 क्या विदा-वाल में करुणा यों ही घिर जाती ?  
 क्या मयको इसी प्रकार वेदना अकुलाती ?  
 सकल्प ले चुकी मैं तो फिर यह कम्पन क्यों ?  
 माँमों में आत्म-व्यथित रह-रह कर सिहरन क्यों ?  
 विश्वास करो हे देव ! क्षणिक यह अकुलाहट  
 करती ही है नारी नव दुःख में छटपटछट  
 पर मुझे विरह-घट को समय से भरना है  
 पति के शुभ के ही लिए प्रेम-तप करना है !  
 जा सकती हूँ मैं नहीं साथ, भ्राता जो हैं !  
 लज्जा-मर्यादा का उनसे नाता जो है  
 अन्यथा अरण्यो में भी मुख पहुँचाती मैं  
 जाती मैं—दण्डक-वन में निश्चय जाती मैं !  
 मीता दीदी जाने को बहुत विकल बच से  
 जलहीन भीन-सी वह, दुःखमय घटना जब से !  
 मुनती हूँ माता ने कह दिया कि 'तुम जाओ, —  
 मोए नृप के सम्मुख इतना मत अकुलाओ !'—  
 पर, देव ! परिस्थितिबन्ध में ही लाचार हुई  
 उर्मिजा स्वयम् उर्मिल सागर-जलघार हुई  
 दुर्भाग्य-व्यूह में फँसी अचानक नारी मैं  
 वन गई स्वयं ही तो अपनी अधिमारी मैं !  
 अर्द्धाङ्गिणि मैं अधिभारहीन—आधारहीन  
 मेरी यौवन-नीका डगमग पतवार-हीन  
 मेरे स्वामी को वन्धु-सग जाना है  
 मकट में सेवा का अवसर पाना ही है  
 रक्षा करना है तन-भन से निज भ्रातृधर्म  
 मेरे स्वामी को अवगत है वन्धुत्व-भर्म  
 वनवास-दण्ड में वचन-धर्म की कीर्ति-ध्वजा,  
 देखेगी उसे एक दिन प्रेम-अधीर प्रजा !

वनवास-योग में त्याग-शक्ति की भार्यकता  
 फँलेगी उत्तसे रविकुल की नव वीरति-उत्ता !  
 कुछ तो यश होगा प्राप्त प्राणपति को उमसे  
 इस कारण भी तो अश्रु-भरे ये दृग विहसे !  
 पर, यह भी एक अधर्म कि यश-कामना कर्म  
 निष्काम कर्म की ही उर में भावना भर  
 उत्तम सेवा वह, जिसमें सेवक अनानक्त  
 जो नही चाहता लौकिक फल, वह सफल भक्त !  
 हे देव ! हो रहा अब विलम्ब, जाना भी है  
 भ्राता से अन्तिम स्वीकृति को पाना भी है  
 मेरी अनुचित बातों पर ध्यान नहीं जाए  
 कामना यही, आने तक चरण न थक पाए !'

कुलगुरु से पाकर शुभाशीप, उत्फुल्ल राम,—  
 मीना-नमस्त आए वह वन-यात्री अकाम  
 एकान्त कक्ष में स्पष्ट परस्पर बातचीत  
 निर्णीत नही दो इच्छाओं की हार-जीत !  
 'काँटे ही काँटे वहाँ, नही प्रिय जाओ तुम'—  
 —बोले रघुवर : 'इतना न अधिक अकुलाओ तुम  
 वन की भीषणता तुम्हें नही कुछ भी अवगत  
 मत करो भंग मेरा सुदीर्घ आरण्यक व्रत  
 हे कुसुमकोमले ! नवनीते ! हठ करो नही  
 चौदह वर्षों की विरह-ध्यासा से डरो नही .  
 तुम योगिराज की सुता, राम-पत्नी गंभीर  
 वह रहे तुम्हारे नयनों से क्यों अश्रु-नीर  
 क्या इसलिए शिवचाप उठाया था तुमने ?—  
 हे प्रिये ! स्वयंवर-हार पिन्हाया था तुमने  
 संयोग भुवद देखा, वियोग-दुख भी देखो  
 अब मुझे मात्र मुग्धि में दृग-सम्मुख भी देखो  
 पार्वती-त्पस्या-कथा तुम्हें तो ज्ञात प्रिये !  
 सह सकती क्या तुम नही विरह-आधान प्रिये !

वत्तंव्य-निवृत्त निर्मोही होना पडता है  
 दुर्बल तन-मन ही विद्युडन-शुद्ध से डरता है ।  
 यदि साथ तुम्हें ले जाऊँ तो नृप-वचन-भग  
 एकाकी जाऊँ तो उज्ज्वल सुधि सग-सग  
 स्वीकृति ले ली माता से तुमने क्यों सहपं ?  
 तुम काट न सकती सात और फिर सात वर्ष ?  
 है विमल वियोग, तपस्या ही, यह याद रहे  
 जीवन में एक समान प्रमोद-विपाद रहे  
 आँसू उतना ही बहे कि आँखें-विहँसें भी  
 उर-कमल खिले उतना कि गघ कुछ गमके भी ।  
 मृदुले ! वन-पथ पर वृष्ट, क्लेश, दुःख, विपद, व्यथा !  
 जानती नहीं; तुम आरण्यक कटकित क्या  
 पग-पग पर हिंसक पशुओं के उत्पात वहाँ  
 कटती न चैन से कभी किसी दिन रात वहाँ ।  
 मारते क्षपट्टे व्याध, सिंह गर्जन करते  
 खू खार ऋक्ष को देख, प्राण तत्क्षण डरते  
 जगल-झाड़ी में विपद्यर सर्प ससरते हैं  
 वन के चाराहो से वन-यात्री डरते हैं ।  
 भय लगता है सूनेपन में, दिन रहते भी  
 कांपता अभी यह मेरा मन कुछ कहते भी  
 ले जाते वहाँ चुरा कर नारी को निशिचर  
 हिल जाते उनके भय से सबल-सबल तस्वर  
 आंधी-अघड के झोंके उठते हैं वन में  
 आशका धिरी हुई रहती प्रतिपल मन में  
 हो जाती असह वृष्टकर ऋतुओं की लीला  
 झर जाता पत्तलवदल भू पर पीला-पीला ।  
 मिलता है कहीं-कहीं ही पानी जगल में  
 कीड़े लग जाते कभी-कभी मीठे फल में  
 पत्तों पर ही सोना पडता अधियाली में  
 लिपटा रहता है ब्याल विटप की डाली में ।  
 हे जनकनन्दिनी ! हठ न करो, रोने मन को  
 मेरे कहने से प्रिये ! सम्हालो निज तन को

दण्डवारण्य मे दुख ही दुख, मुख नही वहाँ  
 तुम राजभवन मे ही अर्द्धाङ्गिनि ! रहो यहाँ  
 मैं पुरुष, विपद सहने का है अभ्यास मुझे  
 हँस-हँस कर व्यथा झेलने मे विश्वास मुझे  
 मैं मना कर चुका लक्ष्मण को भी जाने से  
 कुछ भी न लाभ, कुछ भी न लाभ अकुलाने से !  
 मन जाओ प्रिय, तुम मन जाओ, तुम रहो यही  
 संभव कि राम वन-पथ से फिर लौट न वही !  
 होते हैं सुख-दुख-भरे भविष्यत् के सपने  
 सरणी पर जाते छूट कभी मायी अपने !  
 पथ मे रुक जाए कौन किधर, यह कौन कहे ?—  
 कर्त्तव्य-मार्ग पर कबतक किसका साथ रहे !  
 भाना-जाना, तो लगा हुआ है जीवन मे  
 कितनी इच्छाएँ तो रह जाती हैं मन मे !  
 यह उचित नही कि तुम्हे दु ख-पथ पर ले जाऊँ  
 तुम करो कामना यही कि धर्म निभा पाऊँ  
 आरण्यक पथिक तुम्हे कैसे प्रिय, वनने दूँ ?  
 भोगो तुम सुख केवल, मैं केवल दुख ही दूँ !  
 दुख मिले राम को मदा, यही मैं चाह रहा  
 सुखमय दुख से पर-दुख-सागर को याह रहा  
 ममज्ञो, समज्ञो हे वंदेही ! वनवास-ममं  
 वचने दो मेरा विरह-विमल तापसी धर्म !  
 रहना है मुझे अकेले ही सुख को विसार,  
 हे प्रिये ! रहेगे वन्द सभी आनन्द-द्वार  
 वनवास-सत्य को समज्ञो बुद्धि-विवेकपूर्ण  
 उठने मत दो मन मे लहरो को घूर्ण-घूर्ण !  
 यौवन-पकज को सब विधि मुझे वचाना है  
 जाना है, वन मे एकाकी ही जाना है  
 तुम यही विछोह-धर्म का नव निर्वाह करो  
 हे प्रिये ! राम की तनिक नहिं परवाह करो !



एकान्त कदा मे स्पष्ट परस्पर बातचीत  
 निर्णान नहीं दो इच्छाओं की हार-जीत  
 सीता मन-ही-मन क्रुद्ध कि 'कैसी बात हुई  
 दिन के रहते क्यों शकाओं की रात हुई !'  
 इतनी दुबंला जनकतनया ' क्या सुना हाय !  
 मैं साथ नहीं जाऊँ, इमका क्या यह उपाय ?  
 योगी हैं मेरे पिता योग कुछ मुझमें भी  
 नारी हूँ मैं भी एक, भोग कुछ मुझमें भी !  
 है बन न कभी भी राजभवन यह जान रहा  
 सीता अपनी मर्यादा को पहचान रही  
 देखेगा ही ससार कि मैं रहती कैसे  
 पाला न अभी तक कोई वन जंमे-तंसे  
 क्या भूल गए भगवान कि बंदेही कैसे  
 क्यों उठी आज शका मन में सचमुच बंसी ?  
 अत्यधिक प्रेम के कारण ही इतनी ममता  
 सच है, नारी में नहीं पुरुष-बल की क्षमता  
 पर, वह अपनी सीमा में प्रिय पूरक तो है  
 उसके सुकुमार हृदय में एक चमक तो है  
 चेतनाहीन नारी न कभी, वह कर्ममयी  
 कोमल काया भी कठिन मानवी धर्ममयी !'  
 —बोली ज्योतिष जानकी करण स्वर में सहर्ष :  
 'हे प्राणनाथ ! पादोंगी मैं भी विरह-चप  
 दें मुझे एक अबसर कि कट वन में विचरण  
 मत करे अभी प्रनिबृल व्यथा-चिन्ता-चिन्तन  
 वन-व्रत पूरा होगा न कभी यदि मैं न चनूँ  
 वनवास-विरह उज्ज्वल न कभी यदि मैं न जनूँ  
 सम्मिलित ज्योति की शिखा तृषा कर उठने दें  
 अपने वन में मुझको भी प्रमु हे ! चलने दें  
 सीता न अकेली रह सकनी, विश्वास करे  
 मेरी कर्तव्य-दृष्टि में भी निज शक्ति भरें  
 वनने दें कोमलता को भी थोड़ा कठोर  
 मुनने दें इन बानों को वन-वातास-रोर !'

मेरे हित मूना राजभवन, यदि नहीं आप  
 मेरे हित सूना स्वर्ग-सदन, यदि नहीं आप  
 मैं केवल मुख-सगिनी नहीं हे प्राणनाथ,  
 चलने दें मीता को भी वन में माथ-माथ  
 काटेंगे हम हँसते-हँसते ही कठिन काठ  
 हटते जाएंगे वन-पथ से सब विपद्-व्याल  
 कोई भी कष्ट न दूँगी मैं उस कानन में  
 सगिनी रहूँगी सग सदा निर्वासन में !  
 वन में भीषणता भी, निमग्न-सुन्दरता भी  
 पतझर ही केवल नहीं, सुगन्ध-मधुरता भी  
 काँटे ही केवल नहीं, फूल भी खिलते हैं  
 हिमक पशुओं से अधिक वहाँ मृग मिलते हैं !  
 देखूँगी पर्वत पर छितराए बादल को  
 देखूँगी नृत्य-विभोर मयूरों के बल को  
 सरमिज-सम्पन्न तडाग मिलेंगे कहीं-कहीं  
 पथ-पथ में कुमुद-पराग उड़ेंगे कहीं-कहीं  
 पछी का कलरव तो हर जगह मिलेगा ही  
 सरिता के तट पर शीतल चन्द्र खिलेगा ही  
 निर्झर-निनाद सुन कर प्रसन्न होगा प्रिय, मन  
 कैसे कहते हैं आप कि केवल भीषण वन !  
 खाने को वन्द-मूल-फल वहाँ मिलेंगे ही  
 हर ऋतु में तब हम दोनों को कुछ देंगे ही  
 समझूँगी पणकुटी को ही मैं राजभवन  
 वीतेंगे सुखपूर्वक ही दुःखमय जीवन-क्षण !  
 वचन स ही वन विचरण की अभिलाषा है  
 हे नाथ ! आपसे अब अनुमति की आशा है  
 मत करें देह से कभी दूर वंदेही को  
 ले चलें साथ अपने दुःख-मुख की स्नेही को !  
 भय नहीं कभी मुझको, जबतक ये धनुष-चाण  
 किसमें दुस्साहस यह कि करे वह भग मान  
 हो जहाँ आप, द्युति-हरण वहाँ होगा कैसे ?  
 हो जहाँ आप, तम-चरण वहाँ होगा कैसे ?

हो रही देर, आज्ञा मे अधिक विलम्ब न हो  
 इस कारण भी फिर कुपित वर्हा वह अम्ब न हो ।  
 वन-पथ मे ही सेवा का अवसर पा लूँगी  
 प्रभु-पग की चुभी कटकी स्वयं निकालूँगी  
 पानी तो ला सकती मैं वहाँ सरोवर से  
 पत्ते बटोर सकती शय्या-हित निज कर से  
 रहने के स्थानो को तो स्वच्छ बनाऊँगी ।  
 कम से कम कुटी-निकट बाटिका लगाऊँगी ।  
 नारी के बिना कही भी नर का वास कहाँ ?  
 उसके अभाव मे जीवन मे मधुमास कहाँ ।  
 जगल मे भी मगल नारी ही ला सकती  
 निर्जन अरण्य को भी वह स्वर्ग बना सकती  
 संकट-पथ मे ही कठिन परीक्षा नारी की  
 चिन्ता न करें कुछ भी उस जगल-शाडी की  
 कहता है मेरा धर्म कि मुझको जाना है  
 दण्डकारण्य मे निज कर्तव्य निभाना है ।"

एकान्त वन मे पति-पत्नी की बातचीत  
 उत्कट इच्छा की हृदयग्राहिणी हुई जीत  
 लक्ष्मण ने भी निज भ्रातृदेव को मना लिया  
 तीनों को वृद्ध पिता दशरथ ने विदा किया ।  
 रोती-रोती आँखो ने उनको विदा किया  
 बँकेयी ने सीता को भी वन-वसन दिया !  
 बाँधा हाथो से स्वयम् राम ने बल्कल को,—  
 कोमल अंगुलियो से पोछा नृप-दृगजल को ।  
 मूर्च्छित होकर गिर पडी माण्डवी—भरत-प्रिया  
 फट गई—फट गई उसकी कोमल-करुण हिया  
 सीता के चरणो पर उसके आँसू पवित्र  
 किसके लोचन-जल मे न माण्डवी-मजल चित्र !  
 उमिला विवल, श्रुतिकीर्ति विवल, सब विवल-विवल  
 सबकी आँसू मे मानो सरयू-गगाजल

सीता की कोमल कमल-देह पर भी बल्कल !  
 किसके कारण, किस लिए आज यह कल-वल-छल ?  
 इतनी निर्ममता—निर्दयता—निष्ठुरता क्यों ?  
 रघुकुल की सहृदयता में ऐसी जड़ता क्यों ?  
 अन्त पुर की सब स्त्रियाँ भ्रमक कर रोती अब  
 प्राणों की असह्य व्यथा आँखें ही ढोती अब !  
 टंक लिया नृपति ने हाथों से अपने मुख को  
 पी लिया प्राण ने जीवन के अन्तिम द्रुत को  
 हाहाकारों के बीच धैर्य का घमं घबल  
 श्रीराम-जानकी-शुद्धमण-मुख ज्यों ज्योंति-कमल !  
 नख में शिखर तक आलोकित त्याग-प्रभा उज्ज्वल  
 माया के महा महल में भी मुस्कान विमल  
 तापसी वेद, तापसी केश, तापसी भाव  
 मन में न किमी में कोई भी किञ्चित् दुराव !  
 सीता से कहा माण्डवी ने कातर स्वर में  
 'भुज्ज में न रहा जाता दीदी ! अब इस घर में  
 अग्रज के साथ अनुज भी जाते कानन में  
 तो यहन-सग क्यों वहन नहीं जाए वन में ?  
 तेरी सेवा तो मैं ही केवल कर सकती  
 मैं ही वन-पथ की कटक-पीड़ा हर सकती  
 पति रहते तो निश्चय ही जाते बन्धु-सग  
 चड पाता नहीं अयोध्या पर दूसरा रग !  
 पर हाय, क्षणों में ही हो गया खेल कैसा !  
 देखा न कभी भी दृश्य आज के दिन जैसा  
 इस घर में ऐसी फूट े वहन, मैं चकित-चकित  
 इस निर्मम घटना के आगे मैं लाज-नमित !'  
 माण्डवी हुई चुप सुन, सीता के मधुर कथन  
 पर, नीरविहीन हुए न करुण कब्बल लोचन  
 पोछती रही कौसल्या नयनों के जल को  
 गभीर सुमित्रा रही बढाती उर-बल को !  
 चलने की बेला छुआ राम ने पितृचरण  
 स्वीकार किया भाताओं ने सुत-भौन नमन

छा गया भवन मे सहसा रुन्दन ही रुन्दन  
 इम ओर रुदन, उस ओर रुदन, हर ओर रुदन !  
 आँसू ही आँसू ओह-आह की घड़ियों मे  
 कँकेयी घिरी-घिरी आँसू की झड़ियों मे  
 राजाज्ञा से सुमन्त ने रथ को मँगा लिया ।  
 रानी आँसू न आज राम को विदा किया ।  
 उठ मके न दशरथ उठ वर भी इतना अचेत  
 निकले बाहर श्रीराम अनुज-मीना-भमेत  
 भीतर ही हाहाकार नहीं, अत्र बाहर भी  
 सत्र ओर शोक-विह्वल अमन्य नारी-नर भी ।  
 हाँका सुमन्त ने रथ । पथ पर व्याकुल जन-गण  
 उम राजभवन से सौ-भौ गुना अधिक रुन्दन  
 दर्शन के लिए हजारों आँसू हैं प्यासी  
 विह्वल—अति विह्वल आज अयोध्या के वासी ।  
 'रथ सुमन्त ! रथ को, दर्शन तो करने दें  
 राम के मामले आँसू आज बिखरने दें  
 अश्रुओं को जाने दें धीरे-धीरे इस क्षण  
 हैं तड़प रहे उनके दर्शन हिन हम जन-गण ।'  
 'सत्रों प्रणाम, सबको प्रणाम, सबको प्रणाम'  
 —बोले रथ पर ही खड़े-खड़े निप्याम राम  
 'चाँदह वर्षों के बाद पुन आना ही है  
 प्रिय जन सेवा का अवसर फिर पाना ही है  
 हँस कर ही विदा करें कि मफ हो निर्वाणन  
 हो जगल मे भी मगलमय ही जन-जीवन'  
 —कुछ कह, मुन कर अपने रथ से बल पड राम,  
 थामी सुमन्त ने कस कर घोड़े की लगाम ।  
 पर, भीड बहुत आगे, पीछे ! अब क्या उपाय ?  
 हर ओर वरण चीत्कार, हृदय मे हाय-हाय !  
 झ्योटी पर दशरथ खटे विकल रानी-समेत  
 सूखा-सूखा अन्तर जैसे जलहीन रेत ।  
 लोचन-सम्मुख पथ धर, ओठ पर एव नाम  
 प्राणों के भीतर व्याप्त मात्र राम ही राम

सब कुछ उदास हो गया एक के जाने से  
 रुक सके न राम अयोध्या के अबुलाने से !  
 यह कहते-कहते गए कि 'अब तो धर्म धरे  
 इस अतुल स्नेह से मुझे अधिक लज्जित न करें  
 यह प्रेम सुरक्षित रहे भरत के लिए नदा  
 घेरे न बन्धु को कभी यहाँ कोई विपदा !'

—यह सुन कर नयन-नयन में नूतन जल-प्रवाह  
 अवलुब्ध कठ में ममता-मूर्च्छित जोह-आह  
 शोकाकुल राजभवन, शोकाकुल ग्राम-नगर  
 आहारहीन, आनन्दहीन सब नारी-नर !  
 सुनसान पथ पर म्लान-म्लान उर-प्राण सभी  
 रे, आज अयोध्या के वासी निष्प्राण अभी  
 सप्ताटे में चीखती वेदना ही केवल  
 सूखता जा रहा अब अनगिन नयनों का जल !  
 पछी का कलरव भी न कही, आकाश मघन  
 है रका-रका-मा प्रवृत्ति-व्यथित मधुमाम-पवन  
 आज ही यहाँ उन्लास, आज ही महाशोक  
 दुस्सह दुख से है व्याप्त मनुज का मर्त्यलोक !  
 कितना उदाम नब वृछ, कितना नीरम तन-मन  
 रह-रह कर आँखों में अकित निर्वासन-क्षण  
 गिर गए भूमि पर दशरथ ! असह विरह-चर्छाँ  
 चिल्लायी कौसल्या, विलोक कर पति-मूर्च्छाँ !  
 कर गए नगर-सीमा को पार जानकीपति  
 रथ के पीछे अनगिन पुरवासी की पग-गति  
 वापस का आग्रह इनका-उनका—दोनों का  
 आता-जाता रह-रह कर विनती का शोका !  
 उत्तरे रथ से नीचे भी रघुवर वार-वार,—  
 मुन कर करुणा से भरी वृद्ध जन की पुकार :  
 'इतना निर्मम क्यों हे सुमन्त ! रथ लौटाओ  
 घोड़े को अब इन ओर, इधर जल्दी लाओ !  
 चलते-चलते श्रीराम सुदूर निकल आए  
 हैं वादल-दल अम्बर में छाए के छाए

जैसी रथ-गति वैसी जन-गति, ऐसी ममता  
 माने। आ रही दौड़ती विह्वल हृदय-लता !  
 दोपहरी कब न समाप्त, दिवस ढलने को है  
 आकुल जनगण के चरण सिर्फ चलने को हैं  
 सब गाँव-गाँव में घटना-चकित उदासी-सी  
 त्यागी कुमार-दर्शन-हित आख प्यासी-सी !  
 धिर गए राम सहसा पुरवासी से पथ पर  
 बैठे न रहे वे तीनों अब अपने रथ पर  
 सीता भी पैदल चली राम के सग-सग  
 भीतर ही भीतर मन में वनदर्शन-उमग  
 आते-आते तमसा का प्रिय तट दीख पडा  
 जलधारा पर सध्या प्रकाश सहसा विखरा  
 घोड़े को खोल दिया सुमन्त ने चरण को  
 मन-ही-मन उत्सुक प्रिय लक्ष्मण कुछ करने को  
 तमसा के तट पर सबका नित-सध्यावन्दन  
 तरु पर लख ज्योति-प्रपात, मुदित सीता का मन  
 वनवास काल की प्रथम रात आई-सी है  
 भुरमुट पर सूरज की लाली छाई-सी है  
 चहचहा रहे पछी, तट पर कुलकुट निनाद  
 मन को इस क्षण किसकी-किसकी आ रही याद  
 उपवास राम की इच्छा से पहली निशि में  
 छिटकी-सी भीतल चन्द्र-ग्रभा पूरव-दिशि में !  
 ले आए लक्ष्मण घास तुरत ही, शय्या हित  
 सीसम के नीचे जनकनन्दिनी बहुत मुदित  
 कुछ दूर अयोध्यावासी का चर्चित पडाव  
 'लौटें श्रीराम यही से'—मन में यही भाव  
 सो गए सभी पर, लक्ष्मण का चेतन पहरा  
 चाँदनी रात में चंचल पुरवाँया-लहरा  
 निशि भर सुमन्त-सीतापति में वार्ता अटूट  
 अनुनय की कोई बात न मन में गई छूट  
 दशरथ की इच्छा व्यक्त किन्तु सब-न्य अटल  
 जब-तब श्रीराम-नयन में धाहिती श्रद्धा-जल

सब विधि से सुखी रहे प्रिय भरत, यही आशा  
 पूरी हो स्नेहमयी माता की अभिलाषा ।  
 कर्त्तव्य-हेतु उर मे दृढता का शक्ति-उदय  
 पुरवासी वी हो सकी नहीं प्रार्थना-विजय  
 तीनों रथ से चल पडे दूर, सबको तज कर  
 था पीला-पीला उस बेला नभ मे हिमकर ।  
 सब उठे प्रात मे किन्तु नयन-मन चकित हुए  
 पाकर न राम को वहाँ, प्रजागण व्यथित हुए  
 पथ पर रथ-चिह्नो को निहार, आँखें पुलकित  
 'लौटे श्रीराम अयोध्या ही'—यह अनुमानित !  
 धिक् ! इतनी देर रहे क्यों सोए हम कैसे ?

—चल पडे उधर ही पुरवासी जैसे-तैसे  
 पर, राम दूर, अब बहुत दूर ममता-पथ से  
 नदियो को पार किया, आगे निकले रथ से  
 चलते-चलते दक्षिण कोसल-सीमा आई  
 राम के हृदय पर पडी मातृभू-परछाई  
 रथ को रुकवा कर उतरे वे सीमा-स्थल पर  
 बोले निष्ठापूर्वक पवित्र माटी छूकर  
 'हे मातृभूमि ! अर्पित मेरा सादर प्रणाम  
 दो आशीर्वाद नि पूर्ण करे बनयास राम  
 अक्षुण्ण रहे अनि दुख मे भी भू-भक्ति-भाव  
 डूबे न कभी तम-सागर मे विश्वास-नाव  
 हे जन्मभूमि ! तुम विश्व-श्रेष्ठ माता मेरी  
 कर मे न तुम्हारे पडे कभी कोई बेडी  
 आए न कभी भी पराधीनता का सक्क  
 क्षज्ञा से ध्वस्त न हो स्वधर्म का अक्षय वट  
 आसिन्धु-हिमालय विश्व-पुरातन अरण्य देश  
 शिव मे ही विष्णु-प्रभा, सुविष्णु मे ही महेश  
 हरिहर-मानस मे ब्रह्म-ज्योति-विस्तार एक  
 अक्षुण्ण रहे हे राष्ट्रभूमि ! शाश्वत विवेक !  
 विजयी हो तम-तन्द्रा पर ऋजित सत्य-प्राण  
 मेरी यात्रा से हो भास्वरता का विहान



काद में दोभ-रहित अपना वनवास-बाल  
 भुक्ने न कभी दूँ देश । तुम्हारा विश्व-भाल ।  
 दो आशीर्वाद जननि, जि भरत हो कार्य-सफल  
 सूखे न कभी भी सहृदयता का सरयू-जल  
 लौटे लक्ष्मण निर्विघ्न, जानकी कुशल रहे,—  
 दुख की घड़ियों में भी प्रसन्न मन अचल रहे ।”

राम के शयना शब्द श्रवण कर, नत्त मुमन्त  
 सम्मुख मजरित विटप-श्रेणी पर नव वसन्त  
 दौलित समीर से प्रिय रसाल की डाल-डाल  
 उड़ती-सी इधर-उधर रस-पीती मधुप-माल  
 मँहमँह सुगन्ध से मोता का मन-वन पवित्र  
 सुधिमय चितवन में मिथिला का उद्यान-चित्र  
 मन्दिर में प्रथम मिलन की स्मृति आलोकित-सी  
 आते-आते अब गगा-घार प्रवाहित-मी !  
 उज्ज्वल कछार, उज्ज्वल पानी, उज्ज्वल प्रवाह  
 गगा में सटी-सटी ही अब वन-विजन राह  
 वृक्षों के पके फलों को देख, हके घोड़े  
 अनुभूति पाकर लक्ष्मण ने तोड़ लिए थोड़े ।  
 सेमल के लाल-लाल फूलों की लाल छटा  
 लगता कि गगन में छितराई-मी मुमुम-घटा  
 लम्बे-लम्बे तृण पर त्रीडित मुरमुरि-समीर  
 तट पथ ऐसा कि बिछा है मानो हरित चीर  
 चक्रमय निवृत्ता पर चममचव मारम-वगुले  
 रथ के चक्के तर-छाया-पथ पर गूब चले  
 रमणीय, और रमणीय, और रमणीय स्थान,  
 गिल गए नयन, गिल गए हृदय, गिल गए प्राण !  
 रघुवर की इच्छा से सुमन्त ने रोका रथ  
 कितना सुन्दर अब विटप-पुष्पमय गगा-पथ  
 पीकर हिनहिना उठे घोड़े ठढा पानी  
 निवली सीतापति-मुख से यह इच्छित वाणी :

'अच्छा रहता यदि यही करें हम निशि-पडाव  
 नयनो पर पडा मनोहर दृदयो का प्रभाव  
 इच्छा होती कि प्रकृति-शोभा देखें कुछ क्षण  
 मुखकर अतीव प्रिय सुरसरि-तट का सान्ध्य भ्रमण'  
 दौड़ते हुए कुछ वेवट इतने में आए  
 देख कर उन्हें, लक्ष्मण दो क्षण तक अकुलाए  
 पर, कहा एक ने—'ह अति प्रियदर्शी कुमार !  
 स्वोकारें सभी निपादो का उर-नमस्कार  
 आ रहे हमारे भूपति गुह भी दर्शन-हित  
 निर्वासन-घटना को सुन कर वे बहुत चकित  
 कुछ ही पहले तो उन्हें करण सवाद मिला  
 पूरी बातें सुनते ही उनका हृदय हिला ।'

राम ने स्वयं आते देखाकेवट पति को—  
 देखा उत्सुक चल चरणों की विह्वल गति को  
 देखा प्रेमाकुल मुख को—मजल विगोचन को  
 देखा आह्लादित तन को—थढ़ामय मन को ।  
 आ रहा निपाद-नरेश मकल परिवार-सहित  
 श्यामल वादल-सा व्यक्ति भ्रुण्ड आनन्द-हरित  
 उठ गए राम-लक्ष्मण अधिपति के आते ही  
 छलकी दोनों की आंखें गले लगाते ही ।  
 गुह-पत्नी ने भी सीता का सत्कार किया,—  
 मीठी वाणी से त्याग-हेतु जयकार किया  
 आंसू निकाल कर किया स्नेह से आलिंगन  
 हर लिया प्रेम ने स्वयं प्रेम का पावन मन ।  
 बोला निपादपति 'आप न भिन्न मुने जनों  
 हे राम ! दीन गुह को वस, अपना ही मानें  
 अपना ही समझें इस प्रदेश को हे कुमार,  
 वस, यही प्रार्थना मैं करता हूँ चार-चार  
 यह भूमि आपकी ही है, यहाँ निवास करें  
 हे प्रभु ! चौदह वर्षों तक यही प्रवास करें

खिलने दें। मन-प्राणो को नित निज दर्शन से  
जाएँ न आप अन्यत्र कही इस उपवन से  
पूर्व के पुण्य का प्राप्त अतुल परिणाम आज  
परिवार-सहित मैं घन्य हुआ हूँ राम ! आज  
चौदह वर्षों तक वनें यही पर वनवासी,—  
मिहासन-रयार्गी हे जन-मन के विश्वासी !  
इस भू पर रहने में होगा कोई न क्लेश  
चरणों पर अर्पित है समस्त यह गुह-प्रदेश  
सेवा में बर्मी नहीं होगी, करता हूँ प्रण  
सार्थक होने दें राम ! आज से गुह-जीवन  
हो रहे प्रथम दर्शन से ही ये प्राण घन्य  
आपकी कृपा से आज मिलन-वरदान घन्य  
स्वीकारें प्रभु ! आतिथ्य, करें जी भर भोजन  
इस बेला केवल इतना ही मेरा वन्दन,—  
देकर निज उर में स्थान, भक्ति को तृप्त करें  
मेरे मन को अपने प्रवास में लिप्त करें  
आपकी अलौकिक ख्याति कहीं फंती न यहाँ  
ज्योति ही ज्योति है वहाँ, आपकी कृपा जहाँ !

गुह के वचनों से हर्ष-चकित दोनों भाई  
सीता के नयनों में प्रसन्न आभा छाई  
इतने में पकवानों का लेकर चार भार—  
आ गए वहाँ पर गुह-गृह से चारों बहार  
श्रद्धा-विभोर श्रीराम, देखकर स्नेह अमित  
मानो प्रिय भक्त-समक्ष स्वयं भगवान नमित  
नीरज-नयनों में उज्ज्वल रम, उर-प्रेम-भरा  
मुख पर मुदिव्य आनन्द-प्रवास स्वन. खिलरा !

—देखा निपादपति ने जल-उज्ज्वल लोचन से,  
मिल गया एक मन आज एक ज्योतिन मन से  
नि स्वार्थ प्रेम को दर्शन-पथ मित्र गया आज  
उम ज्योति-कमल से हृदय-कमल मिल गया आज

बोले रघुवर हे मित्र ! तुम्हें मैं जान गया,—  
 कितना पवित्र है प्रेम, इने पहचान गया  
 ऐसा मत नमझो गृह, कि भक्ति से भिन्न नाम  
 छिपती न छिपाए कभी कुछ थला लक्ष्मण  
 स्वीकार किया हमने अनिच्छ तुम्हारा प्रिय,  
 भा गया हमे गंगा का म्बन दिनारा प्रिय !  
 जान ही रहे तुम, अब मेरा बनवान-धर्म  
 करना है हमे अभी से ही नापनी जम  
 पा लगे हम कुछ कन्द-भूत क वहाँ जाज  
 मिल गए यहाँ तुम तो जाएंगे वहाँ जान  
 हम लोगो को कर प्रात ही चल देना है  
 दैनिक पूजन इन तट पर ही कर लेना है  
 दोनो तुरग हैं पितृदेव के अनि प्यारे  
 इनके हित भी कर दो प्रबन्ध समुचित चारे  
 गृह से पकवानो जो नुमन्त ही खा सकते  
 मिष्टान-स्वाद को यही हमें बतला सकते !'

बरगद के नीचे तृण-शय्या पर निशा-शयन  
 गंगा-प्रवाह की ओर राम के कमल-नयन  
 छोटे लक्ष्मण ने गृह कि 'आप तो जाएँ अब  
 हो गई रात आधी, आदिर मोएँगे अब ?  
 शय्या है बिछी नई, अब जाएँ सोने को  
 कुछ ही घड़ियो मे दग्ध ! भोर है होने को  
 मैं जगा हुआ हूँ आप तनिष्ठ चिन्ता न करे  
 अपलक आँसों मे हे कुमार, अब नीद भरे  
 मेरे अनेक प्रहरी नतक हैं यहाँ-वहाँ  
 आ नकता कोई विघ्न नहीं, श्रीराम जहाँ  
 देविए, युगल छवि पर कैसी आभा छाई  
 लगता कि काल-दण्डि ने ज्योतिष मणि विन्वगई !  
 लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि दृग मे नीद वहाँ ?  
 मैं मोलें कैसे मोए मेरे कन्धु जहाँ

रोते होंगे इस ममय अयोध्या के वासी  
 रोनी होगी रानियाँ, समस्त दास-दासी  
 करते होंगे अति दुखी पिता दारुण विलाप  
 अत्यन्त कष्टकर होगा उनका विरह-ताप  
 होना था क्या पर, हुआ वही जो होना है  
 अनगिन नयनों को राम-विरह में रोना है !  
 लक्ष्मण तो अत्र भी क्रोधित किन्तु विवश है मन  
 आँसू पीकर रह गया हाय, मेरा यौवन  
 सुख नहीं ला सना बन्धु-हेतु तो दुख टालूँ  
 कम से कम सेवा का ही तो मैं व्रत पाखूँ  
 कर हूँ न्योछावर अपने को, लालसा यही  
 फिर देखूँ या देखूँ न कभी प्रिय अवध-मही !  
 परिणीता के साहम ने भी दल दिया मुझे,—  
 चरने की बेठा उसने दृग-जल दिया मुझे  
 है गुह ! सोने का मुझसे मत अनुरोध करो  
 तुम राजा हो, अब निज नयनों में नींद भरों  
 कह दो अपने सेवक से, वे भी सो जाएँ  
 लक्ष्मण के रहते कोई नहीं कष्ट पाएँ  
 मुझसे सेवा के सिवा न कोई करो बात  
 मोए है मिट्टी पर मेरे अति पूज्य तात !  
 वे एक चक्रवर्ती नरेद के सुन उत्तम  
 है राज्य-त्याग वा उनके मन में तनिक न गम  
 भाई है उनका मैं, वत्तंग्र निभाने दो  
 जागरण-रात्र तब दृग को मुझे जगाने दो  
 मेरे कर में है धनुष-बाण, चिन्ता न करो  
 वीची अब आधी रात, नयन में नींद भरों !  
 गुह के लोचन छल्ला उठे, वार्ते मुन कर,—  
 हो गया द्रविण अनिग्रय भावुव वह भक्तप्रवर  
 उर-पट पर अश्रित रामचन्द्र मान्दवना-मजग  
 चन्द्रिका-समान जानसी प्रतिविम्बित जगमग  
 कर रही रात अब गगा को शशि-नमस्वार  
 शीतल समीर से जाह्लादिन है नदी-घार

उस पार प्रात की प्रभा नीलिमा से निकली  
पीयूष-कलश को लिए उधर यामिनी चली !  
तबतक धीराम और भीता सब विधि तत्पर  
गंगा-तट पर वे दोनों महज प्रमत्त-मुखर  
कुछ देर मगर के तप की उत्कण्ठित चर्चा—  
स्मृतियों में ही पूवज की भावभरी अर्चा !  
'करना है गंगा पार हमें जन्दी श्रमण !

—बोले श्रीराम—'करो गृह से नाँका-बन्दन  
विन्तून जटघारा के काग्न सुभाव्य देर  
ऐना उपाय अब करो, न हो भाई, अबेग  
बोले लक्ष्मण—'तरणी-प्रवन्ध हो गया नात !  
गृह मो नका न दो क्षण भी प्रहृ हे ! विगत गत  
पहरा देना ही रहा निपादराज निधि भर  
उमका मवेदनगील बहून कोमठ अन्तर !'  
चुप रह कर ही राम ने अनुज-मुख को देखा  
चमकी चितवन मे आँखों की कर्पा-रेखा  
तबतक चरणों पर झुका-भुका-मा गृह-मस्तक  
उमकी आँखों में राम-जानकी चकनकचक !

'यह अद्य भक्ति कयो हे निषादपति ! बोलो तो ?'

—बोले श्रीराम 'हृदय को स्वत टटोलो तो ?

तुम तो अधिपति, मैं नृप-कुमार ! कयो स्नेह घना ?

अग मे सेवा लेना तो मेरे लिए मना

क्यों नयन तुम्हारे सजल-सजल मुझको निहार ?

तुम कयो इनने आकुल-ब्याकुल मुधबुध विनार ?

मत करो व्यक्ति-पूजा इतनी हे गृह, उदार

करने दो गंगा को जल्दी अब हमें पार !

जाना है प्रिय वन-पथ पर दशरथनन्दन को

मेरे चरणों पर नहीं लगाओ चन्दन को !

मेरे चलते, भावों का मत अपमान करो

तुम भार्ग-मित्र-ना ही मेरा नम्मान करो !

लो, तुम तो अब आग्नी नजाने लगे आज,—

अपने नमक ही भुजे क्लाने लगे आज ?

सीने । यह भक्त मानता क्या भगवान मुझे ?  
 कितनी श्रद्धा से देता यह सम्मान मुझे ।  
 रथ में घोड़े को लगा, सुमन्त राम-मम्मुख  
 उर के कोने-कोने में केवल दुख ही दुख  
 की गगा-तट पर व्यक्त उन्होंने नृप-इच्छा  
 लोट कर यहाँ से चलने की मंगी भिक्षा ।  
 तीनों यात्री अजलि में बट के दूध लिए,—  
 नपसी-समान कच को ऊपर की ओर किए  
 बट-दुग्ध बना देता वालों को जटाजूट  
 यह जान, सुमन्त-हृदय तत्क्षण ही पडा फूट ।  
 तबतक नौका तैयार सुसज्जित पूत्रों से  
 है कसी कसी उर-धारा दोनों कुलों से  
 तीनों के तीनों चल नाव की ओर हाथ  
 अब क्या उपाय, अब क्या उपाय, अब क्या उपाय ।  
 रोकर सुमन्त ने भिखा नमन गिगु के समान  
 कुछ कहने के पहले जैसे फट गए प्राण  
 'क्या आजा है'—कह सके सिर्फ इतना सुमन्त  
 इतना ही कहने में कम्पित मन का दिग्गन्त ।  
 कंधे पर रख कर हाथ, राम न कहा यही ।  
 'लौटे अब आप अयोध्या-पथ की ओर अभी  
 जल्दी जाकर कीजिए पिता की देखभाल  
 अति द्रवित न हो अब दुख से उनका उर विशाल  
 हैं उन्हें आप ढाढ़स कि क्षीण हो बना मोह  
 ही नहीं कभी अब उनके मन में आह-ओह  
 जल्दी अभिषेक भरत का हो, यह ध्यान रहे  
 अक्षुण्ण सभी मानाओं का सम्मान रहे ।'  
 —मुन कर श्रीराम-वचन फिर नयनों में पानी  
 निकली अवरुद्ध कंठ में अटकी-भी वाणी :  
 'इस जग में अब अच्छे लोगों का मान नहीं  
 अत्र श्रेष्ठ व्यक्ति पा सकना है सम्मान नहीं ।  
 जा मरते जब सीतापति भी दण्डवत बन में,  
 तो कितना उथर-भुयल सभव जन-जीवन में

हे राम ! अकेले इस नट से लौटूँ कैसे ?  
 अब खाली रथ लेकर उस ओर चनूँ कैसे ?  
 मुझमें मभव यह नहीं राम ! कैसे जाऊँ ?  
 इच्छा होती कि आपके संग ही रह पाऊँ  
 अब वहाँ मिलेगी अमृतभरी मुम्बान-भुघा  
 काँपेगी विछुडन के दुख में कोमल-चमुघा  
 कितना उदास होगा अब वह मग्न-अछार  
 होगा उदान कितना उज्ज्वल प्रानाद-द्वार  
 सूने होंगे उद्यान, भवन सूने होंगे  
 सूने होंगे सब पथ मदन सूने होंगे  
 जाऊँ कैसे ? जाऊँ कैसे, हे दिव्य राम !  
 हो गए विघाता अबघपुरी-हित हाथ, वाम  
 किस मुँह से क्या बोलूँगा मैं नृप के सम्मुख  
 बट ही जाएगा मुझे देखकर उनका दुख ।'

बैठे मुमन्त रथ पर रघुवर के कहने से  
 दुख और बट गया प्रिय-विछोह-दुख सहने से ।  
 बैठी नौका पर बँदेही, तब राम, अनुज  
 खिल उठे जाह्नवी-जल पर वे तीनों अम्बुज ।  
 धीरे-धीरे धारा पर तर्णी वह निकली  
 अब प्रेम-भँवर में केबट की आँखें पिघली  
 मुड-मुड कर देख रहे मुमन्त नौका-पथ को  
 रोवते रहे वे बीच-बीच में निज रथ को ।  
 लक्ष्मण ने हाथ उठाकर मन को शान्त किया  
 दुख के कारण इगित ने उत्तर नहीं दिया  
 सहृदयता ही विछोह की पीटा महती है  
 निर्मल नयनों में ही निर्रिणी बहती है ।  
 चटने के पहले गुह ने चरण पखारा था  
 अभिशप्त अहल्या को प्रभु ने म्बीवारा था  
 उन्मत्त ताडका को रघुवर ने मारा था,—  
 शिव धनुष-यज्ञ को प्रभु ने स्वयं सँवारा था !



—ये विविध भाव उठ रहे स्वतः गुह के मन में  
 लहराती भक्ति-तरंग स्वयं ही क्षण-क्षण में  
 नाविक अनेक, पर गुह ही नाँवा खेता है  
 नयनों से ही वह नयनों का रम लेता है ।  
 झरता है प्रीति-पराग पद्मलोचनदल में  
 झरती है प्रेम-सुजा आँसों के ही जल से  
 मित्र गया हृदय को हृदय, जोर क्या लेना है  
 उर की गंगा में गम-नर्गण को लेना है  
 मित्र गए राम ही जग, कुछ जोर मिले, न मित्रे  
 उर-कमल खिल गया जब, कुछ और खिन्ने, न खिले  
 चाहिए प्रेम को प्रेम, और कुछ नहीं राम,  
 रे मन ! नीतापनि ज्योति-विभूषित यही राम

अटकी-भटकी-सी नाव भँवर-सी नाच रही  
 कुछ पता नहीं गुह को कि विघर-जल-मार्ग मही  
 जा-जा कर उधर-इधर फिर तरणी आती-सी  
 आनन्द-उर्मियाँ उर-नट में टकरानी-सी ।  
 जल को छूकर बँदेही ने कर किया नमन  
 गंगा से आशीर्वाद कि सफ़र विपिन-जीवन  
 गुह के अन्नर में फूट पड़ा अब भक्ति-गीत  
 जानते प्रीति-यात्री प्रपूज्य निपाद-श्रीन  
 मछलियाँ उछरने लगी निरख, प्रतिविम्ब-कमल  
 मच गई मध्य गंगा के जग में प्रिय हृदचल  
 इतना विभोर वह भक्त कि मरकुछ गया भूरा  
 खिल गया उधर जालीन-भरा जानाज-पूरा ।  
 लक्ष्मण के मन में त्रिजग किन्तु नीता मन्मिन्,—  
 विस्तृत गंगा को देख-देख कर दृग पुद्गलिन  
 रह-रह कर साँसों में मधोर—आनन्द-म्याद  
 मिथिला की कमला-बोली की आ रही याद ।  
 लक्ष्मण से बोले राम कि 'दिसो प्रिय मुपमा  
 गंगा की जल-उज्ज्वलता की न वही उपमा

देखो, लहरो पर सूर्य-किरण नीहा करती  
उड़ते पछी की पख-प्रभा जल पर झरती  
हे धन्धु ! हृदय मे भी सुरसरि-ना प्रिय प्रवाह  
उर का नाविक देखता अभी दूचरी राह  
कोमलता बहो-कहो ही मिलती प्राणों की  
झकार बिरल होती है हृदय-प्रमाणों की ।'

नीवा खेने जब लगे राम, चींके लक्ष्मण  
खुल सके न भक्ति-विभोर अभी तक गुह-लोचन  
तन में है मन या मन मे तन, कुछ पता नहीं  
ऐसी तन्मयता मिल पाती है कही-कही ।  
सहमा निपादपति जागा जब जलधारा पर,  
करुआर राम के कर मे लख, वह धर-धर-धर  
'प्रभु क्षमा करें—इतना ही तो निकला मुख सें,  
वह सिहर गया अतिशय दुख से—अतिशय मुख से ।  
देखा उसने आवाग कि दिन चट गया अधिक  
वन गई भुजाएँ कर्म-हेतु तत्काल श्रमिक  
सर-सर-सर पुष्प-अलङ्कृत तरणी आगे अब  
कर्त्तव्य-मजग गुह-प्राण ज्योति से जागे अब ।  
लहरो को चीर-चीर कर नाव निकलती-सी  
मूरज की किरणें अभी न उतनी जलती-सी  
सिकता से शोभित श्वेत किनारा आया-सा  
वादल का टुकड़ा एक अचानक छाया-सा ।  
तट पर तरणी लग गई । विदा की करुण घड़ी  
गुह के लोचन मे व्याप्त प्रेम की पुनः झड़ी  
उतरी सटर्प सीता, उतने दोनो भाई  
आँखों की उजगी घटा उमड कर छितराई—  
जब बहा राम ने—हे लक्ष्मण ! तू न चरो न वन,  
मुन कर बठोर यह वचन, अनुज के द्रवित नयन  
निकला मुख से—हे तान ! उग गया मुझे वाण  
गेकें न मुने—रोकें न मुने हे महाप्राण ।

रकने को मैं अब नहीं, चलूँगा सग-सग  
 दण्डकारण्य में विचर रही मेरी उमग  
 यदि कोई भूल हुई तो कर दें क्षमा आप  
 मत दें—मत दें हे बन्धु ! यहाँ अब विरह-शाप !  
 होगा न कभी मुझसे कि लौट कर जाऊँ घर  
 सच कहता हूँ, आपके बिना जाऊँगा मर  
 सब बात मान सकता लेकिन यह बात नहीं  
 सह सकता लक्ष्मण राम विरह-आघात नहीं !'  
 पर, कहा राम ने—'तुम कितने सुकुमार बन्धु  
 भाएगा तुम्हें न युग तक जगल-शाह बन्धु !  
 कोमल पग को कटक-पथ पर क्यों जाने दूँ ?  
 क्यों व्ययं तुम्हारे नयनों को अकुलाने दूँ ?  
 क्या मुझे कहेंगे मिथिलापति, नर-नारीगण  
 कोसेगा मुझे नहीं क्या प्रतिदिन निम्बिल भुवन ?  
 लूँगा सम्हाल सीता को स्वयं अकेले ही  
 विचरेगी मेरे सग-सग यह वंदेही  
 तुम तनिक लोकमत का भी अनुभव करो बन्धु,  
 अपने दृग में अपनी करुणा भी भरो बन्धु !  
 अति स्नेह-भाव से लग सकता मुझ पर कलक  
 मेरे मानस में रह-रह कर वरिचका-डक !  
 तुम भी न सके दो रात, इमें भूलूँ कैसे ?  
 सहना होगा आघात, इमें भूलूँ कैसे ?  
 अप्रज का भी होता है अपना अनुज-धर्म  
 तुम ममत्त रहे हो बन्धु, राम का कथन-धर्म ?  
 मानव उन्नत इसलिए कि उममें सूझबूझ  
 इतना भावुक मत बनो कि जाए हृदय जूझ  
 वंदेही भी चिन्तित, हे बन्धु ! विचार करो  
 लौकिकता के अनुकूल सदा आचार करो  
 मत देखो मेरा सुख, दुख देखो घर का भी  
 तुम करो ध्यान करुणाङ्कित हृदय-डगर का भी  
 तुम इतनी दूर यहाँ तक आए, कम न यही  
 प्यारे भाई ! अब जाओ वापस अवध-मही

निम्ने हो जाए हानि, नहीं। वह लाभ विमल  
 मरिता वैसी जिन्मे न तनिक भी अपना जल  
 जानकी धर्मवत् ही आई पर, जाओ तुम  
 मेरे चलते जीवन अनफ़ट न बनाओ तुम !  
 ऐसा न करो कुछ भी कि लोक में निन्दा हो  
 मनमाना तो कर सकते हो तुम जो चाहो  
 होती है बुद्धि बली लेकिन ऊँचा विवेक  
 है एक घरा लेकिन चिन्ता-पारा अनेक ।”

मुनती न भक्ति न ज्ञान तर्क की अनह क्या  
 हठ नहीं समझ पाना भविष्य की भाव-व्यथा  
 शिशु के समान लज्जन-चिन्तन में अशु-नीर  
 सुन दुखद वचन महत्ता आकुल-ध्याकुल शरीर  
 'हे राम ! मुझे चरना ही त—चलना ही है  
 उत्तम सेवा-हित दीपक को जलना ही है  
 जलने में कोई बप्ट नहीं, आनन्द मदा  
 जीवन में तो जाती ही रहती है विपदा !  
 महता ही रहना है नवकुछ महने बाज  
 बहता ही रहना है कुछ-कुछ कहने बाज  
 सीधा-नपाट मैं हूँ, भीतर में छल न वहाँ  
 मेरे जीवन के आँगन में हटकर न बही !  
 हूँ नरलहृदय इसलिए क्रोध आ जाता है  
 अन्याय देख कर मेरा मन अबुगता है  
 लक्ष्मण तो भाई का सेवक, चाकर प्यारा,  
 आया यह छोड़ अयोध्या में अपनी दारा !  
 भाई की भक्ति अधिक मुझमें, इसलिए चरना  
 मैं नहीं छला—भूदेवी को मैं नहीं छला  
 उमने भी मुझे कहा कि विपिन में जाना है—  
 पूरे चौदह वर्षों तक धर्म निभाना है !  
 हे राम ! नहीं हूँ मैं दोषी, जाऊँगा ही  
 मैं भ्रातृस्नेह वन-पथ पर भी पाऊँगा ही

भाई का प्रेम ममज्ञता केवल भाई ही  
तम के नीचे रहनी तरु की परछाई भी ।'

—रह गए मीन श्रीराम, जानकी हुई सजल  
उसके दृग मे उर्मिला बहन का चित्र विमल  
देने आई थी अर्घ्यं विदा की घड़ियो मे  
बँध गई उर्मिला पति-विछोह-हृष्यकडियो मे ।  
अन्तिम स्वीकृति से मुदित-मुदित लक्ष्मण का मन  
दोनो आँखो मे उमडा-सा सुख का सावन  
रौता है मानव अति प्रसन्नता-क्षण मे भी  
प्रासाद छोड कर जाता सेवक बन मे भी ।  
दुख मे आनन्द उठाना भी तो योग एक  
लक्ष्मण के संग बन जाना भी सयोग एक  
गुह के मन मे भी उठी शुभ्र गगा-हिलोर  
यह प्राण-लहर भी चली पथ के उसी ओर ।  
कुछ दूर निपाद चले त्रिमूर्ति के सग-सग  
पर, किया राम ने उस उमग का भाव-भग  
बोले—“निपादपति ! लौटो अब, तुम लौटो अब  
जाने फिर तुमसे होगा मेरा मिठना क्य ।  
बस, बनी रहे यह प्रीति, याद करते रहना  
स्मृतियो से सरस भाव उर मे भरते रहना  
मिल पाता है सतोपी को ही मन्वा मुख  
रुग्णा के कारण ही जीवन मे अतिशय दुःस  
विश्राम बना देता है सबल हृदय गति को,—  
करती है शान्ति प्रदान भक्ति मानव-भति को  
वर्त्तव्य जागरण से जीवन मे मिलती जय  
आनन्द-नाद मुन पाता केवल विमल हृदय !  
हे गुह ! तुमने सब विधि मेरा सत्कार किया  
तुमन अमीम श्रद्धा से उर-श्रृंगार किया  
भूलेगा राम नही सेवा गगा-तट की  
स्मरणीय प्रीति-छाया विश्वास विमल बट भी !'

लौटा अपने अनुचर के सग निपादराज  
 भीतर-बाहर आलोकित उसके प्राण आज  
 कमनीय चित्त में रामरूप-रमणीय छटा  
 त्रिछुडन से उमड़ी आँखों में वरणीय घटा ।  
 निर्गुण अन्तर में सगुण भाव के खिले कमल  
 दर्शन-प्रकाश में दीर्घ प्रतीक्षित चित्त विमल  
 प्राणों में भक्तिवमन्त-सुगन्ध अमित छाई  
 आनन्द-चौर से मुग्ध-ऋतिकाएँ अंगराई  
 चल पड़े उधर श्रीराम अनुज-भार्या-ममेत  
 सूनी-सूनी हो गई सरित की पुलिन-रेत  
 आगे-आगे लक्ष्मण, सीता के बाद राम  
 बनवास-वेद में भी तीनों के तन ललाम  
 चलते-चलते हो गई माँझ, निशि-शयन वहाँ ?  
 'ठहरेँ हम वहीं बन्धु ! विस्तृत बट वृक्ष जहाँ'  
 — बोले श्रीराम 'सामन वह तरु दीख रहा'  
 मन्थर गति में प्रिय शीतरु, सुखद समीर वहाँ ।  
 सीता कुछ थकी-थकी-सी उस क्षण जान पड़ी  
 स्वेदित मुख पर बच-त्रिरण सटी, विखरी-विग्नरी  
 चरणों पर रेणु-पराग, अधर पर मन्द हँसी  
 चितवन में वासन्ती तरु-शोभा वसी-वसी  
 बट के नीचे आ गए सभी आते-आते  
 सीता-समेत बैठे रघुवर कुछ मुसकाते  
 कर लिया स्वयं लक्ष्मण ने सत्वर सब प्रबन्ध  
 सोने की बेला तृण-दाय्या पर नयन बन्द  
 फिर प्रातः दैनिक कर्म और प्रस्थान तुरत  
 लगता, जैसे चलना ही केवल जीवन-व्रत  
 रह-रह कर झूल-अरे झोंके, नव सौरभ-दर  
 वक्तियाने में ही बीत गयी चैती दुपहर  
 चिड़ियों की बोली सुन-सुन कर उत्फुल्ल कान  
 पतली-पतली पगडण्डी पर पग का प्रयाण

तीमरे पहर पहुँचे तीनों सगम-तट पर  
 पावन प्रयाग का तीर्थस्यल किनना मुन्दर !  
 यमुना-गंगा मन-प्राण समान नील-उज्ज्वल  
 आत्मा-सी सरस्वती दोनों में व्याप्त विमल  
 सत्सग-समान मिलन-रेखा दोनों तट तक  
 आशा-नरग से हृदय-मलिल प्रतिपल चकमक !  
 सद्धर्म-समन्वय-मा सगम किनना पवित्र  
 अक्षयवट-सा विद्वाम बिलोकित मजल चित्र  
 'सीते ! इम भाव-सलिल में अब हम करें स्नान'  
 बोले श्रीराम—'करें हम श्रद्धा सहित ध्यान  
 बैठे कुछ क्षण हम ज्ञान-पुलिन की किनता पर  
 देखें आम्ह्या की आँखों में आनन्द-लहर  
 श्रद्धा से करें प्रवेश प्रयाग-सरित-जट में  
 हो जाता चित्त विगुद्ध मिद्ध तीर्थस्थल में !  
 मह तीर्थराज इमलिए कि पुण्य-प्रवाह यहाँ  
 मिलती है मन को आत्म-ज्ञान की राह यहाँ  
 जिसने भीतर में सगम का पहचान लिया,  
 निश्चय ही उसन भक्ति-भाव का जान लिया !  
 ऋषि-मुनियों की प्रिय भूमि सदा सद्भाव-भरी  
 सगम-मचेतन मन पर प्रेमाभा प्रिलरी  
 होना न प्रेम के बिना सत्य का प्रिय दर्शन  
 नभव न भक्ति से रहित प्रेम का ज्योति मिलन !'

पहुँचे श्रीराम स्नान-सूजा के बाद वहाँ,—  
 ऋषि भरद्वाज का आश्रम अनि विन्यात जहाँ  
 आने ही उस वानन में दिव्य मुग्ध मिगी  
 तीनों वन-यात्रा की आँख अब खिगी-गिली  
 ज्यों शरद-चन्द्र को देख, चकोर-नयन केन्द्रित,  
 लम्ब पथिके-कान्ति, आश्रमवासी मानन्द चरित :  
 'धरती पर दो-दो देव, एक देवी कर्मा ?  
 देखी न कर्मा भी दीक्षि मुन्दरला ऐसी !'

किन् महापुण्य ने आभा का अवतरण आज ?  
 कैसे भू पर पड गए ज्योतिमय चरण आज ?  
 सबको प्रणाम कर रहे स्वयं देवता अभी  
 हंस पडते विद्युत्-पुष्प-सदृश ये कभी-कभी ।  
 हे भरद्वाज ! इस आश्रम में नुर-शुभागमन  
 नयनो में अटक गए उनके आलोक-वदन  
 कथनीय नहीं है रूप-कथा हे ऋषि-प्रधान ।  
 आ रहा, आ रहा उनका ही इस समय ध्यान  
 यह उचित कि उनके स्वागत में हम चले उधर  
 देखिए,—देखिए व तीनों आ रहे इधर  
 कितना मनमोहक है उनका तापसी वग  
 लग रहे जटा के जैसे उनके शीर्ष-वग ।  
 साक्षात् महालक्ष्मी-नी वह देवी सुन्दर  
 आती वह आगे किन्तु देवती मदा इतर  
 रखती न चरण वह देव-चरण के चिह्नो पर  
 उसकी मुखमणि पर धिरक रही आनन्द-रुहर ।  
 देखी न कही देखी न कभी ऐसी सुपमा  
 मानव-सुन्दरता में न उचित उसकी उपमा  
 हे, हे महर्षि ! अब स्वयम् देखिए—उन्हे आप  
 आप ही नमस्स नकने उनका देवी प्रताप ।"

साष्टांग दण्डवत् से ऋषिवर लब्धित पद भर  
 लोचन में तीनों पद्म-प्राण चित्रित सुन्दर  
 परिचय पाने ही अनुल दिव्यता आत्म-विदित  
 मन-ही-मन भरद्वाज का निर नानन्द नमित ।  
 तत्त्वोत्तर राम-उद्गमण का स्नेहित आलिंगन  
 उन महातपस्वी का प्रयाग में प्रेम-निलन  
 तत्क्षण वृष्टीर-प्राद्वण में आनन-दान उचित  
 वनवास-दण्ड से ऋषिगण महत्ता चकित-भुदित  
 बोले महर्षि—हे राम ! तुम्हारा त्याग अतुल्य,  
 इस समय नमस्स नकना न रहस्य मनुज-अकृत



हो सफ़र तुम्हारा निर्वासन, कामना यही  
 तुम से पवित्र हो पाप-ग्रस्त सत्रस्त मही  
 दशरथनन्दन ! तुम स्वयं विभासित महिमा से  
 तुम स्वयं विभूषित महाशक्ति की गरिमा से  
 तुम इस प्रयाग में आए महाप्रयाग लिए—  
 निकले हो वन में आलोकित अनुराग लिए !  
 तुम जहाँ वही सगम पुनीत, मैं जान रहा  
 हूँ राम ! तुम्हें यह भरद्वाज पहिचान रहा  
 साकार तीर्थ तुम ज्ञान-भक्ति-सत्कर्मों के  
 तुम स्वयम् मम हो विश्व-विवक्षित धर्मों के ।  
 मिल गया तपस्या-फल मुझको, प्रिय दर्शन से  
 वाणी पवित्र हो रही तुम्हारे वन्दन से  
 मनु की अति कठिन तपस्या के परिणाम तुम्हीं  
 इस धरती के आलोकपुरुष हे राम तुम्हो !  
 मानव मर्यादा के भविष्य-आदर्श तुम्हीं  
 विद्या-विवेक के विनयशील उत्कर्ष तुम्हीं  
 तुम भारत के गौरवमय चारित्रिक प्रकाश  
 हूँ राम ! तुम्हीं से सभव दानव का विनाश  
 वाणास्त्र तुम्हारा दिव्य, दिव्यतर लक्ष्य-दृष्टि  
 तुमसे ही सभव मानवता की नई सृष्टि  
 सगिनी तुम्हारी भू-वन्या, तुम गगनरूप  
 कौम-सिंहासन-त्यागी तुम तो विश्व-भूष  
 वनवासी ! तुम तो वही, जिने हम जान रहे,—  
 मानव के माध्यम से सब कुछ पहिचान रहे  
 नर हीनर भी तुम अविनश्वर हे रामचन्द्र,  
 मानव-शरीर में तुम ईश्वर हे रामचन्द्र !  
 जैसी जिसमें दृग-शक्ति, भक्ति कुछ बैसी ही  
 उत्पन्न हुई प्रभु-लीला-हित ही वैदेही  
 मानव ही मायम पुरपोत्तम-परिदर्शन का  
 आलोक-अवतरण ज्यो मन्थन-फल चिन्तन का ।  
 हे राम ! तुम्हो ने प्रथम ध्यान-आधार दिया  
 सुमने अपन को मानव में साकार किया

छिप कर भी छिपती नहीं तुम्हारी दिव्य कान्ति  
तुम जहाँ, वही पर आनन्दित सत्सग-शान्ति ।'

सुन आत्म-प्रशंसा ऋषि-मुख से, श्रीराम नमित  
मृग-पुत्री-सी सीता रह-रह कर कण-चकित  
पर, लक्ष्मण-नयनो में प्रनन्ता-मुग्धा विमल  
मोहक मुख ज्यो दोरित समीर में श्वेत कमल ।  
बोले श्रीराम 'महर्षि ! मुझे लज्जित न करें  
दशरथकुमार के उर में अपनी वृषा भरें  
द्वेष्टाशीप, पालन कर पाऊँ पितृवचन  
हो सफल हमारा हर प्रकार से बन जीवन  
दुर्गुण न देखते सत किमी के तन-मन का  
पारखी पवित्र हृदय ही होता सद्गुण का  
सता के हस-नयन चुनते केवल मोती  
सहृदयता सदा, सरल-निश्छल ही तो होती !  
आना था एक मुझी को लेकिन चले तीन  
मेरा मोती मन कितना अनुशासन-विहीन  
मेरे चलते ही रहा इन्हे भी बहुत कष्ट  
कर रहे स्नेहवश ही ये अपना समय नष्ट  
रहते ये राजभव-में तो, करते मुकर्म,—  
ये पालन करते वही मजग कर्तव्य-धर्म  
लेकिन ये भी जा रहे प्रेमवश सग-मग  
इस यात्रा में इनके चलते ही सुख-उमग  
वन-पथ पर मेरी प्राणमिनी साथ चली  
हे धर्मनिष्ठ मुनि ! कहिए क्या यह बात भली ?  
लगता कि मिला वनवास मात्र लक्ष्मण को ही  
चौदह वर्षों तक कष्ट अनुज-तन-मन को ही !  
जाऊँगा मैं वनवास-काल में जहाँ-जहाँ  
करना होगा अतिरिक्त कर्म अब मुझे वहाँ,—  
पर, कौन काम कर पाऊँगा, यह भान नहीं  
दण्डकारण्य के जन जीवन का ज्ञान नहीं

सुख मिलता यदि वेदेही भी कुछ कर पाती,—  
 कम से कम वन-वनिता का भी दुख हर पाती  
 सुकुमार वदन मे कठिन काम सभव कैसे ?  
 सह सकनी विहंगी क्रुद्ध सिंह का ख कैसे ?  
 जानकी-भाग्य से ही लक्ष्मण आगमन हुआ  
 लगता कि मात्र सुखमय ही वन का भ्रमण हुआ  
 काल की प्रेरणा अनायास ही होती है  
 कल्याण-शक्ति ही पर हित दुख को डोती है ।  
 दें आशीर्वाद महर्षि । कि यात्रा पूरी हो  
 सत्-शिव-सुन्दर मे नही तथ्यगत् दूरी हो  
 प्रिय भरन रहे मव विधि प्रसन्न निज जीवन मे  
 प्रतिविम्बित हो वह मेरे मन के दर्पण मे ।'

—राम के वचन को सुनकर भरद्वाज हर्षित  
 चित्त की मरलता देख, चित्रमय नयन नमित  
 श्रद्धेय अतिथियो का आश्रम-आहार-ग्रहण  
 प्रिय पर्णकुटी मे घरती पर ही रात्रि-शयन !

लक्ष्मण प्रहरी-से खडे कुटी के द्वार-निकट  
 फँगा-फँला-सा उनके ऊपर विस्तृत वट  
 आश्रमवासी भी चकित विलोक बडा पहरा  
 तरु के समान व्यक्तित्व रात भर रहा खडा !  
 यह जान कि प्राण ही होगा श्रीराम-भगन,  
 पट्टेचे कुटिया के निकट सिद्ध, मुनि, तपसी-गण  
 चलने को प्रस्तुत हुए राम, आज्ञा लेकर  
 इम विदा-काल मे द्रवित-द्रवित कुछ ऋषि-अन्तर  
 तीतो वनवासी ने ऋषि-गण का किया स्पर्श  
 अब भरद्वाज से रामचन्द्र का पथ-विमर्श :  
 'हे मुनिवर ! आगे बौन स्यान, हम रक् जहाँ —  
 कुछ दिन अधिवास करे, ऐसी वह जगह वहाँ ?'  
 ऋषि भरद्वाज ने चित्रकूट का लिया नाम  
 बोले कि 'पवित्र तपोवन वह अनिश्चय ललाम

हे राम ! प्रकृति की छवि वैसी है नहीं यहाँ  
 रहते हैं परम तपस्वी अत्रि महर्षि वहाँ  
 अब इस प्रयाग के बाद मिलेंगे विविध भ्राम  
 खेतों में दीख पड़ेंगे करते कृपक काम  
 ललनाएँ तृप्त करेंगी पथ में लोचन को  
 दर्शन से धन्य करेंगे सब निज जीवन को ।  
 जाएँगे नाथ तुम्हारे, कुछ नापस कुमार  
 ये चिन्नकूट जाते रहते हैं बार-बार  
 ये सब प्रकार से कर मकने मुबिधा प्रदान  
 बतला दोगे ये तुम्हें विमल व ल्मीदि-न्यान ।”

आज्ञा लेकर अपने पथ पर चल पड़े सभी  
 यमुना की धारा पथिकों से हैं दूर अभी  
 सीतापति ने तापस कुमार को लौटाया  
 गुह इसी समय दौड़ता हुआ सम्मुख आया  
 झुक कर बोला ‘हे प्रभु ! यह अगूठी किसकी ?  
 निज लाल चबू से उठा रही थी इसे शुकी  
 लगता कि आपकी ही है यह, स्वीकार करें  
 अगुलि से निकली हुई मुद्रिका आप धरें ।’  
 गुह को विलोक कर एक बार हैंस पड़े राम  
 हो गया स्मरण गंगा-तट का वह निशि-विराम  
 हैंस पड़ी जानकी राम-मुद्रिका को निहार  
 देखने लगी वह उसे दूर से बार-बार  
 बोले श्रीराम—‘निपादराज ! क्यों कष्ट किया ?—  
 परिणय का यह स्मृति-चिह्न मुझे फिर मौप दिया  
 आभारी हैं हम सभी, यहाँ से लौटो अब  
 वदते प्रसन्नता पूर्वक अब आगे हम सब’  
 पर, गुह ने किया निवेदन—‘वन तक जाने दें  
 इस सेवक को भी सेवा-रत्न उठाने दें  
 उस दिन अनुमति न मिली लेकिन अब कृपा करें  
 अपनी प्रसन्नता मेरे उर में आज भरें’

ममज्ञाया रघुवर ने परन्तु गुह क्यों माने ?  
 शिगू के समान वह लगा पथ में अकुलाने  
 चरते-चलते कालिन्दी का तट दीख पड़ा  
 उस पार मधन उपवन किसलय से हरा-भरा  
 यमुना की नीची धार वायु से उद्वेलित  
 पीपल के नीचे वेदेही अत्यन्त मुदित  
 जठ की प्रिय नीगभा पनि-मुन्व-भी कान्तिमयी  
 डम तट से उस नट नक की मुपमा शान्तिमयी !  
 गुह ने दौड़ते दृष्टि किन्तु नाविक न वहाँ  
 हँसिया लेकर वह चला उधर, वन-श्रेणु जहाँ  
 बैठे न रहे लडमण, वे भी चल पड़े सग  
 देखी सीतापति ने दोनों की उग-उमग  
 केवट ने बना लिया झटपट सुन्दर बेंडा  
 लहरो ने बीच धार में नयनों को धेरा  
 जठ को छूकर सीता ने मरित-प्रणाम किया  
 मन-ही-मन भक्ति-सहित सुरगण का नाम दिया  
 उस बेंडे से ही लौटा गुह इच्छा-विहीन  
 उसकी दयनीय दशा जैसे अलहीन मीन  
 तीनों यात्री चल पड़े उधर, पर गुह उदाम  
 वह बैठ गया रोने-रोते तटवृक्ष-पास  
 'निर्मोही मेरे राम छोड़ कर चले गए,—  
 गंगा-यमुना में प्रीति जोड़ कर चले गए  
 चर रे मन ! उनकी मुधि नयनों में घिरी-घिरी  
 उर के प्रवाह पर प्रेम-नरी तो निरी तिरी !'

धन-पुष्प-रता को देख, नयन भी हरिन-हृदि  
 फूटो के नाम जान कर मीना मुदित-मुदित  
 'यह कौन मुमन ? वह कौन कुमुम ? वह कौन फूट ?  
 उड़ रही पवन में भिम प्रमून की सुरभि-धूट ?  
 यह तरु कंसा ! वे पादप-वृक्ष-विटप कंसे !  
 ये लता-जाल रेणमी मयूग्पल-जंमे

भागी वह हिरनी उधर, इधर वह नीलगाय  
 बटवृक्ष वहाँ का है किनना मुविद्यालकाय ।  
 कितनी सुन्दर वह विहगपक्ति उडती-मुडती  
 उस झाड़ी पर काली-पीली तितली उडती  
 देखिए तनिक उस उल्लू को, उस डाली पर  
 कानो मे अमृत डालता अब कोयल का स्वर ।"

पग-पग पर सीता प्रश्न, राम का प्रिय उत्तर  
 वासन्ती शोभा देख-देख कर कठ मुग्धर  
 वाणी-विहीन लोचन मे चित्रित वन-मुपमा  
 उत्फुल्ल दृष्टि टूटती स्वयम् समुचित उपमा ।  
 वन-पथ पर कही-कही छिटपुट दयनीय ग्राम  
 कुछ पर्णकुटीरो को निहार कर मौन राम  
 क्यों फटे-चिटे लत्ते किसान के तन पर हैं ?  
 अति करण उदासी व्याप्त जानकी-मन पर है ।  
 निर्वासित लक्ष्मी के नयनो मे मौन नीर  
 पीड़ित जन मन को देख, दुखी कोमल शरीर  
 आगे बढ़ने पर मिला एक मम्पत्र गाँव  
 कितनी लुभावनी लगती है तर-हरित छाँट  
 रक्त जाते नारी-चरण, देख कर पथिक-वदन  
 लख निरुपम स्मरणाधि को, चकित-चकित चित्तवन  
 'हैं कौन देव-देवी मखि । ये जा रहे कहां ?  
 रक्त मन्ते हैं ये नहीं तनिक क्या आज यहाँ ?  
 अनुपम आवृति, अनुपम शोभा, अनुपम है तन  
 क्या अपनाने जा रह कष्टमय वन-जीवन ?  
 स्वर्ग के देवता इधर किसलिए आए हैं ?  
 कुछ और निवट चल सखि । लोचन अबुलाए हैं ।  
 मणि के समान मुख-वान्नि फूट-मी खिरी हुई  
 सुन्दरता अपनी चरम शक्ति मे मिली हुई  
 वे लम्बे-लम्बे नयन अमृत वरमाते-से  
 वे कोमल-कोमल होठ मदा मुक्ताते-मे ।

सखि ! इनके चरणों को छूकर ही कर प्रणाम  
 पूछ तो पद्मवदनी से परिचय-महित नाम  
 वे निकल गए आगे, चल उधर घेर मग को  
 छूना ही है हे वहन ! आज इनके पग को !'

मन की अदम्य इच्छा होती निष्पल न कभी  
 निष्पल होता नयना का पावन जल न कभी  
 रुक गई जानकी युवती की जिज्ञासा से  
 वह लजा गई उसकी रस-भीगी भाषा से !  
 दे रही प्रश्न का लज्जित उत्तर बंदेही  
 'ये शुभ्रवदन लक्ष्मण मेरे देवर स्नेही  
 वे मेरे अपने ' इतना ही वह बोल सकी  
 भौंहों की भाषा ही रहस्य को खोल सकी !  
 इतने में नर-नारी-समूह से घिरे राम  
 ग्रामीण-प्रीतिवश ही कुछ पीछे फिरे राम  
 बूढ़ो ने लक्ष्मण से वन-कारण जान लिया,—  
 फल-फूलों से सब ने उनका सम्मान किया  
 पाकर के नीचे श्रद्धामय सत्कार यहाँ  
 लगता कि आज कोई पवित्र त्योहार यहाँ  
 प्रेम के सामने हो जाते बन्धन ढीले—  
 हो जाते किसके प्राण नहीं रस से गीले !  
 वनवासी तीन परन्तु पूर्ण घट तीस-तीस  
 तीन ही नहीं, कंले के पत्ते बीम-बीम  
 देवता एक के नहीं, सभी के प्यारे हैं  
 ये श्याम-गौर सबकी आँखों के तारे हैं  
 गीतों की वर्षा हुई प्रीति के ही कारण  
 रसमय शब्दों का सरस-सरस अब उच्चारण  
 सोचने लगे लक्ष्मण कि अरे, यह सत्र क्या-क्या  
 देखने लगी उल्लसित नृत्य अब राम-प्रिया !  
 जन-मन में बेवज्र हृदय नहीं, स्नेहित दुःख भी,  
 दुःख की तरंग पर मधुर-मधुर दर्शन-मुख भी !

कैसे हैं इनके पिता कि वन में भेज रहे  
 निर्दय नृप को समझा कर बातें कौन कहे ?  
 कैसे इनकी माता कि पुत्र को छोड़ दिया,—  
 निज पुत्रवध न कैसे नाता को तोड़ लिया  
 खिलते फूलों को बांधी न झबझोर दिया  
 कोमलता को किमन चुपचाप मगोड़ दिया ?  
 मञ्जनना इतनी सहनशील क्या होती है ?  
 सहृदयता की आँखें करपा ही टोनी है !  
 नृप के कारण ही किन्तु निगन इनमें ममब !  
 प्रिय दर्शन का आत्मिक आनन्द आज अभिनव !  
 स्नेह के जाल से स्वयं निकट कर चले नहीं  
 भूलेंगे कैसे प्राण गाँव की प्रीति कभी  
 'लक्ष्मण ! अरण्य अब सघन, गरजता निह एक  
 चिध्घाड रहे हैं एक माघ हाथी अनेक  
 है चमक रहा बालुका-टेर, क्या नदी वहाँ ?  
 उस तालवृक्ष के आगे कोई पथ कहाँ ?  
 फुँफकार रहा है भयं, जानकी ! सावधान !  
 हृन्धु ! बाण पर रहे तुम्हारा सदा ध्यान  
 कितने सुन्दर ये नीलबुमुम, ये फूल लाल  
 किम व्याघ्र का उस तर के नीचे पड़ा जाऊ ?  
 उस आम्रवृक्ष में अनगिन हरित टिकोटे हैं  
 देखो इन मृगगावक को, कितने भोले हैं !'

इस तरह राम ने सरि-वन-पथ को पार किया  
 गाँवों ने जहाँ-तहाँ उनका मत्कार किया  
 वानप्रितीन चर को मात्स्यिक आनन्द मिला  
 श्वासों को खिलते फूलों का मगरन्द भिजा !  
 मृदुले ! ये भृग तो पोसे-पाटे लगते हैं—  
 निर्भय होकर ही पथ पर बहुत उछलते हैं  
 देखो मयूर को, झुण्ड बाँध कर आए हैं  
 अममय बादलदल क्या अम्बर में छाए हैं



देखो तो उस उजले कपोत की जोड़ी को  
 देखो उन चंचल चिड़ियों की शकशोरी को !  
 कितना प्रकाश उम कपि-मुख पर ? देखो, लक्ष्मण !  
 क्यों उसे देख कर आनन्दित मेरे लोचन ?  
 वह कहाँ गया ? देखते-देखते लुप्त देह !  
 क्यों उमड़ रहा उमके प्रति मूझसे महज स्नेह ?  
 देखो, आ रहा इधर ही कोई ऋषिकुमार  
 मुनि भरद्वाज का स्मरण हो रहा वार-वार  
 हे तरुण तपस्वी ! आगे किम ऋषि का आश्रम ?  
 इस सघन विपिन में कहीं न किंचिन् भय-विभ्रम  
 लहराता हवन-पवन, गुजिन-मा वेद-भद्र  
 इम कानन में आभासित किनका योग-तन्त्र  
 क्या कहा ? महामुनि वाल्मीकि की भूमि यही ?  
 वैदेही ! लक्ष्मण ! तब तो यह अति पूज्य मही  
 मन्तव्य पर घूलि लगा कर हम भू-नमन करें  
 हम इस श्रुति-वन में धीरे-धीरे भ्रमण करें  
 मत करो स्पर्श मेरे पग को हे साधु तरुण !  
 है दिव्य तुम्हारा रूप स्वतः ही आत्म-अग्ण  
 चल पड़े कहाँ ? लक्ष्मण ! यह भी हो गया सुप्त  
 लगता कि पुण्य-कानन में कोई शक्ति गुप्त !  
 क्यों घेर रहा है पवन ? पुनः कपि की स्मृति क्यों ?  
 मेरे मन में आनन्द-शोक की जगृति क्यों ?  
 लगता कि किसी पवि का रम-वाक्य मुना मने  
 लगता कि शब्द-पूत्रों को स्वयम् चुना मने !  
 देखो, उस डाली पर एकाकी त्रौच विहग  
 उसके डंनों पर रवि-किरणें जगमगजगमग  
 अब चलें वग्धु, उस ओर जिधर हरिणी जानी  
 ऋषि-दर्शन-हित अब मेरी आँखें अकुशली  
 रमणीक विपिन में त्रिपरी-भी मन की वाणी  
 लगते हैं लम्बे-लम्बे तर जानी-ध्यानी  
 पत्ते-पत्ते में ध्वनि, डालों में उद्वेलन  
 कल्पना-वृन्त पर सिले-गिले-से शब्द-मुमन !

वहता है सारस्वत समीर ऋषि-कानन मे  
 उज्ज्वलता का आस्वाद आज इस आंगन मे  
 अपने सपने को देख रहा हूँ मैं इस क्षण  
 इस वाल्मीकि-वन मे रमता-सा मेरा मन  
 प्रासाद-त्याग का हृषं आज साकार यहाँ  
 उठती है मेरे प्राणो मे झकार यहाँ  
 हे तपोभूमि ! मैं राम तुम्हे करता प्रणाम  
 दो आशीर्वाद मुझे कि पूर्ण हो विपिन-काम !  
 इस योग्य बनूँ कि तुम्हारा स्नेह मिले शीतल  
 अर्पित कर दूँ अपने प्राणो का आत्मोत्पल  
 साधनाभूमि ! स्वीकार करो शत नमस्कार  
 खोलो महर्षि ! मेरे-हित अपना हृदय द्वार !"

आश्रम-शोभा को देख, राम-दृग आनन्दित  
 मन के उमडे-से शब्द स्वयम् मन मे छन्दित  
 रस ही रस का आभास प्रकृति-सुन्दरता मे  
 ईश्वरता ओतप्रोत सृष्टि-नश्वरता मे !  
 पगडण्डी पर प्रेरणा-चरण का शुभागमन  
 आराध्य रूप का ऋषि-पथ पर प्रातिभ विचरण  
 कल्पना-चक्षु मे प्रथम मूर्त्त आघार एक  
 आ रहा चमकता-सा अभीष्ट उद्गार एक !

—देखा सुदूर से वाल्मीकि ने सपने को  
 आँखो ने स्वयं सम्हाला क्षण भर अपने को  
 स्वप्न से नहा, सत्य से दृष्टि सतृप्त हुई  
 कामना आत्म-दर्शन मे सहभा चिप्त हुई !  
 शिष्यो से सुन कर राम-नाम, वाल्मीकि मुदित  
 तीनों प्रकाश को देख, साधना नयन नमित  
 आते ही सवने किया महामुनि चरणम्पशं  
 प्राणो मे व्याप्त परस्पर पावन हरित हृषं !  
 अभ्यागत-सेवा मे आश्रमवामी तत्पर  
 वनवास-वेद्य से सब के मन मे प्रश्न-लहर

विस्तृत चर्चा से वाल्मीकि को तथ्य ज्ञात  
 सुनते-सुनते प्रिय राम-कथा, कट गई रात !  
 चन्द्रमा इधर से उधर हो गया अम्बर मे  
 राम ने प्रवेश किया माहित्यिक अन्तर मे  
 सारस्वत ऋषि ने स्पर्श किया बालोक चरण  
 जगमगा उठा चुपचाप सत्य-सकल्पित मन  
 वह कविर्मनीषी आदिकाव्य-कल्पना-मजग  
 अग्रिम प्रकाश से सृजन-शक्ति सहमा जगमग  
 'हे राम ! तुम्हारी आत्मकथा जीवन-दर्शन  
 अधमाधम मानव भी सुनकर होगा पावन  
 आँसू से अति क्लुपित मन भी होगा पवित्र  
 अक्षित होगा दूषित उर पर भी राम-चित्र  
 प्रिय चरित-ज्योति से मानस की चेतना विमल  
 खिल सकना है रामायण से आनन्द-कमल ।  
 हे पुरुषोत्तम ! तुम करो विपिन-लीला समाप्त  
 होगी अगजग मे निश्चय उज्ज्वल कीर्ति व्याप्त  
 आगे की यात्रा-कथा जान ही लूँगा मैं  
 प्राणो की विजयी व्यथा जान ही लूँगा मैं  
 तुम-सा आदर्श-पुरुष नू पर अवतरित नहीं  
 तुम-सा कोई भी व्यक्ति धर्म-आचरित नहीं  
 हे आभा-रत प्रभु ! भारत मे आदर्श भरो  
 अपनी मानवता से दानवता दूर करो !  
 वाल्मीकि दूरदर्शी, देखना तुम्हारी गति  
 तुममे ही समव मानव-जीवन मे सग्यति  
 अनुकरण तुम्हारा निश्चय ही मग-उदायक  
 ऋषि-नमस्वार अग्रिम अपित हे नर-नायक !  
 हे महाकाव्य के चरित-शिखर ! हे शशिसेखर !  
 पूजते तुम्हे हे हरि ! प्रतिपल आन्वोक्षित हर  
 हे राम ! तुम्हारा शिव-सुन्दर वनवाम-रूप  
 कितना भगलकारी कि, नहीं तुम बने भूप  
 राजा की सीमा मे न रहे तुम महाजायं,  
 होना है तुमसे तत्त्व-सतुलित महत्-नायं

इसलिए तुम्हारे साथ जनकतनया, लक्ष्मण  
जाओ हे वनवासी ! सहपं तुम दण्डकवन  
चाहो तो कुछ दिन मेरे निवट निवाम करो  
है चित्रकूट सामने, वहा पर वास करो  
दीखती यही से पर्वत की ऊंची चोटी  
शोभाशाली वह तपस्थली न तनिक खोटी  
हे राम ! चित्त-सा चित्रकूट रमणीय अतुल  
है चारो ओर वहाँ हरिताभ मुगिरि-सकुल  
बहती रहती हर ऋतु में मन्दाकिनी-घार  
अपनाओ उस आनन्दभूमि को एक वार !

ऋषि-कवि के मम्ममुख रघुबुल-रवि शका-लज्जित  
वनवास-रहम्य महासाधक को स्वयं विदित  
कवि तो त्रिकाशदर्शी, कल्पना-चितेरा वह  
चर-अचर भाव में करता मुखर बसेरा वह !  
बोले सविनय श्रीराम 'महर्षि ! आप जानी,  
आपका प्रणम्य प्रकाश विश्व-हित वरदानी  
मैं नो सामान्य लोकमत का अनुगामी हूँ  
लक्ष्मण का भाई, वैदेही का स्वामी हूँ  
दशरथनन्दन पर कृपा आपकी बनी रहे  
आशीष-अरुणिमा मृति-वितान-सी तनी रहे  
आपकी शब्द-इच्छा के योग्य बने जीवन  
सर्वदा प्रसन्न रहे मुझसे जन साधारण  
अपने को अर्पित कर दूँ मानवता-पथ पर  
हो नहीं प्रतीत कभी मुझको यात्रा दुस्तर  
वनवासी भाई को न कभी भूले भाई  
अक्षुण्ण रहे वन्धत्व-प्रेम की परछाई  
इस तपोभूमि में स्नेह-सुखद आनन्द मिला  
लगता कि कल्पना को जय-ज्योतिर छन्द मिला  
मर्यादा की सात्विक सुगन्ध उठ रही यहाँ  
लगता कि वही पर राम, महावाल्मीकि जहाँ !

इच्छानुमार ही चित्रकूट में जाऊंगा  
 बंदेही को वह चित्त-भूमि दिखलाऊंगा  
 दें अगीर्वाद यही कि हृदय में वास करूँ  
 जीवन में जीवन-हित जीवन्त प्रकाश भरूँ  
 इस योग्य बनूँ कि मिले जन-मन का मुझे प्यार  
 आए न कभी भी मुझमें कोई अहंकार  
 जनगण-मन के सन्निकट सर्वदा रहूँ राम  
 मानव-कल्याण-हेतु हर दुःख को सहे राम

आगे प्रसन्न हो गईं देखकर चित्रकूट  
 प्रिय प्रकृति-भाधुरी को दृग-च्युति ने लिया सूट  
 गुम्फिन पर्वतमाला पर हरितानन्द व्याप्त  
 कामदगिरि को फल-फूल-भरा सौन्दर्य प्राप्त !  
 है अमृत-सलिल में भरी-भरी प्रिय मान्यवती—  
 मन की थकान हरनेवाली यह पुण्य-नदी  
 अर्द्धाङ्गिनि ! यह उर-धारा सुरसरि-सम प्रणम्य  
 है गिरि विवेक-प्रहरी, मन्दाकिनि हृदय-रम्य !  
 तट भक्ति-भाव, विश्वास-विटप हर ओर खड़े  
 इम तपस्थली के सभी भाग हैं हरे-भरे  
 विचरित इच्छा-पगडण्डी पर मन-मृग निर्भय  
 है चित्रकूट निर्मल निसर्ग का कुज-निजय !  
 कामदगिरि से उर की आशा देखती गगन  
 फैले हैं चारों ओर सुगन्धित प्राण-सुमन  
 आनन्द-शृङ्गा-सा गूँज रहा पक्षी-कलरव  
 विजरा है इस भावना-भूमि पर वन-वैभव  
 सरना पर्वत के मुख से अविरल जलप्रपात  
 जल-धूम्र कि जैसे कुहाच्छन्न चाँदनी रात  
 कदकल निरंतर-तट पर किरात की वशी-धुन  
 हो उठते कर्ण प्रफुल्ल मंत्र-गीतों को मुन !  
 लक्ष्मण ! उस नदी-तीर सर ही हम करे कल्प  
 उस उच्च भूमि पर नित्य मिलेगा रवि-प्रकाश

हैं भुकी फूल-फूट से तर-उना विनय-जैसी  
उडती मुन्दर चिटिया देखो, कंसी-कंसी !  
देखो तो कितने नीलकमल हैं खिले हुए  
वे दोनो लाल मरोज परम्पर मिल हुए  
उस पद्मपत्र पर बैठ, विहग पीता पानी  
मकरन्द-कोष पर गूँज रही मधुकर-वाणी !

इस ओर बनाते सुन्दर पणकुटी लक्ष्मण,  
उस ओर बहुत मूना-मूना अब राजभवन  
गंगा-तट से अति दुखी सुमन्त चले जब से,  
चिन्ता ही चिन्ता घिरी विकृष्ट मन मे तब से !  
रथ अश्व न आग बटे, मुँह व फिर पीछे  
आए सुमन्त फिर उसी जगह, तरु के नीचे  
घोड़ों ने चरना छोड़ दिया अब हरित घास  
मानो वे भी रोते मुमन्त के आम-पास !  
गुह के वापस आन पर भीर अमह्य व्यया,—  
सुन कर बनवासी रामचन्द्र की मरणि-कथा  
बोला निपादपति—हे मुमन्त ! अब धैर्य धरो,—  
मन्त्री-पद के अनुकूल राज्य के कार्य करो  
दुख की दारण स्थिति मे सदैव गभीर बनो  
सकट की कठिन घड़ी मे अविकल वीर बनो  
दायित्व सम्हालो सचिव ! बनो कर्त्तव्य-सजग  
साहसपूर्वक तुम करो पार अब अपना मग  
सबको शीतल सान्त्वना तुम्हे ही देनी है  
सत्रास-काल मे माहम-तरणी खेनी है  
दो रात रुक गए तुम ! यह तो अच्छा न किया  
अपने दुख के चलते बहुतो को कष्ट दिया !  
भूपति की दृष्टि तुम्हारी ओर लगी होगी  
दुख के कारण सब आँखें जगी-जगी होगी  
कष्टो पर कष्ट न दो, जीतो दुस्सह दुख को  
सबके नयनों मे भरो प्रबल आशा-सुख को

समझाओ माता को कि राम फिर आएँगे,—  
 दुख के दुस्सह दिन निश्चय ही टल आएँगे  
 दाहम दो परिजन, पुरजन, जन-मन को सुमन्त  
 आएगा ही कोमल मे फिर सुखमय वसन्त ।  
 हे राम-भक्त ! चतुराई से तुम करो काम  
 जनमानस के सिंहासन से क्या दूर राम ?  
 श्रीरामचन्द्र तो सबके उर के अधिवासी  
 उनकी सुधि की आनन्द-ज्योति है अविनाशी ।  
 अब चलो, स्वयं चलता हूँ मैं भी सग-सग  
 बाँधों अपने रथ मे अब जल्दी ही तुरग  
 राम के कार्य मे किञ्चित् बभी विलम्ब न हो,—  
 दुख-विजय प्राप्त कर मन में कोई दम्भ न हो ।  
 दुख-सुख मे जो कर्तव्य-सजग, वह राम-भक्त  
 छोड़े न कभी मर्यादा-मग, वह राम-भक्त  
 जो रहे सदा सत-पथ पर पग, वह राम-भक्त  
 जो करे जगन-कन्याण सुभग, वह राम-भक्त ।  
 ज्ञानी सुमन्त ! अत्र सत्वर अवध-प्रयाण करो,—  
 गभीर-धीर भगवान राम का ध्यान करो  
 होगे अधीर दशरथ के नयन प्रतीक्षा मे  
 घबराओ मन हे मन्त्रि ! विपत्ति-परीक्षा मे ।  
 उपदेश नहीं यह, मेरे मन की बात एक  
 देता विपत्ति मे सदा साथ केवल विवेक  
 अति भावुकता से ढीला हो जाता शासन  
 अतिशय बठोरता से भी असफल संचालन  
 इस समय अयोध्या मे छाया है शोक-तिमिर  
 सूना होगा शोकाकुल जन-मन का मन्दिर  
 इसलिए शीघ्र—अनि शीघ्र अभी प्रस्थान करो  
 ध्यानी सुमन्त ! दुख-सागर का अनुमान करो  
 शामन-जलदान नहीं पूवे, यह ध्यान रहे  
 चेतना-शक्ति से भिन्न न कोई प्राण रहे  
 दुख के कारण दुख से तुम दूर नहीं भागो  
 जाओ सुमन्त ! निज चम-धम-हित तुम आलो !

जागो कि शोक-नागर में ज्वार नहीं आए  
जागो कि विरह में विषद-भटा न दही छाए  
जागो कि जागना घमं तुम्हारा है नुमन्त,  
जागो कि जागरण स्वयं नहारा है नुमन्त !  
हे प्रकृति वनन्त-भरी पर, मन-वन में पतझर  
राम के बिना सूनी होगी अब नगर-दुगर  
उन कालचक्र के आग किन्का चलता बन ?  
विश्व में न केवल सुख का रस, दुख का भी रस !

दुख-अन्धकार में दीप-ज्योति-ना स्वजन-वचन  
माहन भरती पीडित प्राणों में घंघं-विरण  
जागा नुमन्त का विरह-वेदना-अलमिन्त मन,—  
ज्यो जल-फुहार से खुत्ते मूर्च्छित भीन-नयन  
वहनी गंगा को देख, स्मरण उन नरयू का  
आ गया ध्यान निष्प्राण अयोध्या के भू का  
रोते नुमन्त गुह की छाती से लिपट गए  
दो क्षण दोनों के प्राण, प्राण में चिपक गए !  
हिनहिना उठे घोड़े सहसा पानी पीकर  
बृछ ही क्षण में रथ के चक्के घपंर-घपंर  
चलते-चलते तमसा के तट पर गुह-विछोह  
फिर आँखें मजल-सजल, फिर मन में बाह-जोह !  
इन ओर नुमन्त और उस ओर निपादराज  
दो राम-भक्त के उर में विरह-विषाद आज  
अब दोनों ओर राम का ही रमणीय स्मरण  
चलते-चलते चिन्तन, चलते-चलते रोदन !  
आते-आते रथ रका अयोध्या-भीमा पर  
हो गए सामने खटे बनेको नारी-नर  
‘पी वहाँ,—पी वहाँ’ के समान ही ‘राम वहाँ ?—  
नयनों के प्यारे श्यामल ललित ललाम वहाँ ?  
हे हे नुमन्त ! हैं राम वहाँ ? हैं राम वहाँ ?  
मोसलकुमार—दशरथनन्दन अभिराम वहाँ ?



हैं राम कहां ? हैं राम कहां ? हैं राम कहां ?  
हैं चले गए किस ओर हृदय के धाम कहां ?

रथ इधर रुका, रथ उधर रुका, रथ रुका-रुका  
निर्वाक मीन मत्तों का मस्तक झुका, झुका  
इस ओर भीड़, उस ओर भीड़, हर ओर भीड़  
दृग-नीर इधर, दृग-नीर उधर, हर ओर नीर !  
कछमछ-कछमछ आकुल-व्याकुल-आकुल शरीर  
भीड़ ही भीड़, नीर ही नीर, वस नीर भीड़  
फिर फफक-पफक कर रोने लगे मुमन्त अभी  
मूर्च्छित हो जाता व्यथा-विकृत मन कभी-कभी !  
पथ-पथ पर शब्द प्रवाह राम लौटे न हाय,—  
चौदह वर्षों तक क्या उपाय—अब क्या उपाय ?—  
जानकी और लक्ष्मण भी चले गए वन में  
आशाएँ अस्त, निराशा उदित नमित मन में !  
विजली-भा फँल गया दुःखमय यह समाचार  
दिन में ही चारों ओर व्यथा का अधकार  
है अधकार पर अधकार ही अधकार  
अब अन्त पुर को असह-असह सुधि-शोक-भार !  
सम्राट् सन्न, सम्राट् सन्न, सम्राट् सन्न  
निर्वाक मुमन्त-कवन सुन कर तन-मन विपन्न  
दुःख-दन्तित हृदय में आहि-नाहि, अन्तिम कराह  
दशरथ का अन्तिम प्राण-व्यथा-मागर अथाह !  
नि शब्द मुमन्त खड़े, रानियाँ विकृत, चिन्तित  
बौमन्या के प्राणों की दीपशिखा कम्पित  
झोंके पर झोंके उठा रही अब मृत्यु-त्रायु  
उड़ने को व्यथित विहग-सी आकुल जीर्ण आयु !  
सम्हला न सम्हाले पुत्र-विरह-पीडित शरीर  
अब रोम-रोम में व्याप्त विछोह-विपन्न पीर  
बौमन्या और मुमित्रा का सवरण ढाढस  
सान्त्वना-मरण पर साहस का अब दुस्साहस !

सन्ध्या का सूरज उधर अस्त सरयू-जल पर,  
 इस राजभवन में इधर शोक-सतपन लहर  
 हे राम राम ! हे राम, राम ! हे राम, राम !—  
 कहते-कहते ही त्यागा नृप ने घराघाम !  
 हे राम !—यही अन्तिम पुकार—अन्तिम पुकार  
 कहते-कहते सनझना उठे निश्चान-तार  
 हे राम !—यही आलोक-भद्र दशरथ-मुख में,—  
 वस, एक वही दृग के सम्मुख अन्तिम दुख में !  
 अन्तिम आंसू में राम-रूप वह लघु-विराट्  
 देख कर उठे, पीका-पीका ससार-हाट  
 अवतरण-काल में कौसल्या की जो अनुभव,  
 चलने की बेला दशरथ-दृग में वही प्रणव !  
 चँकी मुमन्त, चँकी रानी, चँकी परिजन  
 चिल्लाने लगा तुरन्त शोकमय राजभवन  
 रघुकुल का एक और सूरज हो गया अस्त  
 शोकित गृह-गृह, शोकित जन-मन, जन-पथ समस्त !  
 जो जहाँ, वहाँ वह स्तब्ध कि ऐसा व्यथाघात  
 निष्प्राण अयोध्या की यह कितनी करण रात  
 दारण घटना से पवन शान्त, आकाश शान्त  
 इतना दुखदाई कभी न इस भू पर दिनान्त !  
 स्वर्गीय पिता का पुत्र न कोई यहाँ आज !  
 —चिन्तित समाज, पीडित समाज, शोकित समाज  
 निर्वासित हैं दो पुत्र, प्रवासी दो मुद्दूर  
 है भाग्य-विधाता कितना आज कठोर-कर !  
 अब क्या होगा—अब क्या होगा ?—यही प्रश्न जटिल  
 इस अन्धकार में जिज्ञामित मन-बुद्धि निखिल  
 मृत पति की छाती पर कौमल्या मूर्च्छित-सी—  
 एक ही चिता पर जल जाने को इच्छित-सी !  
 अन्त-पुर में मिथु-ना विलाप, रोदन-गाथा  
 शोकिन गद्गो से व्यथा-ध्वनित व्याकुल माथा  
 इस ओर रदन, उन ओर रदन, हर ओर रदन  
 इतने रोते हैं पहली बार आज पुरजन !

केवल वनिष्ठ के अनामक, निःशोक नयन  
 स्मृति-शास्त्रा में सान्त्वना-हेतु उपदेश-चयन  
 है इवेन केय से घिरे हुए मुख पर प्रकाश  
 धीरे-धीरे ही शोक-ग्रहर का गति विनाश ।  
 वृत्गुरु-मुमन्त-वार्ता कि कौन अब प्रमुख काम ।  
 ऋषि ने सब-रक्षा-हेतु तेज का लिया नाम  
 मंगवाया लम्बा काष्ठ-पात्र प्रिय शव के हिन  
 यह वान विलखती विघवाशो को नहीं विदित ।  
 केवल कँकेयी दो क्षण-हेतु वहाँ आई  
 वह शव-ममक निश्चय ही क्षण भर अकुटाई  
 मन को मरोड़ कर चली गई फिर कँकेयी  
 दुःख में भी मुख से छली गई फिर कँकेयी ।  
 नृप चले गए दृच्छा-पथ में बाधा देकर  
 रुक गई भँवर में उत्कठा, नौका लेकर  
 करना है—अब क्या करना है—क्या करना है ?  
 दे गए वचन जत्र भूपति तो क्या डरना है ?  
 कट गई रात जैसे-तैसे अरिबल रोती  
 रह गई रात भर कौसल्या आँसू द्योती  
 प्रिय पुत्र नहीं, सुत-वधू नहीं, पति नहीं हाय !  
 हे ईश्वर ! इस अबला-हित भी कोई उपाय ?

मंत्री मुमन्त ने किया सभा का आयोजन  
 ऋषि, सचिव, कर्मचारी, अधिकारी-सम्मेलन  
 प्रात ही सभा-सदन में सभी उपस्थित हैं  
 अपने-अपने आसन पर ही सब शोकित हैं ।  
 इस वरुण-वरुण सन्नाटे में नत नयन सभी  
 केवल मुमन्त गुरु की आज्ञा में उठे अभी  
 अवरुद्ध कठ से प्रकट किया घटना-विवरण  
 वरुणा ही वरुणा व्याप्त हो रही है इस क्षण ।  
 फिर माहम से बोले मुमन्त 'यह कठिन घड़ी,  
 अत्यन्त शोक-मग्न अवघ में अथु-सही

सुनसान अयोध्या, सूने-सूने-सूने पथ  
 अवगत न किसी को दृस्सह दुख का अब इति-अथ  
 पर्वत-सी बोलिल महाशोक की सघन रात  
 अति दुखदायक रघुकुल का नूर्यविहीन प्रात  
 सम्राट् स्वर्ग में, राम और लक्ष्मण वन में  
 हैं नहीं भरत-यत्रुघ्न यहाँ इन दुख-क्षण में !  
 सत्रास—महा सत्रास—घोर सत्रास-काल  
 दुस्सह दुःख में है भुका राज्य का ध्वजा-भाल  
 स्थिति विकट-विकट—दयनीय, गोक-आशान्त आज  
 शोकान्धकार में देग, घर्म, शासन, समाज !  
 यह दशा अराजकता-आशका की निश्चय  
 निर्भयता मिटी-मिटी-भी, दिशि-दिशि भय ही भय !  
 घनघोर निराशा में आशा की झलक कहाँ ?  
 छा गया व्यथा का अन्धकार अब यहाँ-वहाँ !  
 शासक-विहीन शासन में न्याय कहाँ सभव ?  
 साक्षी समस्त इतिहास और श्रुतिगत् अनुभव  
 दुबल शासन में राज्य-व्यवस्था छिन्नभिन्न  
 विद्वासहीनता ही शासन का पतन-चिह्न !  
 दुबल शासन में उचित सुरक्षा-शक्ति नहीं—  
 जन-मन में पदाधिकारी के प्रति भक्ति नहीं  
 उच्छ्र खलता, खलता की चारों ओर वृद्धि  
 सभाव्य कुशासन में न कभी शुभ कार्य-सिद्धि !  
 मानता पितृआदेश न पुत्र कुशासन में—  
 सभाव्य शिथिलताएँ वैवाहिक बन्धन में  
 परिवार टूटने लगता कलह-कुटिलता से  
 वन जाता है गृह नरक विभेद-अटिलता से !  
 उत्पात, उपद्रव, द्रोह, कुशासन के कारण  
 हिंसा से स्नेह-बिछोह, कुशासन के कारण  
 होते ही रहते नूटपाट, रगड़े-झगड़े  
 मारे जाते हैं लोग अस्त्र से बड़े-बड़ !  
 ढीले शासन में गाँव जलाए जाते हैं—  
 नगरो में हिंसक व्यक्ति आग फैलाते हैं

नित चोर-डाकुओ की सख्या बढ़ती जाती  
 मनमानी इच्छाएँ ऊपर चढ़ती जाती  
 होने लगता है नारि-अपहरण जहाँ-तहाँ  
 होने लगना है शील-हरण भी यहाँ-वहाँ  
 शका ही शका बनी हुई रहती प्रति क्षण  
 अपने पर भी विश्वास नहीं करता है मन ।  
 होने लगती है नष्ट सभ्यता-संस्कृति भी  
 हो जाती है मदिरान्ध धीर की हु कृति भी  
 पौरुष चरित्र का हास कुशासन में होता  
 तम के सिंहासन पर केवल अधर्म सोता  
 कोई न किसी पर करता है विश्वास कभी  
 करते हैं एक दूसरे का उपहास सभी  
 व्यापक ईर्ष्या के कारण भीषण अनवन नित  
 कृत्रिम मिलाप से जोमल मन भी तो शक्ति ।  
 घन्धुत्व नष्ट, मैत्री विनष्ट, सम्बन्ध नष्ट  
 ढीलेढाले शासन में नित्य नवीन कष्ट  
 अपनी ही छाया से भय होने लगता है  
 क्लुपित समाज मगलता खोने लगता है  
 घट जाती जब दिशा-महिमा, बढ जाते बक  
 रह जाते हैंस उपेक्षित, कोई जब चकमक  
 कहलाते पंडित मूर्ख और मूर्ख पंडित  
 होते हैं साधु पुरुष दु शासन में दण्डित ।  
 सत्ता के दाएँ-बाएँ दुटिलो की जमघट  
 करते रहते है कपटी जहाँ-तहाँ लटपट  
 लम्पट लोगों की होती पूछ कुशासन में  
 लप्पोचप्पो की बात दमकनी चिन्तन में ।  
 ठगते हैं चाटुकार निज मीठी बोली से  
 मोहते हृदय का भूठे मित्र ठिठोली से  
 इस ओर पतन, उस ओर पतन, हर ओर पतन  
 दुख ही दुख देता रहता है दुर्बल शासन ।  
 बहने लगती उस्ती गंगा जीवन-गति की  
 होती पवित्रता नष्ट-भ्रष्ट मानव-भक्ति की

सद्गुण मे अवगुण करने लगता है दुराव  
 पय-पय मे कुत्त करते रहते जाँद-जाव !  
 गूँजती सियारो की लम्बी-ठम्बी बोली  
 चायकी से भरने हैं घूर्त सदा झोली  
 जो नवाने जिम पन्तल पर, करते वही छेद  
 घातो ही घातो म हा जाता है विभेद !  
 चुनते हैं घूर्त लोग ही प्रतिदिन कपट-जाल  
 छटना है सबको छल-प्रपच का छिपा व्याज  
 छिल जाता कोमठ हृदय कठोर निरादर से  
 आवे उदान हो जाती वृत्रिम आदर से !  
 मुख मे कुछ हो, मन मे कुछ हो तो बहुत कष्ट  
 होता अमत्य के कारण ही तो शील नष्ट  
 फँसती कुशासन की जब काली परछाई,  
 भाई का गला काटने लगता है भाई  
 दुख पाती साध्वी नारी, भुव कर्ती चपरा  
 वन जाती है भिक्षुणी कष्टभोगी अवला  
 भूने तन-मन से भूल-चूव होनी ही है  
 अकुलाई आँखें बहुत अधिक रोती ही हैं !  
 परिणाम भयकर होता मदा कुशासन का  
 आस्वाद बदल जाता है दूषित जीवन का  
 कामुकता से होनी न वृद्धि अच्छाई की  
 होती विलासिता से अभिवृद्धि बुराई की !  
 पर-निन्दा के कारण कटुता की वृद्धि सदा  
 कटुता के कारण ही मदेव रगडा-झगडा  
 छीना-झपटी की घटना से बढ़ती अशान्ति  
 भय के कारण उत्पन्न विश्व मे सदा भ्रान्ति  
 गिर जाता शिक्षा-स्तर, जब-जब दुर्बल शासन  
 घट जाती नैतिकता, असक्त जब अनुशासन  
 फँसती निरकुशाता की जब स्वच्छन्द लहर,  
 वामना-भ्रान्त होने लगती मभ्यता-दगर !  
 अत्याचारो से काँप-काँप उठनी घरनी  
 वृषिहीन घरा वन जाती है सूखी परती

पढता जब घोर अकार, तडप उठते किमान  
 कर मक्ते हैं क्या नहो विश्व मे क्षुधित प्राण ।  
 सब कौन छीन ले जत, वसन, धन, अलवार,—  
 उठते रहते चकर मन मे शक्ति विचार  
 उत्पात-काल मे उत्सव-यूजन-यव शिथिल  
 चिन्तन-धारा भी हो जाती प्रमाद-पकिल ।  
 नित बाधित यातायान ठप्प व्यापार-कायं  
 उन्मुक्त विचरने लगते है डाकू अनायं  
 ऋषियो को भी नित कष्ट, चिन्तनो को भी दुःख  
 तप-व्रत-आनन्द न प्राप्त, न आत्मिक कोई सुख ।  
 आग्नेय अराजकता से और विकृत शासन  
 आपस मे लड़-भिड़ कर कटते रहते जनगण  
 मच जाता हाहाकार, क्षीण होता विवेक  
 उठती रहती नित जटिल समस्याएँ अनेक  
 सकुचित बुद्धि मे भर जाते सकीर्ण भाव  
 कटु बातो से ही बढ जाता हिंसक दुराव  
 होती रहती हत्याएँ, बढनी मार-काट  
 निर्ममता से लूटे जाते बाजार-हाट ।  
 कोई भी सोता नही रात मे द्वार खोल,  
 चाहता नहो मुनना कोई निर्भीक बोल  
 बढ जाती है भीरता, वीरता घट जाती  
 वनिताएँ अत्याचारो से नित अकुशली  
 युवतियाँ मार्ग पर चलने मे घबराती हैं  
 परिणीताएँ भी भय-शक्ति हो जाती हैं  
 पनघट पर पानी भरने मे भी होता भय  
 दानवी शक्तियाँ करने लगती अनुभ विजय  
 हो जाते वन्द उपद्रव से विद्यालय भी  
 उत्पातो के कारण बाधित कार्यालय भी  
 धरते हैं वणिक् खाद्य-सामग्री को अशुद्ध  
 होते जन-मानस इसके कारण बहुत श्रुद्ध  
 घट जाता प्रेम, वासन बढनी जानी है  
 आनन्द-सुधा का म्यान सुरा अपनाती है

निर्मलता होती नष्ट, चपलता बट जाती  
 विपगधी फूलों पर तितली पर फँलाती  
 रखता है युवक गुप्त अन्वो को सदा साथ  
 सतुलित न रह पाते लोलुपता-विकल हाथ  
 रक्षक हो जाते भक्षक दूषित शासन में  
 छा जाती लोभ-अलिमा आरक्षी-मन में !  
 सस्याएँ बड़ जाती हैं कर लुटेरो की  
 होने लगती है वृद्धि शस्त्र के टेरों की  
 डाँटते हस को कौए, कोयल अकुलाती,—  
 जब दहृत अराजकता शामन में भर जाती !  
 अवगुण की होती पूछ, गुणों की निन्दाएँ  
 सत्कार्यों में आती रहती हैं बाधाएँ  
 संस्कृति को राजनीति बनवा लेती दासी  
 दूषित शासक होते अनौति के विश्वासी !  
 दुर्बल शासन पर शत्रु-दृष्टि पड़ जाती है,  
 देश में विदेशी शक्ति-ध्वजा गड़ जाती है  
 होता विभेद से ही स्वतंत्रता-हरण हाथ,  
 दासत्व-दीर्घता-हित रिपु नित करता उपाय !  
 परतंत्र-काल में रुक जाती चिन्तन-धारा  
 भयभीत भावना पर घिर जाता अंधियारा  
 होता स्वदेश-भाषा पर पर-भाषा-ग्रहार  
 कर देता है अवरुद्ध शत्रु नाहित्य-द्वार !  
 तन-मन-धन-चिन्तन पर जब पर-शासन-प्रभुत्व,—  
 हो जाता शक्ति-विहीन स्वदेशी स्वर-गुरुत्व  
 बन जाती है परतंत्र प्रजा घूँहे-विल्ली—  
 राष्ट्रीय चेतना की उड़ने लगती खिल्ली !  
 फँलता अराजकता से ध्वापक तम ही तम  
 होती है ऐसी हानि कि धुटने लगता दम  
 हो जाता सत्यानाश, स्वत्व झुक जाता है  
 परतंत्र देश रोगी-सा ही अकुलाता है !  
 चिड़ियों-सी चहक नहीं पाती चेतना मलिन  
 सूझता न शीयं-दिवाकर, केवल दर्शित दिन



धीरे-धीरे हो जाती नष्ट स्वदेश-कान्ति  
शासन जब-जब गतिहीन, तभी व्यापक अशान्ति !  
हे आदरणीय उपस्थित गुरुवर ! हे सज्जन !  
हे कौसल के शोकित समस्त अधिकारीगण !  
कुछ चित्र अराजकता के प्रस्तुत किए आज  
कहते-कहते मन-ही-मन थोड़ी लगी लाज  
पर, विपद-काल में स्पष्ट वान कहनी पडनी  
मयी को अनुभव-व्यया सदा सहनी पडती  
इस समय अयोध्या में छाया शोकान्धकार  
सम्राट् स्वर्गवासी, दुस्सह पीडा-प्रसार  
सिंहासन खाली है ! जल्दी कुछ करना है  
अधिकारी सिर पर राजमुकुट को धरना है  
हे गुरु वसिष्ठ ! रामानुज का आह्वान करें—  
सिंहासन खाली है, इच्छित मम्मत्त करें  
इस क्षण ही आज्ञा दें कि दूर अब जाय दूत  
राम के बाद तो श्रेष्ठ भरत दशरथ-सपूत  
धर्मनुसार अभियेक उन्ही का करना है,—  
उनके मस्तक पर ही किरीट को धरना है !  
चौदह वर्षों तक वे ही शासन-अधिकारी  
वे सब विधि योग्य, सुशील, विनम्र, मदाचारी  
हैं भरत राम-प्रतिष्प, अमित गुणनिधि वे भी  
जानते शासन-मम्मत्त शासन-सन्निधि वे भी  
उनमें न कभी आलस्य, नहीं उनमें प्रमाद  
वे बुद्धि-कुशल, रहती है उनको बात याद  
वे हर प्रकार में सक्षम, क्षमाशील, जानी  
वे कभी भूल से भी न करेंगे मनमानी  
हैं भरत सदा से न्याय-निपुण, सुविवेक-सबल  
आसक्तिहीन उनका आलोकित देह-कमल  
उनका शिवभय जीवन जनगण-हित सायंभ है  
प्रत्येक दृष्टि से वे ही मंगलवर्द्धक हैं !  
निर्णय हो सत्वर सादर उन्हें बुलाने का  
कारण न बताया जाय यहाँ पर आने का

करना है उन्हे पिता का अन्तिम क्रिया-कर्म  
उनके ऊपर इस समय विविध दायित्व-धर्म !

अवगत सुमन्त के दृष्टिकोण से सभी लोग  
कर्त्तव्य-चेतना में ओझल दुस्सह वियोग  
कुछ क्षण तक कानौकान राम-वनवास-कथा  
पर, तुरन्त अराजकता-दाका से दामित व्यथा !  
मन्त्री-वक्तव्य-प्रभाव पडा सबके मन पर  
कदु-करण सत्य-वचनों को सुनकर स्थिर अन्तर  
कुछ ने कुछ कहना चाहा पर, मुख-शब्द मौन  
सभाव्य कुशासन-चित्रण से दुख-शब्द मौन !  
मन में कैंकेयी-दोष, हृदय में भरत-स्नेह  
सद्गुण की सुधि-छाया में दो क्षण तन विदेह  
निर्दोष भरत, दोषी केवल उनकी माता  
जिज्ञासु दृष्टि में पक और पकज-नाता !  
बोले वसिष्ठ : 'मन्त्री-अभिमत से सब महमत  
होना न हमें है अति दुख में कर्त्तव्य-विरत  
शासन-हित तो उत्तम प्रवन्ध करना ही है  
नृप-रिक्त स्थान को सविधि शीघ्र भरना ही है !  
शासन से दूट सामाजिक अनुशासन संभव  
इसके अभाव में विविध उपद्रव नित नव-नव  
कोसल-सिंहासन करता भरत-प्रतीक्षा है  
इस कठिन धड़ी में सबकी कठिन परीक्षा है  
हे दशरथ के विश्वासपात्र अधिकारीगण !  
अतिशय सचेत रहने का है यह दारुण क्षण  
दुर्बल क्षण में ही शत्रु-आक्रमण होता है  
सोकान्धकार में सजग देश क्या सोता है ?  
सौभाग्य कि कोसल-राज्य पूर्णतः अनुशासित  
फिर भी रिपु की शनि-दृष्टि किसी क्षण सभावित  
शासक के बिना बहुत रूना लगता शासन  
जैसे गृहपति से रहित शून्य श्रीहीन सदन !

कोसल में रात्रतन, पर भानित प्रजातन  
 गूँजता चतुर्दिक रामचन्द्र का हृदय-मंत्र :  
 दुख नहीं किसी को हो, अनि मुख भी हो न कहीं !  
 समता-ममता से वचित हो मनुजत्व नहीं !  
 सघटित विविध परिपद् कि कार्य न्यायोचित हो  
 समदर्शी शामन मदा प्रेम-जाघारित हो  
 इस समय सर्वसम्मति से ही कुछ करना है  
 शोकान्धकार से नहीं किसी को डरना है !  
 भेजिए सुमन्त ! दूत को अब सत्वर केवय  
 मिल गई भरत के लिए सर्व महमति सहृदय  
 हम मिलें पुनः दोनो भाई के आने पर  
 अथवा विधिपूर्वक श्राद्ध-कर्म हो जाने पर !

वन-नदी, नदी-वन-गिरि-मह को कर पार-पार,  
 सर-सर-सर निकले सर-सर-सर दो घुबसवार  
 शक्तिम समीर-सा धन्वा से ज्यो छुटे तीर—  
 त्यों सरर-सरर, सर-सरर-सरर दो दून वीर !  
 दिन में न कहीं विधाम, रात्रि में अर्द्ध शयन  
 आज्ञानुसार ही सदा लक्ष्य की ओर नयन  
 भागते हुए घोड़े से भी है आगे मन  
 सज्ञा-सवेग-समान अयोध्या-अद्वचरण !  
 आते-आते दोनो सुदूत आ गए यहाँ,—  
 मिलने की सत्वर अनुमति भी पा गए यहाँ  
 भाई का पहला प्रश्न कि कैसे हैं भाई !  
 नयनों में प्रेम-सुधा तत्काल छलक आई !  
 कुछ क्षण तक कोमल भरत, राम-नुधि में तन्मय  
 अधरो पर स्मृति-मुस्वान, हृदय में उनकी जय  
 फिर कुशल-श्रेम की वान और फिर वान वही :  
 'चलिए कुमार जन्दी, कुलगुरु-आदेश यही !'  
 दूतों ने वही वहा कि उन्हें जो कहना या  
 शब्दों की सीमा में ही उनको रहना था :

‘सब वहाँ कुशल ! चलिए कुमार—चलिए कुमार !’  
 —अनुरोध किया दूतों ने उनसे बार-बार  
 नाना-मामा से मिले भरत-शत्रुघ्न तुरत  
 देखते-देखते सिंहद्वार पर तत्पर रथ  
 चल पड़े तुरन्त-तुरन्त मुदित दोनों भाई  
 नयनों में माता-पिता-वन्धु की परछाई  
 बरा, वही-वही ही रुके, अश्व थक गए जहाँ  
 यात्रा में कहीं ठीक से निशि भर टिके कहीं ?  
 पथ-पथ पर रथ झञ्झानिल-सा दौड़ता रहा  
 दिन भर चलने से अधिःशुद्धि प्रस्वेद वहाँ !  
 आठवें दिवस शत्रुघ्न-भरत निज नगरी में  
 है अधिक उदासी क्यों रें मन, प्रिय डगरी में ?  
 इस पथ में भी, उस पथ में भी क्यों करण शान्ति ?  
 सन्नाटे में हो रही आज क्यों नयन-भ्रान्ति ?  
 हर्षित कोलाहल नहीं कहीं ! बाजार शून्य !  
 जन-पथ के दोनों ओर सभी गृह-द्वार शून्य !  
 आनन्दहीन उद्यान ! वाद्य-ध्वनि नहीं कहीं !  
 गतिहीन पवन में कोई गन्ध-सुगन्ध नहीं !  
 नर-नारी इतनी कान्तिहीन क्यों दीख रही ?  
 पूछूँ किससे मैं इस क्षण, क्या है धात सही ?  
 राव करते मौन प्रणाम, मूक अभिवादन क्यों ?  
 झुक जाती है नीचे ही सबकी गर्दन क्यों ?  
 है राम ! अशुभ तो नहीं हुआ कोई घर में ?  
 शब्द ही नहीं है आज किसी के भी स्वर में !  
 सकेतो से ही सत दे रहे शुभाशीष  
 वे वृद्धाएँ : ज्यों माँग रही हो मौन भीख !  
 टकटकी लगा कर देख रहे हैं बालकगण  
 उस बन्धा का कितना कुम्हलाया लगता मन  
 उस तरणी ने अपनी आँखें नीचे कर ली  
 उस ग्रामवधू ने नयनों में कृष्णा भर ली !  
 वह वृद्धा रोने लगा फफक कर क्यों पथ पर ?  
 क्यों देख रहा वह मौन युवक नीचे-ऊपर ?

किम कारण इतनी दुःखद शान्ति—किस कारण यह ?  
 क्यों ऐसा सन्नाटा कि हृदय-हित यह दुस्मह ?  
 श्रीहीन अयोध्या की शोभा दीखती आज  
 करते मानव उत्साहहीन ही काम-काज  
 यह नगर भयावह-सा लगता क्यों मुझे वन्धु,  
 मृतसा-ही अनुभव होता है क्या तुझे वन्धु ?  
 कोयला की कू न कही, केवल डक रहे काग  
 चिन्ता-पथ में उठनी विपाद की विकल आग  
 दिन के इस सूनेपन में कुत्ते रोते हैं  
 लोचन अनेक अपशकुन आज क्यों होते हैं ?  
 भूखे-भूखे से जन-तन, सूखे-सूखे मुख  
 देखी जितनी भी आँखें, उनमें केवल दुःख  
 जिम ओर दृष्टि उस ओर उदासी के झंझरे  
 मेरे मन पर करणा के मात्र तडित चँके ।  
 उस सन्नाटे के झूलो को सह रहे प्राण  
 सुनसान वेदना-धारा पर वह रहे प्राण  
 चुपचाप बिना बोले ही कुछ कह रहे प्राण  
 सह रहे प्राण—सब कुछ इस क्षण सह रहे प्राण ।  
 अनजान हृदय को पता नहीं क्या हुआ यहाँ  
 हे भरत ! आपको जाना है उस ओर कहीं ?  
 आरती सजा कर कंबेयी है उधर खड़ी—  
 मन की प्रसन्न विहंगी मन में ही डरी-डरी !  
 आते-आते आ गए भरत-शत्रुघ्न निकट  
 लख विकट समस्या, कंबेयी अब दौड़ी सट  
 माता ने अपने पुत्रों को पहचान लिया—  
 अपने समान ही इन्हे-उन्हें भी जान दिया ।  
 चरणों को छूकर पुत्र मुदित, आर्तिगित भी  
 कंबेयीनन्दन के प्रिय मस्तक चुम्बित भी  
 भोले-भाले बेटे विभूक्त, आर्तिदत्त भी  
 कंबेयी अति हर्षित भी, अतिशय शक्ति भी ।  
 'माँ ! पिता कहीं ? माँ ! राम मिथर ?' यह प्रश्न प्रथम  
 जल्दी-जल्दी ही भक्तिपूर्ण जिज्ञासा-रम

उत्तर-विदम्ब से व्याप्त-व्याप्त नव अन्न पर अन्न  
 उत्पन्नता इधर लगन, लागला उधर नुगन !  
 झट वान वाट कर जिजासिन याना-दिवरण  
 नहर का कुशा-क्षम नुन कर अफन्दित मन  
 दोनो पुत्रों के बीच मुदिन माना लतिगय  
 वह बोल उठी 'ह तात तुम्हें मिल गई विजय !  
 हे भरत ! तुम्हीं हो गए ययोध्या-अधिकारी  
 अब हुए तुम्हारे ही अधीन सब नर-नारी  
 सम्पूर्ण अवध-राज्याज्य सृपुत्र ! तुम्हारा है  
 जय-लक्ष्मी मिली तुम्हें मेर ही द्वारा है !  
 सर्वोच्च कामना पूर्ण हुई मेरे मन की  
 अन्तिम इच्छा साकार हो गई जीवन की  
 नुत-गौरव से माता ही माछ हुई पूरी  
 मिल गई तुम्हें—मिट गई तुम्हें शानन-सूरी ।  
 इतिहास तुम्हारा अब जयकार मनाएगा  
 तुममे मुहमांगा घन अब याचक पाएगा  
 अब महासिन्धु-पर्वत भी कांपेंगे भय में  
 चुपचाप रहेंगे शत्रु तुम्हारी इन जय से !  
 ऊंचा ही मदा रहेगा मेरा स्वाभिमान  
 है किया काल ने तुम्हें मुकुट-गौरव प्रदान  
 बाँधी के हाथों से छीना यह कीर्ति-शीप  
 तूफानों से लडने पर ही अब तुम महीप  
 पाने वाले को कुछ तो खोना पडता है  
 हँसने वाले को भी तो रोना पडता है  
 इन जीवन में दुख भी तो टोना पडता है  
 समयानुसार भक्ति-भक्ति को होना पडता है !  
 तिनका से भी कुछ काम निकट ही जाता है  
 अपना वह, जो अवनर पर हाथ देताता है  
 माँ के समान है भरत ! मन्थरा को मानो  
 इन राजभवन में उसको अपना ही जानो  
 उसने ही दी प्रिय लुट्टि चनुर हिनकरी—एक  
 रख दी उसने मन पर मन की फुलझड़ी एक

मन्यरा-नाटिका को निशि भर खेलना पडा  
 मत पूछो पुत्र कि कितना दुःख झेलना पडा ।  
 ममज्ञो कि मफरना मिली मन्यरा के कारण  
 उमके शन्दो का हुआ मुझी से उच्चारण  
 मेरे अच्छे सम्राट् मत्य को मान गए  
 कैंकेयी की इच्छा को वे पहचान गए ।  
 हे पुत्र ! नही तुम साधारण कोमङ्कुमार  
 एक ही बात को दुहरानी हैं वार-वार  
 दूमरी, तीमरी बात कहें जिस मुख से मैं  
 सुख से हैं अति हर्षित, पीड़ित अति दुःख से मैं  
 कामना-सिद्धि के लिए कष्ट भी होता है  
 श्रेयता प्राप्त कर भी तो मानम रोना है  
 जो आया है, वह जाएगा यह प्रवृत्ति नियम  
 आना-जाता प्रकाश, आता-जाता है तम ।  
 जग में आने-जाने का त्रम टूटना नही  
 विधि-निश्चित वय के पूर्व प्राण छूटना नही  
 इस समय अयोध्या में छाया शोकान्धकार  
 तुम तम क मगर को धीरज में करो पार  
 मिहामन खाती है । भूपति अत्र नही यहाँ ।  
 जाना है एक रोज मुत्तको भी कभी वहाँ  
 दो बचनों को पूरा करके वे चले गए—  
 मेरे प्राणों में सुख भरके वे चले गए ।  
 उनके जाने का दुख मुझमें कम नहीं तान,  
 जागती रही मैं महाशोक में मात रात  
 तुम आए तो मन को थोडा मनोप हुआ,—  
 मेरी विमुख वाणी में जय-मधोप हुआ ।  
 परितोप कि मेरे दोनो पुत्र नयन-भम्भुष  
 वैधव्य-दुःख मानृत्व-गर्व में नही विमुष  
 रोओ मत मेरे लाल ! अधिक, इतना-दतना  
 भावी भूपति ! रोओगे अत्र कितना-कितना ?

मुन पितृ-निघ्न की बात, भरत मूर्च्छित तत्क्षण  
 बांभू ही बांभू ने लघपथ प्रिय पुत्र-नयन  
 अत्यन्त करण—अत्यन्त करण आकुल विलाप  
 लुण्ठित दुःख-दग्धिन मन ज्यों तन मे विप-भिलाप !  
 'आते ही यह क्या मुना ! कहां मेरे भैया ?  
 हैं मेरे प्राणाधार कहां ? मेरी भैया !'

—इतना ही कह कर भरत पुनः अति नोकाकुल  
 अति व्यथित प्रकम्पित मानस अनगिन मुग्ध-सकुल !  
 'मां ! राम कहां ? करना है मुझे अभी दर्शन  
 वे ही कर नकते अभी शोक का अश्रु-हृत्प  
 उनकी मुक्क-दृष्टि को ही निहार, दुःख होगा कम  
 मां ! तेरे वचनों को मुन कर मन में विभ्रम !  
 क्या बोले गई तू, ठीक समझ पाया न भरत  
 तेरी छाया के निवट अभी आया न भरत  
 छाया की भाषा में तू क्या-क्या बोले गई ?  
 अपनी इच्छा को क्यों गांठ तू खोल गई ?'

—इतना यह कर फिर भरत गोक-नतप्त नुरत  
 उर में—आँवों में पितृ-स्नेह के चित्र विगत  
 शत्रुघ्न अश्रु में द्रवे-द्रवे-से अधीर  
 दोनों भाई के तन-मन में अति अधिक पीर !  
 'सम्पन्न हुआ किन दिन मां ! पितु का दाह-धर्म ?  
 मैं नहीं निना पाया अन्निम-सम्कार-धर्म !  
 किन समय गम मे बांभू अर्पित किया उन्हें ?—  
 कब मलय-चिन्ता पर अग्नि समर्पित किया उन्हें ?  
 मां ! कहीं गोक-नतप्त राम ?—घोले कुमार  
 चिन्ता में द्रवी अँवैयी अब बार-बार  
 पहना ही पटा नभी कुछ भीषी भाषा में  
 चमकी प्रलोभ-चपला चंचल अभिलाषा में !  
 मुन राम-दण्ड की कथा, भरत निष्प्राण-नदश  
 कुछ क्षण तक वे निःशब्द प्रशोक्ति ध्यान-चदृश  
 गभीर पीर में तन पल भर पापाप बना  
 दुर्वचन भरत के लिए वेदना-वाण बना !



‘ह राम ! विद्व म ऐसा भी क्या होता है ?’

—भीतर ही भीतर मन घुट-घुट कर रोता है !  
 गिगु-सा चि-दान लग भरत अब रो-रो कर  
 दुख-दशा अमह जैसे पन्नग निज मणि खोकर !  
 सहसा शत्रुन रदन-बोधित, जननी चिन्तित  
 भ्राता-विछोह से भरत-हृदय त्रन्दित-विचलित  
 हे राम ! विद्व म ऐसा भी क्या होता है ?

—मन-ही मन शोकाकुल कोमल मन रोना है !  
 मूर्च्छित होकर गिर पड़े भरत, फिर उठे तनिक  
 निकटा मुख स—‘लोभी माना ! धिक्-धिक्, धिक् धिक्  
 क्या तू ही मेरी मां है ओ भूखी बाधिन !  
 तेरे कारण प्रभु चढ़े गए चुपचाप विपिन ?  
 तू ने मेरे अप्रज का भेज दिया वन म ?  
 यह कुटिल वपट उत्पन्न हुआ कंभ मन म ?  
 अपने कालं मुख को अब किमको दिग्लालक ?  
 अच्छा होना तरे ममक्ष में मर जाऊँ !  
 ले, तू ही तीर भोक दे मेरी छाती में,—  
 भर दे अपनी कालिमा प्राण की बाती में  
 निर्मम जननी ! मुत-हत्या कर निज हाथो मे !  
 है टपक रहा नोणित अब तेरी बातो से !  
 जन्धी मेरी हत्या कर, निज अपराध मिटा  
 मां ! निज हाथा में ही निज पाप अगाध मिटा  
 अपने कटव को धो ले मेरे नोणित मे  
 कर डमी समय यह काम नाकि मताप हटे !  
 हे शरार्य-ममरचण्डिके ! वक्ष में बाण भोक  
 मृत मृत को अग्नि-उपट में तू ही स्वय शोक  
 तू नहीं जानती, क्या तूने अपराध किया  
 रघुबुल की कीर्तिध्वजा को तूने झुका दिया !  
 तू मां है, यह कहने में भी सकोच आज,  
 अपने नग मे तू मेरे तन को नोच आज  
 मैं भी तेरे मन के जगल का हूँ गिनार  
 निष्ठुर जननी, तूने किस पर कर दिया वार ?

मैं ही तेरा आहार अरी ओ वन-व्याघा !  
 तेरे कारण कुल की मर्यादा मे बाधा  
 क्या नहीं जानती तू, कि राम का भक्त भरत ?  
 तू नहीं जानती रामचरण-अनुरक्त भरत ?  
 लज्जा न लगी मन्यरा-मंत्र को चुनने मे ?  
 कैसे मन लगा तुझे विष-मृक्ता चुनने मे ?  
 किस मुँह से तूने मांगा वर निर्दय जननी !  
 कुलगौरव मिटा दिया कैसे अहृदय जननी !  
 लज्जा न लगी कि राम के रहते भरत नृपति ?  
 फिर गई लोभ के कारण कैसे तेरी मति ?  
 जल गया प्रेम का फूल स्वार्थ की लपटो से  
 तेरा यह कपट घृणित है सौ-नौ कपटो से  
 मुझसे भी अधिक दुन्दार किया तूने जिसको,—  
 किस निर्ममता से भेज दिया वन मे उनको ?  
 तेरे कारण ही पिता देह को त्याग गए  
 कैसे कुचक्र के भाव हृदय मे जाग गए ?  
 माता बौसल्या पर तो बच्च-प्रहार हुआ !  
 मेरे कारण उत्तमे उर पर क्यों वार हुआ ?  
 लक्ष्मण-जननी मन-ही-मन क्या बहती होगी  
 सहती होगी—बह अतह व्यथा सहती होगी !  
 माता-सी वह जानकी हाय, निर्जन वन मे !  
 मेरा प्यारा छोटा भाई लक्ष्मण वन मे !  
 मेरे कारण ही तूने घोर अनर्थ किया  
 पीयूष समझ कर तूने मन का गरल पिया !  
 हत्यारी माँ ! अब मेरी हत्या कर जल्दी  
 मेरी दुस्तह पीडाओ को अब हर जल्दी  
 मैं यहाँ किसी को मुँह दिखलाने योग्य नहीं  
 अब मेरे लिए अयोध्या पल भर भोग्य नहीं !  
 हो गया अपावन मरसू-जल मेरे कारण  
 हो गया अपावन यह भूतल मेरे कारण  
 मेरे कारण ही सूर्यवश तम-व्याप्त हुआ  
 मेरे कारण ही नारा पुण्य समाप्त हुआ !

मिट गया सुयश मेरे कारण, घँस गया धर्म  
 मेरे कारण ही किया हाय, तूने कुकर्म  
 मेरे कारण ही किया घोर विश्वासघात  
 मेरे कारण शुभ दिन में आई शोक-रात !  
 राज्याभिषेक रुक गया मात्र मेरे कारण  
 हा ! राष्ट्रध्वज झुक गया मात्र मेरे कारण  
 जननी ! तूने क्यों इस कपूत को जन्म दिया ?  
 क्या जनम-जनम तक मैंने केवल पाप किया ?—  
 वस्तुतः राम-वनवास हुआ मेरे कारण !  
 मातृत्व-शक्ति में ह्रास हुआ मेरे कारण  
 असमय भूपाल निघन—भ्राता का निर्वासन—  
 मेरे कारण—मेरे कारण—मेरे कारण !”

सुन कर सुत का मार्मिक विलाप, माता न द्रवित !  
 साधुता देखकर स्वार्थ प्रवल मन क्रुद्ध, चकित  
 लेकिन भीतर से कँकेयी किंचित् उदास  
 इच्छा की लहर झुकी प्राण के आस-पास !  
 ‘क्या इतना भूर्ख भरत ? यह पहली बार ज्ञात  
 वह नहीं समझता राजनीति की बड़ी बात  
 वह मार रहा है राजमुकुट पर आज लात  
 वह फँस रहा है हाय, परोसा हुआ पात !  
 सुर-दुर्लभ पद भी उसको है स्वीकार नहीं  
 वह स्वयं चाहता सिंहासन-अधिकार नहीं !  
 सब किए-धिए पर उसने पानी फेर दिया  
 अप्रज-ममता ने उसके मन को घेर लिया !  
 बन्धुत्व श्रेष्ठ नृप-पद से, अब यह ज्ञात मुझे  
 आ गई समझ में भूर्ख पुत्र की बात मुझे  
 हे भाग्य-विघाता ! तेरी लीला है विचित्र  
 सत ही सिर्फ मानता दाश्र को सरल मित्र !  
 सोचा था, मेरा भरत अधिर है बुद्धिमान  
 पर, उमकी भावुन मति अति मर्यादा-प्रधान

मेरी सारी कल्पना बिखर जाने को है  
 मेरे मन पर नैराश्य-निमिर छाने को है !  
 पाया जिसके कारण अपयज्ञ, है रष्ट वही  
 छीना जिसके हित मुरपुर, है सतुष्ट वही !  
 जज्ञाओं से निकगी नौका फिर जज्ञा मे  
 पी के फटते ही सूर्य तिगोहिन मध्या मे ।  
 बोली कँकेयी 'पुत्र ! बना कुछ नीति-कृदाल  
 दुर्बल लोचन से मन वरमाओं केवड जड  
 आई-मी लक्ष्मी को इन क्षण दुक्गओ मत !  
 वीती बातो पर अब इतना अकृगओ मत !  
 छल-रहित नही कोई मत्ता—कोई शासन  
 हिंसा से ही जीना जाना है भीषण रण  
 मिलती है अथिब मफगता अति चतुराई-से  
 अच्छाई भी मिगती है कभी वुराई मे ।  
 मैंने जो कुछ भी किया, वही तो राजनीति  
 मैंने जो कुछ भी दिया, वही तो राजनीति  
 मैं पश्चिम की रहने वाली, पूरव आई  
 मेरे मन पर अब तो यथार्थ की परछाई  
 चिन्तन की धारा भिन्न, विभिन्न कर्म-पद्धति  
 अति धार्मिकता मे दूर-दूर मेरी मति-गति  
 या हुआ शर्त के साथ पुत्र ! मेरा विवाह  
 जनमे तुम जिम क्षण, उम क्षण ही अभिपेक-चाह ।  
 अबमर पावर अपना अधिकार लिया मैंने  
 अपने दोनो वर को साकार किया मैंने  
 है स्पष्ट बात करने मे कोई दोष नही  
 अपने दुख को हरने मे कोई दोष नही !  
 मुझको यथार्थ ने प्रेम,—नही भावुकता से  
 मैंने न निवाग्य तेल कभी भी सिक्ता से  
 सच्चाट वनो तुम, यही हमारी इच्छा है  
 हे भरत ! तुम्हारी-मेरी कठिन परीक्षा है ।'

निश्चल मन पर पडता न कभी अनुचित प्रभाव  
 हो गया निरर्थक स्नेहहीन उर का दबाव  
 भगवान, भरत के लिए राम, सबकुछ वे ही  
 भगवती-स्वरूपा पूज्य सदा से वैदेही  
 भ्रातृत्व-माघना का निरुपम परिणाम भरत  
 लेते प्रतिपल चुपचाप राम का नाम भरत  
 इस राम-प्रेम से कैंकेयी अनजानी-सी—  
 केवल उसकी वात्मन्य मुधा पहिचानी-सी !  
 अपने सपने के लिए मोह करती नारी  
 दृग-सम्मुख अभी प्रमून नहीं वह फुलवारी  
 कैंकेयी-कौसल्या मे मौलिक भेद यही,—  
 खण्डित भूतल है एक, एक सम्पूर्ण मही !  
 कह दिया भरत ने 'ओ पश्चिम की मेरी माँ !  
 मातृत्व-भाव की मत बाँधो कोई सीमा  
 माता को रहने दो माता के ही ममान  
 तुम करो अभी भी निर्विकार राम का ध्यान  
 चरणों पर झुक कर कहो कि तुमसे हुई भूल  
 अति कुटिल कामना राज्य-शोभ मे गईं फूल  
 ईर्ष्या के कारण मातृ-दृष्टि सकुचित हुईं  
 लोभिनी लालसा सुत-भत्ता-हित क्षुधित हुईं !  
 अति भीतिर मुन्न की आकाशा से अन्ध नयन  
 राम को त्याग कर घृणित स्वार्थ से गठबन्धन !  
 पूरव-पश्चिम की बात राम के लिए नहीं  
 उनके ममान कोई पुष्पोत्तम नहीं कही !  
 हे माँ ! तुमसे हों गया घोर अपराध हाथ  
 करना है मिल कर कोई अब ऐसा उपाय,—  
 जिमसे कि शीघ्र—अति शीघ्र राम लौटें वन मे  
 दर्शन-आनन्द प्रवाहित हो फिर जन-मन मे !  
 तुमने राधासन्मा किया कुकर्म विना सोचे  
 वास्तव मे तुमने किया अधर्म त्रिना सोचे  
 सोचा यह नहीं कि कौमल्या को एक पुत्र !  
 माँ-बेटे का वितना कोमल सम्बन्ध-मूत्र

माँ होकर भी माँ ! तुमने माँ को भुला दिया  
 निमंनते ! तुमने प्रेम-दया को भुला दिया !  
 नवोत्तम नुत को दिया कठोर अरण्य-दण्ड ?  
 जाना देते जिह्वा न हुई कयो खण्ड-खण्ड ?  
 शोभी थी तुम किम काले पर्दे में छिप कर ?  
 था नही नयन के मम्मसुख राम-वदन सुन्दर ?  
 उनके मरोज-लोचन को तुमने देखा था ?  
 क्या मन के खिले मुमन को तुमने देखा था ?  
 धिक्कार जननि ! धिक्कार जननि ! धिक्कार जननि !  
 धिक्कार तुम्हें नौ बार—हजारों बार जननि !  
 नोदित मन में अपराध किन्तु तुम हो माता  
 जी करना है कि तोड़ लूँ अपना नुत-नाता !  
 पर हाय, नोघवश में यह पाप करूँ कैसे ?  
 माँ के मन में कल्पित सताप नरुँ कैसे ?  
 इम धृणित घड़ी में करूँ राम-अनुकरण आज  
 देगा मेरे नर्मों को कोसल-समाज  
 इन कुपित परिस्थिति में कम्पित-सी मर्यादा  
 उर-नोघकुण्ड में अविरल अपशाब्दिक स्वाहा  
 सज्जनता जली-जली-सी है दुर्जनता से  
 क्षन-विक्षत तन-मन हृदयहीन निमंमता से !  
 ईश्वर हे ! मेरे प्राणों का अब दुख दुस्सह  
 मेरी आकुल आत्मा की असह व्यथा अनकह  
 अपनी ही माता से अब लगता मुझको भय  
 चाहती बना देना कोसल को वह केकय !  
 इम राजभवन में एक राक्षसी रहती है  
 वह मुत को भी राक्षस बनने को कहती है  
 कहती कि 'राम के सिंहासन पर बैठो तुम—  
 आजुरी राजमद में आजीवन ऐंठो तुम !'  
 हे राम ! महा जाता न दुख, मैं भरत विबल  
 माँ नहीं, पीछे सक्ती मेरे नयनों का जल  
 है बाँप रहा मेरा हृत्तल, बाँपना अतल  
 लगना कि प्राण में व्यथा-प्रलय का जल केवल !

सूना लग रहा शोक के कारण यह जीवन  
 है राम ! आपके बिना तुच्छ है सब साधन  
 मेरी माता ने गलत मुझे ही समझ लिया,—  
 इसलिए कठोर-कठोर-कठोर कुदण्ड दिया ।  
 यह राजतंत्र की देन निरपराधी दण्डिन  
 यह राजतंत्र की देन कि सत्य हुआ खण्डित  
 जनगण मन के प्रिय प्रभु अरण्य में निर्वासित,—  
 यह राजतंत्र की देन कि जग में न्याय नमित ।  
 तलवारी निषंग से न प्रेम रम-धार कभी  
 हिंसक उपाय से नहीं दिग्ब-उपकार कभी  
 केवल दुर्जन-विनाश के हित ही राम-बाण  
 आमुरी ध्वंस के लिए अस्त्र अन्तिम निदान ।  
 हे मां ! कोसल-सिंहासन केवल राम-हेतु  
 जनगण-मन का उच्चासन केवल राम-हेतु  
 मैं भरत राम का अनुज—राम का नम्र दास  
 उनकी उज्ज्वलता से मेरे उर में प्रकाश ।  
 अर्पित है मेरा जीवन उनके चरणों पर  
 चरितार्थ उन्हीं के जीवन में सत्-शिव-सुन्दर  
 समझा न उन्हें तुमने, केवल देता शरीर  
 आलोकपुरुष प्रत्येक परिस्थिति में गभीर  
 वे साधारण होते तो बन जाते न कभी,—  
 असहाय पितृ-आज्ञा को अपनाते न कभी  
 हँसते-हँसते ही चले गए होम भाई  
 उनसे न अलग रह पाई उनकी परछाई ।'

सुन पुत्र-वचन कैंकेयी अब गभीर बनी  
 उमकी प्रमग्नता अथु-प्रवाहित पीर बनी  
 मरने के पूर्व वणिक में ज्यो सम्पत्ति-भोह,  
 कैंकेयी के मन में भी आकुञ्ज आह-ओह ।  
 फन्वग्न दूरी शरण आई स्वप्न-अलकृन्-गी,—  
 दूरी वीणा ज्यो नए तार से झकृन्-गी

देख कर उसे, तत्काल कुपित शत्रुघ्न-नयन  
 निकला मुख से आश्रम-भरा पापाण-वचन  
 विल्ली-सी वह भागने लगी, पर लगी लात  
 वह भूल गई ठोकर लगते ही दूध-भात  
 कुबड़े तन पर पग के प्रहार से चोट अधिक  
 पापिन ! तू इतनी कुटिल, नीच, घरफोड़ी ? धिक् !  
 घूहे-मी चूँ-चूँ चिल्लाती-हाँफती हुई—  
 घायल कुत्ती-सी थर-थर-थर कापती हुई—  
 वह बोल उठी कि 'भगई का युग रहा नहीं'  
 इसके अतिरिक्त मन्यरा न कुछ कहा नहीं ।  
 चल पड भरत-शत्रुघ्न तुरत उस आर वहाँ,—  
 अति स्नेहमयी कौसल्या का अधिवास जहाँ  
 वह स्वयं सुमित्रा-सग आ रही थी मिलन  
 दोना को पय पर देख, लगा मृदु उर हिलने ।  
 माताओ ने दोनो पुत्रो को सटा लिया  
 आँसू ने आँसू को आँसू ही पिला दिया ।  
 काँपते होठ पर शब्द नहा, केवल पानी  
 आँसू में ही वह रही करुण मन की वाणी ।  
 अवरुद्ध कंठ, जल-भरे नयन, जल-भरा हृदय  
 निष्कपट प्राण, निश्चल तन-मन में गुत की जय  
 छाती से आलिंगित वात्मन्-प्रदीपशिखा  
 आलोकित मातृवामना की प्रत्येक दिशा ।  
 शिशु-से चिपके शत्रुघ्न-भरत दृग में दृग घर,  
 थर थर-थर आकुल प्राण और निर्वाक् अधर  
 आकुलता इतनी तीव्र कि मुख में शब्द कहां ।  
 आँसू ही आँसू प्रिय कपोल पर यहाँ-वहाँ  
 दो हंसकुमारों की दृग-मुक्ता झरती-सी  
 ममता की सजल किरण चुपचाप विखरती-मी  
 करुणा के दो-दो कमल मातृ-अरणाई में  
 दो पुत्र विपिन में, दो सनेह-परछाईं में ।  
 बोली कौसल्या—'तू क्यों इतना रोता है ?  
 होने को जो होता है, वही न होता है ?



तेरा क्या दोष भरत, इसमें ? तू व्यर्थ न रो  
 इम विषम परिस्थिति में बेटा ! निज धैर्य न खो  
 काल के सामने किसका बश चलता जग में ?  
 फँस जाते वीरो के पग भी कटक-मग में  
 बोली भी बदल दिया करता है क्रूर का  
 झोंके खाकर गिर जाते हैं तम्बर विशाद !  
 दोषी न तुम्हारी माँ, यह खेद समय का है  
 यह अवसर दृढ़तापूर्वक दुःख-विजय का है  
 आ गए तुम यहाँ, अब कोई भय नहीं हमें  
 अब नहीं अटकना है दुःख-पथ में वहाँ हमें  
 है जहाँ भरत, है वहाँ राम यह सत्य अटल  
 है एक वृत्त पर खिल हुए दो हृदय-कमल  
 बचपन में तुम मेरी गोदी में अधिक रह  
 तुम कितने प्यारे बीसलिया के, कौन कह !  
 शिशु राम मदा कँकेयी उर पर ही मोपा,—  
 उमके सम्मुख ही अधिक हँसा कम ही रोया  
 माता की आज्ञा का पालन कर रहा राम  
 वह सीप गया है तुम पर ही तो सभी काम  
 है भरत ! बड़े भाई का कहना मानो ही  
 भावुकतावश मत बनो सुपुत्र, विरह-मोही  
 हैं दूर राम-रुद्रमण-मीना पर, पास तुम्हीं  
 चौदह वर्षों तक कोमल-राज्य-प्रकाश तुम्हीं !  
 पर, कहा भरत ने—'माँ ! तुम हो कितनी उदार,  
 तुम जहाँ, वहाँ पर नहीं अमत् का अन्धकार  
 आसिर सिमयी माना हो तुम हे देवि, विमल  
 राम का जन्म तुम्हारे उत्तम तप का फल !  
 पर, मेरी माँ ने झुका दिया कुठ का मन्त्र  
 हसो के बीच छिपा था उमके उर का बक  
 उमके कारण मैं मुँह दिखलाने योग्य नहीं  
 अब भरत तुम्हारे सम्मुख आने योग्य नहीं !  
 मुझ पर कलक जो लगा, न कह फिटने वाला  
 मेरी माता का प्रण न कभी टिकने वाला

अनुचित प्रलोभ से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है  
 विपमयी कुटिलता स्वार्थ-सरणि से आती है  
 विपरीत बुद्धि के कारण ही अपराध घोर  
 है नहीं वही मन की तृष्णा का ओर-छोर  
 लालच के कारण ही अनर्थ होता जग मे  
 ईर्ष्यालु बुद्धि ठोकर खानी मन के मग मे !  
 करता उत्पन्न द्वेष गृह-जीवन मे विभेद  
 छिछली आँखे करती कुदृष्टि से सदा छेद  
 परिवार-पद्म सदस्नेह-भुमति से खिलता है  
 सामूहिक तप से सच्चा गृह-सुख मिलता है !  
 मेरी माता ने रविकुल पर आघात किया,—  
 निज स्वार्थ-हेतु श्रीरामचन्द्र को दण्ड दिया  
 आसुरी शक्ति से किया स्थगित राज्याभिषेक  
 मिट गया लोभ के कारण ही उसका विवेक  
 दुस्सह दुख से ही साधु पिता का हुआ अन्त  
 उस एक आग से झुलस गया कोसल-वसन्त  
 माता के कारण मिला मुझे अक्षय अपयश  
 देना चाहा उसने निज सुत को गरल-कलश  
 हे माँ ! मेरे उर पर तो अकित राम-नाम  
 करना है मुझे न कोई अनुचित कभी काम  
 श्रीराम अयोध्या-अधिकारी, यह भरत नहीं  
 सिंहासन उनका ही, उनकी ही अवध-मही !  
 यदि मुझमे सच्ची भक्ति, उन्हे आना होगा  
 शीघ्र ही मुझे उनके समीप जाना होगा  
 मैं उन्हे मना लूँगा—मैं उन्हे मना लूँगा  
 हूँ भक्त राम का मैं, उनको मैं पा लूँगा  
 भाई हूँ मैं, भाई से भिन्न न हो सकता  
 मेरा भस्तक उनका मणिमुकुट न ढो सकता  
 सिंहासन-हित मैं उनकी प्रीति न खो सकता  
 अवतक मैं उनका रहा, उन्ही का हो सकता !  
 पर हाय, उन्हे अति कष्ट हुआ मेरे कारण  
 मेरे चलते ही जाना पडा उन्हे है वन

मेरे चलते मैथिली भोगती विपिन-चट्ट  
 मेरे चलते मेरी माता की बुद्धि भ्रष्ट ।  
 मेरे कारण लक्ष्मण भी जंगल का वासी  
 क्या राम अभी भी मेरे प्रति है विश्वासी ?  
 सब पापों का केवल मैं ही हूँ जड़ माता ।  
 मेरे कारण ही छिन भिन्न पावन नाता  
 निर्दोष राम को मेरी माँ ने दण्ड दिया  
 पर, दोषी को तुमने क्यों कुछ भी नहीं किया ?  
 अपराधी है यह भरत, इस दो तुम्हों दण्ड  
 कटवा दो मेरे तन को हे माँ ! खण्ड-खण्ड  
 अथवा आजीवन दो निर्मम वनवास मुझे  
 रहने दो सदा अकेले वहाँ उदास मुझे  
 करने दो कठिन प्रवास मुझे दण्डवाचन में  
 सुख-भाव न कोई उठे कभी मेरे मन में ।”

कौसल्या पिचल पड़ी सुन कर प्रिय भरत-वचन  
 दोनों दुःखमय लोचन में केवल घन ही घन  
 निष्कपट भरत को देख राम का स्मरण सजल  
 उसके सुधि-घट में निर्मल सरयू का ही जल ।  
 अगुलि पर आँसू उठा, भरत के नयनों के,—  
 देखे कौमल्या ने मन के अनेक शोक  
 शीतल वाणी से शान्त तनिक मन की पीडा  
 पर, सुत की आत्म-व्यथा सचमुच अति गभीरा !  
 मूर्च्छित मुखमण्डल पर पत्ते का स्नेह-पवन  
 करुणा से ओतप्रोत प्रशोकित राजभवन  
 राम के विरह में भरत-प्रेम रह-रह विह्वल  
 लम्बे-लम्बे लोचन में केवल जल ही जल  
 छलकी न कभी इतनी आँखें इस जीवन में  
 राम ही राम केवल मुख में—केवल मन में  
 है वहाँ पिता का शव, इसका कुछ ध्यान नहीं  
 लगता कि राम के बिना भरत में शान नहीं ।

‘अब क्या उपाय ?’—बोली माता चिन्तित होकर  
 आँखें अब मुँदी-मुँदी-सी, मून्ने अरण्य अघर  
 साँसों की गति अति मन्द, शिथिल चन्दन शरीर  
 देखते-देखते राजभवन में बहुत भीड़  
 माण्डवी निबन्ध आई घर से श्रुतिवीरि-सग  
 ऊपर बढ़ती ही गई विविध दुःख की तरंग  
 क्षण में ही हाहाकार व्याप्त अब सभी ओर  
 तीना माताएँ—तीनों बहन व्यथित घोर  
 निष्प्राण भरत ! रे, नहीं-नही निष्प्राण नहीं !  
 दटा है अबचनन म्यनि का प्रिय-म्यान नहीं  
 हो गई दह श्रीराम-स्मरण में ही विदेह  
 दुभ्रात्मा को दिव्यात्मा से अति घना स्नेह !

—बोले वसिष्ठ विश्वाम-सहित शोकित क्षण में,  
 आगोकिन उनका मन, इनके उज्ज्वल मन में  
 मुग्ध सिद्ध प्रेम के कारण प्रिय प्रतिविम्ब-मिलन  
 अन्तर्मन में चतना-विमल आनन्द गहन !  
 माण्डवी-अघर पर मन्द-मन्द मुस्मान व्याप्त,—  
 लौकिक मत में जब व्यथित भरत मूर्च्छा समाप्त  
 कँकेयी के दग में प्रसन्नता जश्रु अमल,  
 पकिल उर में ग्विल गया एक विश्वाम-कमल !  
 रोती आँखें वेन्द्रित कौन-या के मुख पर  
 करुणाभा छिटक रही मयमित विरह-दुःख पर  
 मिलता न थाह गर्भार मुमिना के मन का  
 चितवन को भेद नहीं मिगता उस चितवन का !  
 राम का नाम लेकर जब भरत उठे उम क्षण,  
 कँकेयी को देख कर पुन चिन्तित लोचन  
 फिर अश्रुविन्दु बेटे के नीचे कपोलो पर  
 विखरे मोती को देख, मर्म-वण गए विखर !  
 कँकेयी ने कुछ नहीं कहा पर, प्रकट भाव  
 मन-ही-मन क्षमा माँगना-सा मन का दुराव  
 वह गई पुत्र के सग जहाँ दशरथ का शव  
 रोते आत्मज को देख चित्त में नव अनुभव

मृत पितृदह पर दोनो पुत्रो के नन मिर  
 भीगी पत्को पर जीवन-भुधि जाती घिर-घिर  
 आकुञ्ज मन पर मडलाते-स मृनि-चित्र सजल  
 जानता पुत्र ही पितृशोक का दुःख विवल !  
 जानता पुत्र ही योग्य जन्मदाता-महत्त्व  
 जानी को ज्ञात कि क्या है नरवर पचतत्त्व  
 सेवा के हित ही बना मनुज का क्षर शरीर  
 है व्यय नही नयनो मे प्रभु-प्रार्थना-नीर !

दीना दिन, रात व्यनीत, दिवस फिर करण-करण  
 मग्नू के तट पर चिन्ता-दृश्य किनमा दारण  
 कितना दुःखमय है घमं पिता का अग्नि-दाह  
 अनगिन—अमन्य प्राणो मे मार्मिक ओह-आह !  
 भूतल का वह मन्नाट् मिला फिर भूतल मे  
 तिरनी है कीर्ति-मछलियाँ नयनो के जल मे  
 मारा वैभव रह गया यही बुल गया कहीं !  
 जीवन मे ही तो दुःख-मुख का है द्वन्द्व यहाँ  
 आत्मिक आनन्द-रहित जीवन सुनिहीन दीप,  
 मोती के बिना न मू-यवान सरि-सिन्धु-सीप  
 प्रज्वलित चिता को देख, उदित वैराग्य-भाव  
 मन के प्रवाह पर आती जानी ज्योति-नाव  
 चौदह दिन मे सम्पन्न हो गया श्राद्ध कर्म  
 दाम्त्रानुमार मरक्षित लौकिक पुत्र धर्म  
 सत्तायो से ही धीरे-धीरे शोक-शमन  
 अब एन राम की ओर भरत का अन्तर्मन !

शुभ दिन मे एक विदोष सभा का आयोजन  
 मण्डप मे कुलगुरु, ऋषि, ऽनिनिधि अधिवारीगण  
 आए वसिष्ठ आज्ञा से अनुज समेत भरत  
 राजोचित भावी भूपति का लौकिक स्वागत  
 मुन तूयं नाद, प्रिय भरत अचानक दुःख-चकित  
 मुख भौन-भौन, गोचित लोचनदल नमित-नमित  
 कुलगुरु समीप, कौन-या-निवट ग्रहण आमन  
 भीतर ही भीतर हर्षित आज उपस्थित जन  
 बोले वमिष्ठ 'भूपति दत्तारथ भू पर न आज  
 उनके अभाव मे अवतक गोचित ह समाज  
 वे महाप्रतापी पुण्यवान, जन प्रिय शासक  
 वे सदा वचन पालक, मुक्तदायक, दुःख नाशक  
 गुण कर्म धर्म-अनुरूप कीर्ति की विरण ध्वजा  
 उनकी कर्मठता के कारण ही पुत्री प्रजा  
 जिनके मुत् राम-भक्त-लक्ष्मण-दाशुध्न विमल,—  
 उनकी महिमा—उनका गौरव तो चिर उज्ज्वल ।  
 ऐसे धर्मात्मा के उठ जाने से दुःख अनि  
 पर, जन्म-मरण समाप्त-चक्र की जीवन-गति  
 सामान्य मृत्यु मे तो परिचित हैं नभी लोग  
 आनन्द असीमित लेकिन सीमित भूमि-भोग ।  
 वे पिता धन्य हैं जिनके आत्मज कीर्तिवान  
 आदर्श महापुरुषों की माताएँ महान  
 जित गृह मे राम-भरत, वह तो पूजा-मन्दिर  
 निर्मल मयक है एक, एक है विमल मिहिर ।  
 दोनों ही पितृवचन-पालक, हैं क्षमाशील  
 है रूप-रंग भी तीनों पुष्प-समान नील  
 है राम-भरत-आवृत्ति मे भी मुन्दर नमना  
 दोनों को एक दूनरे पर आस्था, ममता  
 अब राम-कार्य करना है स्वयं भरत को ही  
 इस कठिन परिस्थिति मे देना है दिशा सही  
 करना है शोच नहीं अब देवी घटना पर  
 बालानुसार उठनी-गिरती है शोक-लहर

चिन्ता करनी है उस पर जो है चिन्तनीय  
 निन्दक ही है वास्तव में असत्री निन्दनीय  
 चिन्ता उस भासक की, जिमकी है प्रजा दुखी  
 चिन्ता उसकी जो विषय भोग में भ्रान्त मुखी  
 चिन्ता उसकी, जो करता सबको अपमानित—  
 जो निज शब्दों से करता निज को सम्मानित !  
 चिन्ता उसकी जो सदा भूर्खता से मुग्धरि  
 चिन्ता उसकी, जो अहंकार से निज शोधित  
 चिन्ता उसकी जो बात-बान में लडता है  
 चिन्ता उसकी जो भूख-ध्याम से मरता है  
 चिन्ता उसकी जो सदा लडाता मित्रों को—  
 देखता कुटिल नेत्रों से कण्ठ-कुचिरो को !  
 चिन्ता उसकी जो केवल चुगली करना है—  
 जो सदा भूठ के लिए अरुण-मा अटना है  
 चिन्ता उसकी जो देता धन को ही महत्त्व—  
 जो लोभ-प्रपची नहीं समझता लाभ-नस्व !  
 चिन्ता उसकी जो सदा कृपण, जो सदा निटुर,—  
 जो करता केवल छत्र परन्तु बोधता मधुर  
 चिन्ता उसकी जो अनुचिन्ता लाम उठाता है,—  
 चन्दन-टीका टगने के लिए लगाना है !  
 चिन्ता उसकी जो चाटुकार, जो बर्मेहीन—  
 जो बाहर से पूजक, भीतर से लोभ-लीन  
 चिन्ता उसकी जो रूपवान पर, मलिन हृदय,—  
 जो तुरत मित्र, जो तुरत शत्रु, जिसस नित भय !  
 चिन्ता उसकी जो रंग बदलता गिरगिट-मा,—  
 जो ऊपर से हँसता, भीतर से शोधित-मा  
 चिन्ता उसकी जो हाँ, कह कर 'ना' कहता है,—  
 जो बपट-भ्रंश के कुटिल जाल में रहता है !  
 चिन्ता उसकी जो सन् पथ से बनराया-सा,—  
 जो ईर्ष्या के कारण सदैव मुख्याया-ना  
 चिन्ता उसकी जो धन-धमण्ड में घूर-घूर,—  
 जो विनय, विवेक, और विद्या से दूर-दूर !

चिन्ता उनकी निम्ने न कुटुम्बी भाव तनित्र,—  
 जो हर विधि से गोपव हर विधि से मदा वणिक्  
 चिन्ता उनकी जो ज्ञान-गुन्य होकर जानी,—  
 सतुलित न जिनकी कोई लोभ-रञ्जित चाणी !  
 चिन्ता न करो दशरथ की अब हे नम्र भग्न !  
 करना है उनके आत्म-वचन का ही स्वागत  
 है किचा राम ने जिन प्रकार आज्ञा-पालन,  
 तुम भी सहपं न्यीकारो नोत्तल-निहानन  
 कन्याण इनी मे है कि सन्हालो गज-काज  
 मेरी ही नहीं सभी की इच्छा यही आज  
 आदेश शासन का यही लोकमन यही, भरन !  
 करना है पालन तुम्हें अपाध्या-शानन-व्रत  
 चौदह वर्षों तक तुम्हें किरीट करो धारण  
 चौदह वर्षों तक करो प्रजागण का पालन  
 है यही राम की भी इच्छा तुम गज्य करो  
 सक्कट की विकट घड़ी मे नव उत्साह भरो !"

बोले भुमन्न, 'गुरु की आज्ञा हो शिरोधार्य  
 है रामानुज ! प्रारम्भ करें अब राम-नाय'—  
 बोली कौमन्या, तुम्हीं एक ध्रुवतारा हो—  
 वेटा ! इस समय तुम्हीं तो एक सहारा हो !  
 है राम और तुमने मचमुच ही अन्तर क्या !  
 तुम नहीं भला रघुकुट के प्रिय पद्याकर क्या ?  
 निर्मल नृप का शानन भी तो निर्मल होगा  
 उत्तम कार्यों का उत्तम ही तो फल होगा !  
 इस समय एक अवलम्ब तुम्हीं—अवलम्ब तुम्हीं  
 इन कठिन घड़ी मे प्रिय, प्रकाश के स्मरुम तुम्हीं  
 कुलगुरु-आदेश मान कर भार सन्हालो अब  
 नूने सिंहासन की सहपं अपनाओ अब'



सुन स्नेह-वचन, नयनो मे करणा वा पानी  
 है अमृत-तुल्य मृदुभाषी माता की वाणी  
 पर-सुत की भी सुन समझे, वह माता प्रणम्य  
 छलक में जो सदैव, वह नहीं क्षम्य !  
 बोले सविनय थीभरत, 'सुना गुरु-वचन मधुर  
 पावन माता की छवि ग अकित प्राण-मुकुर  
 सहृदय मंत्री का कथन नहीं अनुचित कुछ भी  
 सुनकर सब कुछ मैं इस क्षण प्रेम-विभोर अभी  
 गुरुजन-उपदेश सुधा-सिंचित, अति हितकारी  
 जो नहीं मानता इसे, न वह घर्माचारी  
 करना न उचित है तर्क बड़ा की बातों मे  
 पर घिरा घिरा मैं दुःख के ज्ञानावातो मे ।  
 साहस बटोर कर मन कुछ कहना चाह रहा  
 अपना ही मन अब अपन को है धाह रहा  
 मैं देगुँ अपन को कि आपको या जग को ?  
 पकड़ूँ किस मग को किस मग को—अब किस मग को ?  
 है एक ओर साधन, आराधन एक ओर  
 है एक ओर स्थिरता, परिवर्तन एक ओर  
 है एक ओर प्रभु-प्रेम, प्रशामन एक ओर  
 है एक ओर रघुवर, सिंहासन एक ओर ।  
 है एक ओर वामना, भावना एक ओर  
 है एक ओर मुखराशि, अर्चना एक ओर  
 है एक ओर छल-शक्ति, स्नेह-गति एक ओर  
 है एक ओर अदलील, श्लील मति एक ओर ।  
 है एक ओर श्रद्धा, सुभोग है एक ओर  
 है एक ओर सयोग, योग है एक ओर  
 है एक ओर विश्वास, मोह है एक ओर  
 है एक ओर आज्ञा, विछोह है एक ओर ।  
 है एक ओर उत्तम, सर्वोत्तम एक ओर  
 है एक ओर आनन्द, और भ्रम एक ओर  
 है एक ओर माधुर्य, मुगमता एक ओर  
 है एक ओर मन्तोष, शुभमता एक ओर ।

है एक ओर बनवाम, अयोध्या एक ओर  
 है एक ओर गुचि सत्य, नृमिथ्या एक ओर  
 है एक ओर आत्मा, शरीर है एक ओर  
 हैं एक ओर नासैं, समीर है एक ओर ।  
 पकड़ूँ किन मग को ?— अपनाऊँ किन नरणी को ?  
 अपनाऊँ इस तरणी को या उस तरणी को ?  
 किम मुँह से टहराऊँ घटना जो घटी यहाँ  
 ऐसा अनर्थ इस भूमण्डल पर हुआ कहीं ।  
 माता ने ही माताओं को दुख पहुँचाया  
 जब उजड़ गया घर तब बाहर से मैं आया  
 मेरा बलक मुझसे ही तो मिट सकना है  
 पद का मिथ्या गौरव बचनक टिक सकना है ?  
 माना कि काल का प्रबल चक्र चलता रहता,—  
 इसके कारण ही मन को मन छूँता रहता  
 पर मानव का क्या धर्म कि सबको छुँता करे,—  
 या निज विवेक से मानवता का भंग करे ?  
 भाई का क्या अपराध कि उन्हें अरण्य-दण्ड ?  
 किन उल्का से महत्ता स्नेहम्यक्त खण्ड-खण्ड  
 कुल का महत्त्व भी नष्ट हुआ मेरे कारण  
 भाई की अतिशय वृष्टि हुआ मेरे कारण  
 लोभी माता ने मातृधर्म को भुका दिया,—  
 अपने हाथों से स्नेह-दीप को बुझा दिया  
 जाने न दिया मेरी अर्द्धाङ्गिणी को वन में  
 मन की इच्छा रह गई हाथ, उनके मन में ।  
 वैदेही की कुछ तो सेवा वह करती ही  
 कम-से-कम जगल में पानी तो भरती ही  
 है धन्य बन्धु लक्ष्मण जो सब दिन साथ रहा  
 उसके मन्तक पर मदा राम का हाथ रहा ।  
 पत्नी को छोड़, गया वन में वह अनुज वीर  
 चन्दन-समान पावन समवा कोमल शरीर  
 सारी घटनाएँ घटीं, मात्र मेरे कारण  
 माता निज पथ से हटी, मात्र मेरे कारण !

दूसरा कौन पापी जग मे मेरे समान ?  
 मेरे कारण ही अस्त अवध-दिनमान-प्राण !  
 मुझ-मा जघन्य पापी, राजा के योग्य नहीं,  
 कोसल-वसुधा वस्तुन भरन-हित भोग्य नहीं ।  
 राम के बिना मेरा कोई क याण नहीं  
 सच कहता है, शासन पर मेरा ध्यान नह  
 जीवित है दुस्सह दुःख मे भी यह भी अनर्थ  
 मेरा जीवन हो गया व्यर्थ—हो गया व्यर्थ ।  
 कह गए आप जो कुछ, उसमे अति स्नेह मोह  
 मुझसे नभव यह नहीं, करूँ मैं आत्म-द्रोह  
 लगता कि कुटिल जननी ने जाल बिछाया फिर  
 लगता कि लोभ का घादलदल अब आया फिर  
 लगता कि एव के बाद दूमरा नरक मिला  
 लगता कि पाप का पक्ष पक्ष मे पुन खिला  
 लगता कि अमृत-फल मे विष-रस है भरा हुआ  
 लगता कि नृपति-वरदान अश्व-मा अढा हुआ  
 लगता कि चतुर माता माया-रण छेड रही—  
 छल के कृपाण से अभी मुझे ही घेर रही  
 कितनी चतुराई मे सारा मैदान साफ  
 बनवासी मेरे राम, पिता के प्राण साफ ।  
 अब गद्दी मेरे लिए ! घन्य जननी मेरी  
 हे कुटिल शक्ति ! कितनी मोहक माया तेरी  
 तेरी इच्छा के शब्द आज फिर सुनता है  
 विष-शब्दमुमन को हाथ, कान से चुनता है !  
 तेरे ही मन की बात आज सब कहते हैं  
 मेरे ये कल्पित प्राण सभी कुछ सहते हैं  
 भगवान ! भरत के पापों का उद्धार करो  
 हे राम ! अनुज का प्रेमाश्रुज स्वीकार करो !'

बहते-बहते हो गए भरत मूर्च्छित कुछ क्षण,  
 आत्मज का वरण वचन सुन, विह्वल जननी-मन

बोली कैंकेयी 'मू यवान हैं पुत्र-प्राण,—  
 जो वहे भरत देना है उन पर हमे ध्यान !'  
 कौमल्या झिझक उठी— तू यह क्या कहती है ?  
 भावुकतावश तू भी आंसू-सी कहती है ?  
 सिंहासन रिक्त रहेगा क्या ? तू बैठ उधर,—  
 जा रही विधर ? जा रही विधर ? जा रही विधर ?'

सुन कौमल्या का वचन भरत को करण तोप  
 कुम्हलाने लगा अचानक शक्ति आत्म-दोष  
 सहसा कैंकेयी आई पुत्र-निकट सत्वर  
 बोली वह अपने मुन को बांहों में भर कर,—  
 'तेरी माता से हुई भूल, दे दण्ड मुझे  
 कर वही भरत ! इस क्षण जो अच्छा लगे तुझे  
 सबसे मैं क्षमा मांगती हूँ कि चूक मेरी  
 देखी भाई के प्रति हे भरत, भक्ति तेरी !  
 हूँगी निवाल आज ही मन्थरा को घर से  
 आई थी मुख में गरल लिए वह नैहर से  
 उसकी बातों में आकर मैंने पाप किया—  
 देवता-तुल्य रघुवर को ही वनवास दिया !  
 दासी का उतना दोष नहीं जितना मेरा  
 तोडा मैंने ही कुल-मर्यादा का घेरा  
 मेरे मानम पर स्वार्थ-सर्प चट गया हाथ,  
 मेरे पापों के शमन-हेतु अब क्या उपाय ?  
 मेरे हित कोई भी कुदण्ड पर्याप्त नहीं  
 अनगिन जन्मों तक होगा पाप समाप्त नहीं  
 मेरे कारण ही अन्धकार आ गया घोर  
 मेरे कारण ही अगजग में अति दुःख अछोर !  
 मेरे कारण माताओं का अपमान हुआ  
 मेरे कारण ही अस्त अवध दिनमान हुआ  
 मेरे कारण मेरी बहनो को असह व्यथा  
 कैंकेयी अबध-काण्ड की अनुपम कुटिल क्या !

सीता को कष्ट दिया केवल कँकेयी ने  
 लक्ष्मण को दुखी किया केवल कँकेयी ने  
 उर्मिला अकेली हुई हाय, मेरे कारण  
 मेरे कारण ही गोकाकुल ममस्त जनमन ।  
 मेरे कारण सरयू उदास, प्रामाद मौन  
 मेरे कारण अवतक दुस्मह अवसाद मौन  
 हे भरत ! तुम्हीं इस भाता का उद्धार करो—  
 तुम परशुराम-मा मुझ पर बाण प्रहार करो ।

—इतना कह कर कँकेयी कौसल्या-सम्मुख—  
 हो गई खड़ी, भर कर नयनों में मँघिल दुख  
 चरणों पर गिर कर कहा कि 'तू तो क्षमाशील',  
 हे देवि ! लोभ के कारण ही मैं बनी चील ।'

—इतना कह कर वह गई सुमित्रा के समीप  
 खुल सके न उमके सम्मुख उमके नयन-सीप  
 निकला न कठ से एक शब्द, इननी पीडा  
 देखी बमिष्ठ ने—भवने, दुख की यह त्रीडा ।  
 छल्की वरुणा कौम-या की आँखों में अब  
 सहृदयता में ही स्नेहसूघा-सरि का उद्भव,—  
 'सब किया बाल ने, कोई दोष नहीं तेरा  
 है भरत राम के ही ममान प्रिय सुत मेरा  
 करना है जन्दी ही इसका राज्याभिषेक  
 खो मत रोकर तू अधिक प्रणामनमय विवेक  
 तैरे आँसू ने आँसू ही उत्पन्न किया  
 तू ने सबके प्राणों को ही शकशोर दिया ।'

जननी का पश्चात्ताप भरत के लिए सुखद  
 पर, मारी घटनाएँ लगती अब और दुःखद  
 माता के कारण पितृ-भृत्यु, भ्राना-विछोह  
 मेरे कारण ही सबल विज्व में आह-ओह ।

—घोले कँकेयीनन्दन 'मैं तो राम-दान  
 अबतक रहता मैं पद्मचरण के बहुत पाम

पर, धाड़-जर्म के वारण वन में जा न सका,—  
 अपना पहला कर्तव्य तुरन्त निभा न सका ।  
 मेरी जननी अब क्षमा राम में मागेगी  
 अपराधी बाह उन्ह वक्ष में भर लेगी  
 अपना मन्त्र पर उनका पग मैं रख लूँगा  
 जो कहना है श्रीरामचन्द्र से कह दूँगा  
 हे कुत्रगुरु ! इच्छा न विरुद्ध कुछ कह न अब  
 क-याण नहीं होगा जि राम लौटगे जब  
 इन समय धधवनी मरे उर में विरह-आग—  
 मेरे मन में इस समय अयोध्या से विराग  
 जी लगा हुआ है उधर इधर देखूँ कैसे  
 चलना है प्राण ही मुझको जैसे जैसे  
 है आत्म-शान्ति सभय प्रभु के ही दर्शन से  
 पानी है कृपा मुझे उनके उर-ओचन से ।  
 वे क्षमाशील, वे दयावान, वे गुणातीत  
 स्वीकारेंगे—स्वीकारेंगे वे मजरा प्रीत  
 लौटा लूँगा मैं उन्हें, आत्म-विद्वाम यही  
 है नहीं भरत की, उनकी है यह अरुण-मही  
 धिक् ! मैं वैदूँगा भग राम-सिंहासन पर  
 अधिकार करेगा मागर पर छोटा निर्रर ?  
 यह आग्रह नहीं, दुराग्रह है अनि मोह-भरा  
 मेरे हित यह अनुरोध प्रेम-विद्रोह-भरा ।  
 उत्तम आदेश नहीं यह, इसमें राजनीति  
 इस आज्ञा में दायित्व, नहीं इसमें प्रतीति  
 विपरीत भाव सुन-सुन कर उर अत्यन्त दुखी  
 मैं नहीं राम जो अनि दुख में भी सहज सुखी !  
 मैं तो साधारण जन,—साधारण भाई हूँ  
 उम ज्योतिपुष्प के चरणों की परछाई हूँ  
 सिंहासन पाने को मुझसे कह रहे आप ?  
 जननी के पापों से भी तो यह बड़ा पाप ।  
 कदु मत्य-वचन के लिए क्षमा मैं माँग रहा  
 कहना जो चाहा उसे ठीक से नहीं कहा

दुस्मह दुख के कारण गन्दो मे नही शक्ति  
 मेरे मन में तो मान एन श्रीराम-नक्ति  
 वृद्ध रहे विना ही मुन लगे वे हृदय-जोड  
 करते न किसी से वे जीवन मे मोरजोड  
 मेरे अग्रज भगवान प्रेम क भूषे ४  
 सटी उनसे मां तिनतु नही वे सठे है  
 उनको जिमने भेजा वन में अब दुषी वही  
 उर के अनुकूल आज जननी न वान बही  
 हे प्रभु ! यदि भरन यहाँ रहना तो जाते तुम ?  
 मेरे प्रेमाग्रह को भी क्या रुकगते तुम ?  
 अदमर न आज तक मिग कि तुम सठे मुझसे  
 वम, मिग स्नेह ही स्नेह मदा केजठ तुमम  
 हा ! शोक-काठ मे 'तुम' निकरा मेर मुख से  
 हो जानी धाणी भी अटपट अनिगय दुख से !  
 आज्ञा दे हे गुन्देव, नि कए प्रस्थान करूँ  
 आज्ञा दे मानाएँ कि अरप्य-प्रयाण करूँ  
 आज्ञा दे सभी आमाम्य समामद, पटिन, जन  
 जाऊँ जन्दी, जाऊँ ज दी, ज दी अब वन !  
 अपनाएँगे—श्रीराम मुझे अपनाएँगे  
 भाई के मग-सग ही भाई आएँगे  
 माँगूँगा मैं ही भिक्षा उनके जाने की  
 उत्पटा अटल, अटूट चरण-रज पाने की !  
 है चित्रकूट मे राम, मुझे यह हुआ ज्ञात  
 वह मुन्दर वनस्यली जिममे गिरि-जलप्रपात  
 अच्छा होता यदि परिजन-पुरजन चलें सग  
 अच्छा ही रहता माय चले यदि संन्य-जग  
 यदि चलता थमिक वगं तो होना पय-सुधार  
 होने प्रमन्न इससे रघुवर लोटती वार  
 यदि गन्दे बुएँ-पोखरे हो जाने निर्मल,—  
 सानन्द सभी पीते तब उनके भीठे जठ !

सुन भरत-वचन, कुलगुरु-भ्रमेत सब आह्लादित  
 भ्राता के प्रति अनि भक्ति देख कर चित्त चकित  
 यह जान कि भरत राम को लौटा लाएंगे—  
 बोले कुछ लोग तुरत— हम भी वन जाएंगे'  
 कौसल्या के दृग में प्रनम्रता मजल-सजल  
 गभीर सुमित्रा की आँखें भी अश्रु-धवल  
 कंकेयी की पङ्क्तो पर उज्ज्वल अश्रु-विन्दु  
 लहराना-सा सबके उर का उत्साह-मिन्धु  
 शोक के सघन घन पर आशा-चन्द्रिका म्विली  
 विश्वास-वायु से आस्था-पुष्पित लता हिरी  
 अब भरत-अधर पर नुधि-मिचिन मुस्वान एक  
 वन रहा दण्ड-सन्ताप रचिर वरदान एक !  
 मन के मुरझाए फूल खिल रहे आशा में  
 टपकी अभिलाषा-सुधा भरत की भाषा में  
 निश्चल भाई का त्याग विश्व-आदर्श बना  
 श्रद्धालु हृदय का प्रेम त्याग-उत्कर्ष बना ।  
 उठ गई सभा आशा में नव विश्वास लिए,—  
 श्रीराम-मिलन का स्नेह-विकल उल्लास लि।  
 शोषित जन-मन को सुखद महारा मिला एक  
 दुख के सागर को प्रेम-किनारा मिला एक ।  
 घर-घर में चलने की चर्चा, तैयारी भी  
 सीता-दर्शन-हित विकल अयोध्या-नारी भी  
 दूटे रथ को भी ठीकठाक कर रहे सभी  
 यात्रा की ऐसी उत्कठा पहले न कभी  
 किंचित् न अरक्षित रहे राजधानी पल भर,—  
 यह सोच, भरत ने सभी प्रवन्ध किए दृटतर  
 हो गए सतर्क सभी शान्त-अधिकारीगण  
 सब विधि सुरक्षित महानगर औ' राजभवन  
 हो जाय राम का राजतिलक . प्रय वन में,  
 ऐसा विचार उठ गया भरत के मृदु मन में  
 कुलगुरु-मन्त्री के बीच हो गया यह निर्णय,  
 यह सुन कर तो खिल गया और भी सरस हृदय !



सध्या मे जन-पथ पर यात्रा की वातचीत  
 कहते हैं सब कि भरत का उर कितना पुनीत  
 सुधि-भरे नयन मे अर्ध रात तक नीद कहा !  
 अटका-अटका-भा आवुल मन, श्रीराम जहा ।  
 निशि-नमित भोर से ही पथ-पथ पर चहलपहल  
 सुन टिन्कि-टुनुक, घघर-रव अति हर्षित हृत्तल  
 सुन्दर प्रभात मे शुभ यात्रा-प्रस्थान दिव्य  
 श्रीराम-मिलन-हित भव्य भरत-अभियान दिव्य  
 आगे रथ पर मुरदेव वसिष्ठ, तपस्वीजन  
 पालकियो पर माताएं, बधुएँ, नारीगण  
 उनके पीछे शत्रुघ्न-भरत सुन्दर रथ पर  
 थोडे, हाथी से सज्जित सना भी पथ पर  
 पीछे-पीछे पैदल ही पैदल अनगिन जन  
 लहरो-सा आगे भाग रहा उत्साही मन  
 पैदल ही चलने लगे भरत-शत्रुघ्न हाथ,  
 चिन्तित ब्रुलमुरु-माता-मनी : अब क्या उपाय ?  
 क्या बात कि ऐसा निर्णय दोनो भ्राता का ?  
 दुखने लग गया हृदय कौमत्या माता का ।  
 घुमवा कर निज पालकी, भरत से कहा—'तात ।  
 तेरे पैदल चरने से सबके दुखी गात  
 हम रहे सवारी पर कैसे, जब तू पैदल ?  
 तेरी इम प्रेम-दशा मे मुनिजन भी विह्वल ।'

—सुन मातृवचन, शत्रुघ्न-भरत बैठे रथ पर  
 चलते-चलते सहसा वादलमय अब अम्बर  
 चलते-चलते तमसा-तट पर पहला पहाव  
 श्रीराम-स्मरण से प्राणो पर पावन प्रभात  
 चलते-चलते गोमती-नीर पर नव निवाम  
 सादे-सादे भोजन से ही मन मे हुलास  
 अब थू गवेरपुर के मभीप हैं यात्रीगण  
 सुन भरत-आगमन, गृह का तदक्षण चिन्तित मन  
 'कैये-भीमुत सेना-समेत ? क्यों,—ऐसा क्यों ?  
 श्रीरामचन्द्र से ईर्ष्या उभवी ज्यो की त्यो ?

धिक् नरत । तुम्हारे कारण ही वे निर्धनित  
 इन पर नी तुम जा रह वहाँ अब नैन्य नहित ?  
 वन्धुव त्याग कर नाभनीय क्या शत्रु भाव ?  
 हूँगा म पार उतरन का काई न नाव  
 रोकगा आज निपादराज मनाआ को  
 रोकगा गुह आनवागी विपदाआ को  
 काटनी सना को निपाद की मनाएँ  
 प चानी ही होंगे अब रिपु का बाघाएँ ।  
 हे दून ! नुरत ही पवन-मदून प्रन्थान करो—  
 अपनी निपाद सना का भव आह्वान करो  
 घोषित कर दो कि शत्रु न सतका लडना है  
 मारना उन्ह है या हम मव को मरना है ।”

दिलगई पनी तुरत नौका-मना अपार  
 गगा धारा पर राम-नाम का महान्चार  
 अनगिन सैनिक तूणीर-नीर से रण-सज्जित  
 हिन्दोनि जग म तजस्वी मुख प्रतिविम्बित ।  
 सनाआ का उत्साह देख, गुह उत्साहित  
 उत्क्रान्त शिराओ म गतिमय शोणित बाहित  
 तट पर भी सेना-धूह सनक-सतक तुरत  
 वीरत्व विभा स प्राण-प्रदीप्त सामरिक व्रत  
 अवधी आँधी आ रही उधर से धूल भरी  
 है उधर निपाद प्रमजन नक्ति सहर्ष खडी  
 बोले गुहराज कि 'सेनापति ! अब शत्रु निकट  
 कुछ आगे वड कर भी देना है पथ सकट  
 पर, सेनाओ मे नहीं युद्ध का हाव भाव  
 है नहीं भरत को रामचन्द्र से क्या दुराव ?  
 शस्त्रध्वनि आनी नहीं, न आता तूर्यनाद  
 उत्तेजित वातावरण नहीं, लक्षित विपाद ।  
 जयकार नहीं कोई गुजित । ललकार नहीं  
 सागर की लहरो मा कोई हु काग नही

क्या भरत राम मे मिलने वन मे जाते हैं ?  
 पर, चतुरगिणी शक्ति लेकर क्यों आते है ?  
 आगे कोई भी दूत नहीं । दुविधा म मन  
 क्या करना उचित रहेगा हमसब को इस क्षण ?  
 जल्दी मे बिना विचारे काम त्रिगडता ह  
 कुछ सोचे-समझे बिना, मूर्ख ही टडना ह ।  
 निर्दोष व्यक्ति पर उचित नहीं कोई प्रहार  
 भेजना चाहिए किसी दूत को एक बार  
 पर, धर्महीन यदि रिपु, तो बोलो क्या करना ?  
 सीखा है हमने नहीं दुर्जनों मे डरना  
 रणनीति परिस्थिति पर ही निर्भर करती है  
 कायरता प्रोद्यत आँखो से भी डरती है  
 लडने को हम तैयार किन्तु कुछ धैर्य धरें  
 केवल अनुमान लगा कर हम कुछ नहीं करें  
 जो समझ-बूझ कर सत्य-मार्ग पर चरुता है,—  
 वह कभी न अपने को जीवन मे छलता है  
 लो, दो अश्वारोही आ रहे इधर ही तो  
 हे दूत । उधर जाने के पहले तनिष रवो ।"

दोनो अश्वारोही नतमस्तक गुह-सम्मुख  
 मुन भरत ध्येय, चिन्तित मन मे अब मुल ही गुल  
 मथी के कानो मे गुह ने कुछ कहा तुरत  
 फिर बोला दोनो सैनिक स—'हैं वहाँ भरत ?'  
 अब प्रेम-विभोर निपादराज ज्यो राम-मिठन  
 दोनो के नयनो मे दोनो के मजल नयन  
 दोनो ही राम-भक्त दोनो से आर्त्तिगत  
 दोनो की प्रेम-दशा से मुनि-मन आनन्दिन !  
 रघुकुलगुरु ने गुह को छाती से लगा लिया  
 ऋषि-गौरव के अनुकूल विमल आशीष दिया  
 तब वहा भरत ने—'गंगा पर क्यों जलसेना ?  
 चाहते धनुर्धर क्या इस घटी प्राण लेना ?

तो हे निपादपति ! कहो उन्हें, दें मुझे मार  
कर दें वे मेरे वक्षस्त्र पर शर-प्रहार  
मेरे ही कारण हुए राम वन के वासी  
में ही तो है वह अपराधी सत्यानाशी !

सुन भरत-शब्द, गुह का अन्तराव आत्म-द्रवित  
अग्रज के प्रति दृढ़ आस्था से मन-प्राण चकित  
आतिथ्य-ग्रहण के लिए प्रसामय विनती  
कोमल-कोमल शब्दों की कान करे गिनती !  
प्रेमामृत से धोए-धोए-से वाक्य सभी  
राम की मन्त्र-वाणी से भरत विनोर अभी  
झरती आँखों से सुधि-रजित अब अश्रु-सुधा  
इस अर्चन से पूजित गगा-तट की वसुधा !  
बोले रामानुज . 'मेरे सग असुरय लोग  
हैं सबके लिए असह-दुस्सह रघुपति-वियोग  
अच्छा होता कर देते सबको अभी पार  
आतिथ्य ग्रहण करते हम सब लौटती वार !—  
तब रहते सबके सग प्रमन्न अयोध्यापति  
तब दिखाई पड़ती उद्यम में नूतन गति  
पर, अभी शीघ्र चलना ही सबका काल-धर्म  
कैसे मैं प्रकट करूँ विछोह का प्राण-मर्म !  
तब यहाँ किन्तु मन राम-चरण पर झुका-झुका  
उस चित्रकूट में ही उर का आवेग रुका  
बस, कर दो सबको पार ताकि कुछ और चले  
जितना हम निकर सकें उतना भी तो निकलें !'  
गुह बोल उठा—'है राम-तीर्थ यह गगा-तट  
सोए ये जिमके नीचे प्रभु, यह है वह वट  
रामाशर अमित जहाँ, वही है राम-घाट  
रहना ही होगा सबको इस तट आज रात !  
भोरे-भोरे हम सबको पार उतारेंगे  
पर आज अभी तो सबका चरण पक्षारेंगे

मेरी पूजा जिनके भाई ने री स्वीकृत,  
 उनके आने ने नयन-प्राण-मन आज मुदित !  
 हे भरत ! आपका रूप राम से मिलना है  
 आपको देख कर हृदय कमल-मा खिलता है  
 अपराधी मान लिया है क्यों अब अपने को  
 कीजिए पूर्ण अपनी इच्छा के मपने को !  
 प्रभु के उर मे हैं आप, आपने उर मे प्रभु  
 है मत ! आपकी सांसो के हर मुर मे प्रभु  
 आपके स्मरण से उनकी आँख छलकी थी—  
 स्नेही आँसू मे उज्ज्वल आभा झलकी थी !'

गुह के आत्मीय वचन ने मन को मना लिया  
 उम राम-नीर्य ने सबको निशि भर टिका लिया  
 गड गए शिविर, बस गई एन बस्ती तट पर  
 उम रामघाट पर लिखा भरत ने प्रेमाक्षर  
 प्रिय भक्त निपादराज ने अति सत्कार किया  
 सबने मन-ही-मन उसका जयजयकार किया  
 उम अनामक सेवा से भरत विभोर हुए  
 मन के मेघो को देख, सभी दृग मोर हुए !  
 सारी जलसेना सेवा मे तल्लीन हुई  
 अलमित आँखें निद्रा के स्नेहाधीन हुई  
 एकान्त रात मे किया भरत ने तट-पूजन  
 श्रीराम-शयन-भू के समीप नयनो मे घन !  
 नयनो मे घन, नयनो मे घन, नयनो मे घन  
 गुह की स्मृति-वार्ता मुन-मुन कर मेघिल चितवन  
 अग्रज के अनुमानित दुस्व से बम्पित तन-मन  
 निशि भर नयनो के मुग्धि-पथ पर स्वप्निल विचरण !  
 सूर्योदय के पहले ही सब उस पार हुए  
 चलने की वेडा वार-चार जयवार हुए  
 आगे की यात्रा मे निपादपति भरत-मग  
 श्रीराम-मिलन के लिए हृदय मे नव उमंग !

यह जान कि रघुपति पैदल गए यहाँ में वन,  
 चल पड़े मार्ग पर अनुज-मित्र-संग भरत-चरण  
 रथ पर न चटे वे माता के कहने पर भी  
 छत्र का न आश्रय, तपन घष सहने पर भी !  
 सयोग कि नभ में पिछले दिन-ना फिर धादल  
 शीतल समीर के बहने से यात्री अविफल  
 मन पर प्रिय-मिलन-वियल्ला ही छितराई-भी  
 मानो तन-मन पर पड़ी राम-परछाई-सी !  
 बातों ही बातों में दूरी बटनी जाती  
 आँखें प्रयाग-दर्शन-हित अनिश्चय अबुल्लातीं  
 कहता है गुह कि त्रिवेणी-सगम अति पावन  
 ये रके वहाँ सीता-समेत राम-ऋमण !'  
 प्रभु की चिन्ता में ही निमग्न यात्री पथ पर,  
 पहुँचे प्रयाग में भन्त आज तीसरे पहर  
 चलते-चलते पद-बमल हो गए लाट-लाट  
 रत गई त्रिवेणी के तट पर सेना बिनाल  
 उजली-नीली धारा पर टिके हुए टोचन  
 कर रहे राना श्रद्धा-पूर्वक अब आगत जन  
 अन्तिम स्नानार्थी भरत, भावना में विभोर  
 सगम की लहरो-सी वन्दनमय मन-हिलोर  
 जल-दर्पण में सीतापति की सुधि की झाँकी  
 सारस्वत मंगलता शुचि गंगा-चमुना की  
 तीनों पवित्रता से पुलकित अन्तर-प्रवाह  
 है भरत-हृदय भी अमृत-निधु-सा ही अयाह !  
 कैकेयीनन्दन आए अब आश्रम-वन में  
 मुनि भरद्वाज की दर्शन-अभिलाषा मन में  
 चरणों पर दशरथनन्दन का अर्पित प्रणाम  
 मुनिराज प्रसन्न हुए मुन कर प्रिय राम-नाम  
 श्रीरामानुज का किया प्रेम से आलिंगन  
 गद्गद् वाणी से झरे हृदय के स्नेह-नुमन :  
 हे त्याग-तीर्थ प्रिय भरत ! तुम्हारी जय निश्चित  
 मैं नहीं अयोध्या-घटना से आश्चर्यचकित

जग की लीला हम ऋषियों से अनभिज्ञ नहीं  
हम देख रहे प्रज्ञा-लोचन से दृश्य मही  
स्पृह-समान दशरथ-परिवार सचेतन है  
रज-तम-सत् की शीटा ही तो जन-जीवन है ।  
नदियों के सगम-मा ही विविध शक्ति-सगम  
नव रम-ममान ही प्रेम प्रधान भक्ति-सगम  
अन्तर्मन-आत्मा का सगम ही तो प्रयाग  
इसके दर्शन से ही तो मिल पाता विराग ।  
हे भरत ! तुम्हें हो राम-हृदय जिसमें प्रकाश  
सज्जनता में ही तो करते हैं सत वास  
तुम व्यक्ति नहीं, अभिन्यक्ति प्रेम की महिमा की  
तुम आलोकित सकार हृदय की गरिमा की  
जो तुम्हें जानता, मिलता उसको राम-तत्त्व  
राम ही जानते है कि भरत का क्या महत्त्व  
माकार प्रेम । मेरा प्रणाम स्वीकार करो  
है जहाँ कही रिक्तता हृदय में, उसे भरो !

सुनते ही यह, छलछला उठे दोनों लोचन  
लज्जा में डूब गया दो क्षण प्रिय-विरही मन  
बैठाया मुनि ने उन्हें स्नेह से आसन पर  
अब अनायास ही बढ़ गया वातो का स्तर .  
हे भरत ! निपाद-नृपति ने सब कुछ कहा अभी  
दुम्मह दुष्ट भी आता जीवन में कभी-कभी  
इन्द्रिय-दशरथ के भाव-चक्र फँस जाने भी  
अनि ओह-मोह से सबकुछ प्राण अकुण्ठते भी !  
मनिभ्रान्त कामना-बँकेयी जब हठ करती,  
तत्र धर्म-मार्ग पर भी कुनोनि तम-पग धरती  
ईर्ष्या के कारण रुह जाना नत्यामिपेन  
देती है कलह-मन्यरा वाघाएँ अनेक  
नव, कपट-रूपट में ममता-श्रीम-या त्रिचरित  
साधना-सुमित्रा गृह-अशान्ति से चुप, चिन्तित

जब सत्य स्वयं निर्वासित निज आभा-भ्रमेत,  
 तब क्यों न अयोध्या वने शोक का दुख-निकेत ?  
 हे भरत ! इस समय तुम्हीं प्रेम-आलोक एक  
 विखराता आशा-किरण तुम्हारा ही विवेक  
 प्रभु वही, जहाँ पर प्रेम दिखाई पड़ता है  
 वह जहाँ, वही आनन्द-कुसुम भी झरता है !  
 हो जाता यदि आसंग प्रेम मिहासन पर,  
 दोषी कहलाना नहीं कभी उज्ज्वल अन्तर  
 लेकिन हे प्रेम ! सदा से ही नुम त्याग-रूप  
 सहृदयता के कारण तुम बनते नहीं भूप !  
 हे भरत ! प्रेम में तुमने जग को जीत लिया  
 शिव के समान तुमने भी तो विषपान किया  
 सिंहासन पर तुम नहीं, तुम्हारा अमृतकण्ड  
 है अमर तुम्हारा अगजग में प्रेमोज्ज्वल यश  
 हे प्रेम-प्रयाग ! तुम्हारा दर्शन-तीर्थ विरल  
 पावन सबके-हित अन्त करण-त्रिवेणी-जल  
 मन-वचन-कर्म में ममरसता ला सके तुम्हीं  
 हे राजहस ! अनुपम मानस पा सके तुम्हीं !  
 सर-सहज सिद्धि तो पुण्यवान ही पाता है  
 कोई कोई ही साथ सभी कुछ लाता है  
 सच कहता हूँ हे भरत ! आज मैं हुआ धन्य  
 तुमसे उत्तम शुचि प्रेमपुरुष है नहीं अन्य !

सुन भरद्वाज मुनि-वचन, सभी अति आनन्दित  
 पर, शीलशिरोमणि भरत स्नेहवर्ण कमल-नमित  
 निज प्रेम-प्रशंसा सुन कर उनके नयन सजल  
 राम के ध्यान में लगा हुआ मन प्राण-विकल  
 बोले सविनय वे—'हे मुनिवर ! सच कहता मैं  
 प्रभु राम-विना प्रतिपल उदास ही रहता मैं  
 लगती न भूख, आती न नाद, हँसते न अधर,  
 मेरे मन में उठती न कभी आनन्द-लहर



पीका पीका लगता सबकुछ, भवकुछ सूना  
 दिन पर दिन होता जाना है उर-दुख दूना  
 फिर भी मैं जीवित हूँ निज आशा के कारण  
 आया है हरिण-समान यहाँ तक मेरा मन  
 श्रीराम अयोध्या लौटें, यही पिपासा है  
 उनके चरणों में रहूँ यही अभिलाषा है  
 अब शोक पिता का नहीं, न दुख निज माना का  
 है शोच एक वनवासी अन्तर-ज्ञाता का  
 मुनिराज ! आप भवंज्ञ, आपस कुछ न छिपा  
 देखते तत्त्वदर्शी लोचन ही विश्व-प्रभा  
 कहिए कि राम कौन हैं ? कौन रहते हैं ?  
 वे किस प्रकार वन गूँठ रात-दिन सहते हैं ?  
 पादुका-रहित बल्ललघारी फल-आहारी—  
 हे देव ! राम-मीता-लक्ष्मण भी वनचारी ?  
 वृक्षों के नीचे भूमि-दायन कुश-शय्या पर ?  
 सुनता है, दुख ही दुख सहते कोमल-दिनकर !  
 मैं इसी ग्लानि-ज्वाला में प्रतिपन्न जगता हूँ  
 अपनी ही करुणा से अपने को छूँता हूँ  
 है मुझमें प्रेम कहीं ? मुझमें है त्याग यहाँ ?  
 मेरे प्राणों में वह उज्ज्वल अनुराग कहीं ?  
 मैं एक अशुभ ग्रह के समान ही दुखदाई  
 मेरे चलते वन में सीता,—वन में भाई  
 राज्याभिषेक हो गया स्थगित मेरे चलते  
 ससार हो गया शोक-चकित मेरे चलते  
 सब उलटफेर मेरे चलते, मेरे चलते  
 हर ओर व्याप्त है दुख-शबोर मेरे चलते  
 मैं निन्दनीय अपराधा का दृष्टान्त एक  
 मेरी जननी ने जला दिया मेरा विक्क !  
 मैं कुल-बल्लभ, मैं गरुड-डव, मैं तम-भयक  
 मेरे भूसे उर के सर में अब पाप-पक्  
 जलहीन मीन-मा छटपट-ठपट करता मन  
 हो रहा निरर्थक, राम विना मायंक जीवन !

मुन भरत-करण चीत्कार महामुनि प्रेम-द्रवित  
पावन लघुता से भीतर की उच्चता विदित  
यह सोच कि प्रेम सदा ममतल पर रहता है,  
इसलिए हृदय की बात हृदय ही कहना है !  
उतना ही ऊँचा वह, जितना है जो नीचे  
जिनमे जितना ही अहंकार, उतने फीके  
है नही भरत मे लगमात्र भी कोई मद  
जो साधु पुरुष, उसको न चाहिए कोई पद  
जग मे सर्वोत्तम प्रेम-प्रणामन ही होता  
सत्ता-विहीन सेवक ही जन-करणा टोना

—मन-ही-मन भरद्वाज ने आत्म-विचार किया,—

गद्गद् होकर अपना यह आशीर्वाद दिया :  
'साकेत-सत ! हो सफ़र तुम्हा से राम-कार्यं  
तुम करो सदा उनकी आज्ञा को शिरोधार्यं  
तुम बनो विश्व-वन्धुत्व-भाव के विजय-नेतु  
तुमसे रक्षित हो भारत का भ्रातृत्व-सेतु !  
हे राम-वन्धु ! स्वीकारो मेरा आमंत्रण  
करना है नवको आज रात आतिथ्य ग्रहण  
अबतर दो आश्रम को कि करे सेवा नवकी  
चलते-चलते संना भी होगी थकी-थकी'

विन्मय मे भरत कि मेरे सग अस्तव्य लोग  
कैसे सभव सबके हित भोजन का नुयोग ?  
जुट पाएगी नामग्री इननी किन प्रकार ?  
मुनिराज-हृदय मे आया कैसे यह विचार ?  
वोले दनरथनन्दन कि 'घन्य हम दर्शन मे  
क्या न्नेह आपका कम प्रस्तावित भोजन से ?'  
पर, भरद्वाज ने कहा कि 'आश्रम-इच्छा यह  
करना ही है स्वीकार आज मेरा आग्रह !'

बोले श्रीभरत कि 'आज्ञा का होगा पालन  
 आए हैं अवधपुरी से भी कुछ सेवकगण  
 कटिए तो उन्हें बुला लूँ हाथ बटाने को  
 क्या कह दूँ इसी समय हे मुनिवर ! आने को ?'  
 पर, भरद्वाज ने कहा कि 'व भी अतिथि आज  
 हैं अतिथि राजपरिवार, अयोध्या के समाज  
 हे भरत ! तुम्हारे अस्व-हस्ति भी आज अतिथि  
 आश्रम सक्षम है स्वागत हित मचमुच सब विधि !'  
 खिल उठे भरत सुन, भरद्वाज के मिद्व वचन  
 आ गए वहाँ पर गुरु वसिष्ठ भी तो उस क्षण  
 आसन से उठ कर भरद्वाज ने किया नमन  
 आलिंगन से खिल गए तुरत आनन्द-मुमन ।  
 आईं अभिवादन-हेतु राजमाताएँ भी—  
 कूलवधू-मग कतिपय विदुषी वनिताएँ भी  
 कौसल्या मुदित निन्तु कंवेयी श्रन्दितभी  
 उर्मिका स्वयं मुनि के द्वारा अभिनन्दित भी  
 दौ अश्रु-विन्दु पर एन मधुर मुस्कान दिव्य ।  
 आँसों में अटका-मा वियोग बलिदान दिव्य  
 माण्डवी मौन, श्रुतिवीरिनि मौन, उर्मिका मुखर,—  
 है मन में ही मन के उमड़ घुमड़ से स्वर !

मुनि भरद्वाज-सत्वार देख कर सभी दग  
 जैसा जिसना मन, वैसी ही स्वागत-नरग  
 रुचियों के ही अनुष्प तुभोजन, शय्या-मुख  
 शिविरो की नगरी में न कही कोई भी दुग ।  
 प्रत्यक्ष तपोबल से इच्छिन आनन्द-भोग  
 शोकान्धकार को मिटा रहा-मा मिद्वि-भोग  
 कुछ ही घड़ियों में सभी लोम निद्रा अधीन  
 केवळ दोनो दशरथनन्दन मुख में विहीन !  
 मुनि भरद्वाज ने कहा भरत में—'दुष्ठी न हो  
 क्या श्रुति रह गई, उमे हे तान ! तुरन्त बहो !'

पर, कुछ भी भरत नहीं बोले उस कुटिया में  
 रह गई राम-सुधि नयनो की निद्रा यामे ।  
 प्रात ही उजड़ गया मुनि का निशि-स्वप्न-म्वर्ग  
 ज्यो के त्यो तत्पर हुए भोर में यात्रिवर्ग  
 सम्पन्न त्रिवेणी-स्नान, ध्यान, मुनि-नमस्कार  
 प्रस्थान-काल में राम-नाम का महोच्चार  
 जिस पथ से राम गए, उन पथ में ही प्रयाण  
 आज भी मेघ से घिरा-घिरा अम्बर-विहान  
 कल के समान ही तो दिव-नभ की कृपा आज  
 बादल विलोक कर अति हर्षित यात्री-नमाज ।  
 वन-कु ज-कु ज में मोरपत्र भी गुले, गिले  
 खुलते-खिलते-ने फूल परस्पर हिले-मिले  
 आती-जाती-भी भृ गावलि भन-भन करती  
 झुरमुट में छिपी-झुपी मृगश्रेणी कुछ डरती  
 बोलाहल से उड़ते खगदर में भी कलरव  
 वन की गोभाएँ हरी-भरी मोहक अभिनव  
 हिनहिना रहे घोड़े, हाथी चिंघार रहे .  
 जो छूट गए पीछे, क्या उन्हें पुकार रहे ?  
 गुह भरत-सग आगे-आगे उत्साह-महित  
 अतिशय आशा के कारण आकुल-प्राण मुदित  
 विश्वाम-भरे मन पर छिटकी-भी मिलन-किरण  
 आत्मा के कारण आत्म-मवल मुधि-चित्रित मन !  
 आते-आते यमुना की नीरी धार मिली  
 गुह के प्रताप से नौकाएँ इस धार मिली  
 चलते-चलते पथ में पटाव, फिर नव प्रयाण  
 गाँवों के नर-नारी में नौतूल अजान  
 युवती कहती—'क्या रामचन्द्र वन्कलधारी ?'  
 'हैं साथ-साथ लक्ष्मण भी'—कहती वह नारी  
 कोई कहता—'सेना किनने लटने जानी ?'  
 कहता कोई—'लगता कि नभी हैं वाराती !'  
 पाठकी देख कर ग्राम-विद्योरी पुलकित-भी  
 रथ को निहार कर पोहनियाँ भी हर्षित-सी

नव वयू बोलनी— 'वर का पता नहीं चलता  
 गाजे-बाजे को नहीं देख कर मन खलता ।'  
 गाँवों के बच्चे अगल-बगल से निकल रहे  
 हाथी-घोड़े को देख, बहुत बड़े उछल रहे  
 पर, एक वृद्ध ने पीछे से कुछ पूछ लिया,—  
 प्रिय भ्रातृ-प्रेम के आगे मस्तक झुका दिया ।  
 सुत मत्स्य वान, महिलाएँ ओठ दवाती-सी,—  
 वे राम-मिलन के गीत अचानक गानी-सी,—  
 कुछ भरत-हेतु अकुशती-सी,—सञ्जुचानी-भी  
 कुछ मन-ही-मन कपना-मुचित्र बनानी नो ।  
 आते-आते आ गए सभी अब बहुत निकट  
 भीतर-ही-भीतर भरत-हृदय करना छटपट  
 यह जान कि सम्मुख चित्रकूट का उच्च शिखर,  
 अत्यधिक प्रेम से आह्लादिन कोमल अन्तर :  
 हे राम ! लाज लग रही मृदु, कैसे आऊँ ।  
 मैं किम प्रफार अपना उर-दर्पण दिखि-आऊँ ।  
 सकोच हो रहा है मन मे, आऊँ कैसे ।  
 हे नाथ ! आपके पद-रज को पाऊँ कैसे ।  
 हैं कहीं आप ? हैं किधर आप हे प्रभु महान् ।  
 आपके बिना सूना ही सूना भरत-प्राण  
 प्रेम के सिवा मुझमे कोई भी तत्त्व नहीं  
 आपके बिना इस जग मे भरत-महत्त्व नहीं ।'

सोचते-सोचते कंवेयीनन्दन चरते  
 आरती-शेष की भाँति प्राण-मन भी जलते  
 प्रभु की स्मृति-पूजा से पुण्ड्रित पावन शरीर  
 नयनों से झरना कभी-कभी आनन्द-शीर ।  
 इस ओर राम, उम ओर राम, हर ओर राम  
 मुग्ध के अवनी-अम्बर मे केवठ राम-मान  
 हो गया राममय चित्रकूट, स्थिति अब ऐसी  
 अन्तर्भावना अनीमित स्वयम् भक्ति-जैसी !

उन तन्मयता को देख, निपादनरेण चकिन  
 नख मे शिख तक श्रीराम भरत मे प्रतिबिम्बित  
 बोले शत्रुघ्न कि ' हे भाई ! अब चले विघर ?  
 सेना वैसे चउ पाएगी पगडण्टी पर ?  
 उठ रहा घुर्जा उस ओर, कदाचित राम वही  
 अच्छा रहता रुक जाते सैनिक अभी यही  
 इस समतल भू पर शिविर लगाए जा सकते  
 सबको हम सुविधापूर्वक यहां टिका सकते !'

इस ओर विविध चिन्ताएं, वन-आनन्द उधर  
 लक्षण की राम-कुटी सब विधि सात्विक, मुन्दर  
 उस पणकुटी को देख, राम-सीता हर्षित  
 भाई की शिल्पकला पर अग्रज-नयन चकित  
 उम दिन वैदेहीपति से अनुज प्रणमित अति  
 सुन कर सम्मति सानन्द मुमित्रामुन लज्जित .  
 'रच दिया स्वर्गं तुमन मोहक वन-वानन मे  
 हे बन्धु ! मगन मन चित्रकूट के आंगन मे !  
 हम भूल गए प्रामादो के सब सुख-मपने  
 अब तो जाने-पहचाने गिरि लगत अपने  
 तरुलता-रूत, खग-मृग, सरिता-निर्झर सुखकर  
 हे बन्धु ! हमारा चित्रकूट नैसर्गिक घर  
 इस वनम्यली को करना है मैं नित प्रणाम  
 लेता हूँ वाल्मीकि ऋषि का मैं नित्य नाम  
 तुलसी-दत्त उन्ह नित्य ही अर्पित करना है  
 वन-पथ पर उनकी मुधि मे सहज विचरता हूँ !  
 मगदमय चित्रकूट ऋषि-इच्छा के कारण  
 रम रहा राम का इस पर्वत-वानन मे मन  
 ऐसा लगता कि स्वय आत्मा बस गई यहां  
 ऋत्रिम नगरो मे नैसर्गिक आनन्द कहां !  
 सरयू के कारण शोभा बटी अयोध्या की  
 नदियों के कारण मरम भूमि है मिथिला की

गंगा-यमुना से अभिमिचित भूभाग धन्य  
 है धन्य दिव्य वासी, तीर्थेन प्रयाग धन्य !  
 यह आर्यावर्त महान, हिमालय के कारण  
 सुपमाओं से सम्पन्न विविध विन्ध्याचल-वन  
 दक्षिण-पथ को दूँदा अगस्त्य ऋषि ने केवल  
 उनके तप से ही कावेरी का पावन जल  
 हे बन्धु ! दक्षिणी छोर महासागर-मण्डित  
 पर, हम तो केवल दण्डकवन तक ही सीमित  
 हम नहीं कदाचित देखेंगे रत्नाकर को,—  
 सुन नहीं सकेंगे ज्वार-भरे गर्जित स्वर को !

यह चित्रकूट आनन्द-साधनाभूमि सुभग  
 नीचे से ऊपर जाने का पर्वत पर मग  
 गिरि-कृजों में भी पगटण्डी, निर्मला गुहा  
 प्रातः नगमाला पर आच्छादित श्वेत कुहा  
 'ऋषि-वरणों से सरणियाँ नित्य होती पवित्र'  
 — बोले स्नानार्थी राम कि 'देखो प्रकृति-चित्र,—  
 हे प्राणबल्लभे ! टुवकी अभी लगाओ मत  
 रुक जाओ क्षिप्र जानकी ! अभी नहाओ मत !  
 हसिनी हस के मग मृणाल मरोड रही  
 देखो—देखो दोनों पवज को तोड रही  
 पत्नी की खुशी हुई छाया हिलती जल में  
 मेरे तो दोनों लोचन दोनों उत्पल में !  
 देखो उन मुग्धों को जो उडते आते हैं  
 तट पर वे तीनों सारस पर फँसते हैं  
 देखो उस हरिणी को जो पीती है पानी  
 लो गूँज उठी उस आम्रकुंज से पिक-वाणी  
 फूलों की डाली देख रही जड-दपंग को  
 चारों मयूर हैं लुभा रहे मेरे मन को  
 है ढका हुआ पीठ फूटो से अमलताम  
 कितने मनमोहक हैं दोनों पुष्पित पलान

सीते ! यह मन्दाकिनी स्वर्ग में बहती है  
 इसकी जलधारा नित्य हमें कुछ कहती है  
 देवों के तीनों ऋषि उपासना में तन्मय  
 देखो वह मृगश्रेणी जो दौड़ रही निर्भय  
 लो, अब सरोज खिल गए सभी, अब करो स्नान  
 होने को है अब जल्दी ही स्वर्णिम विहान  
 हम आज करेंगे परिक्रमा कामदनग की  
 निरंतर में रख देंगे यकान अपने पग की !  
 दोपहरो में हम भील-कुटी में जाएँगे  
 उन बोल विरातो को भी कहो बुलाएँगे  
 बनवामी मानव में कितनी निदृच्छता है  
 सतोपी जीवन में न प्रलोभ-विक्रमता है "

इन भाँति राम के मुखमय दिन पटते जाते  
 मननो में मुखद निमर्ग-दृश्य अटते जाते  
 कहती बँदेही—'दण्ड बड़ा ही मुखकर है  
 इस चित्रकूट से उत्तम भी कोई घर है ?'  
 ऋषि-मुनियों का सत्सग शान्ति भरता मन में  
 फँसी है शान्ति-छटा गिरिमय वन-उपवन में  
 है भीतर-बाहर जहाँ शान्ति, है वही स्वर्ग  
 तन-मन आनन्दित जहाँ, वही निमल निमर्ग  
 निष्क्रिय भी तो हम नहीं, कुछ-न-कुछ करते हैं  
 मेरे ये हाथ बलश में पानी भरते हैं  
 रहती मैं अवधपुरी में तो यह करती क्या ?—  
 सरयू-नट जाकर नीर वभी भी भग्ती क्या ?  
 श्रमहीन नारियों का अमपत्र जीवन होता  
 केवल मुख-शय्या पर दुबल याँवन मोता  
 गृह-चार्य सम्हाले नहीं, भग्न वह भी नारी ?  
 नारी क्या केवल तन-वसन्त की फुटवारी ?  
 मुन्दरता तो इसलिए कि मुन्दर देने कर्म  
 कोमलता भी इसलिए कि हो मृदु बला-भर्म



है कर्महीन नारी ही जग मे घर्महीन  
 आलसी नारियो का मन हो जाता मलीन  
 हे नाथ ! सुनयना माँ ने दी थी यह दीक्षा  
 मुनि याज्ञवल्क्य ने भी दी थी नैतिक शिक्षा  
 कौसल्या माता से भी सीखी कर्म-नीति  
 सत्कर्मों पर सब दिन से सीता को प्रतीति  
 जितना अवकाश मुझे, उतना तो कर न रही  
 पयरीले पथ पर अब भी पग को धर न रही  
 देवर ही करता काम अधिक, मैं नहीं नाथ !  
 रह जाते हैं अकुलाते मेरे मृदुल नाथ  
 चन्दन भी घिसता वही, जलाता वही आग  
 पहरा भी देता वही रात भर जाग-जाग  
 देखिए अभी वह सूखी रकड़ी लाएगा—  
 फिर किसी काम के लिए तुरत अकुलाएगा !  
 लगता कि कर्म का घर्मदूत ही लक्ष्मण है  
 सेवा-सुलक्ष्य पर टिका-टिका उसका मन है  
 जाने क्यों आज बिलम्ब हो रहा आने मे  
 है हुई अमुविधा क्या समिधा को लाने मे ?'

भीलों के सँग दौड़ते हुए आए लक्ष्मण  
 सिर के बोझे को पटक दिया भ्रू पर तत्क्षण  
 आश्रीश-भरी आँखें लगती कुछ लाल-लाल  
 तमतमा उठा-सा मुख ज्यो शोधित महाब्याल !  
 बोले वे—'हे भाई ! अति दुस्मह समाचार  
 आ रही इधर ही आज शत्रु-सेना अपार  
 देखिए, घूल से भरा हुआ आकाश उधर  
 सज्जा के भय से चले आ रहे विहग इधर  
 देखिए, संकड़ो हरिज भागते आते हैं  
 अनि भय मे हिंसक पशु भी अत्र अकुलते हैं  
 अब अधिक बात ये श्रीकृमार बताएंगे  
 जो सुना बहाँ, रखने ही यहाँ सुनाएंगे !'

‘क्या बात बन्धु ?’—पूछा राम ने सहज स्वर से,—  
 ‘पशु-पक्षी भाग रहे मचमृच किसके डर से ?  
 इस तपोभूमि में सेनाएँ क्यों आएँगी ?—  
 वे इस वन में किसने लड कर क्या पाएँगी ?’  
 बोला तब भोलकुमार कि ‘प्रभु ! सेना विशाल,—  
 आ रही इधर बटती, ज्यो वन में अग्नि-ज्वाल  
 अति क्रूर किमी कैंकेयी का आगमन आज  
 होगा इस चित्रकूट पर ही आनमण आज  
 है देव ! भरत नामक उमका सुत भी आता  
 उसका रणमय मन शत्रु-रक्त-हित अबुलाता  
 छटपटा रहा वह लडने को बच से पथ पर !  
 बैठे हैं सोढागण हाथी-घोड़े-रथ पर !  
 चिन्ता न कर ह नाथ ! भील तँवार मभी  
 आएँगे कोल-किरात-बीर भी यहाँ अभी  
 हर पर्वत से हम सीधे नीर चत्राएँगे—  
 मर जाएँगे पर माथा नहीं झकाएँगे !’

‘कैंकेयी ? भरत ? और मेना ?’—गभीर राम  
 पर, आद्वादित अन्तन्तल मुन कर भरत-मः  
 ‘प्रिय भरत आ रहा, अहा ! आज शुभ दिन कितना !  
 मुझ पर तो उसका प्रेम सदा अत्यन्त घना  
 आ रही अहा, माता भी ! कहीं बिठाऊँगा ?  
 मैं ही दर्शन के लिए दूर तक जाऊँगा  
 हो गए बहुत दिन पग छूए—पद-रज पाए  
 उनके समक्ष हो गए बहुत दिन मुसकाए !  
 इस तपोभूमि में रहने का फल मिला आज  
 सचमुच ही एकाएक उर-बमल खिला आज !’  
 —आनन्द-चिन्तना में श्रीराम विभोर हुए—  
 कुछ क्षण तब उनके भाव प्रनत्र मयूर हुए !  
 देखा लक्ष्मण ने भाई को चिन्तित ज्योही,  
 हो गई मुखर उपयुक्त नीति-वाणी त्योही :

'मेरे रहते भी दुखी आप हो रहे बन्धु ?  
 मेरे रहते भी चिन्ताएँ ढो रहे बन्धु ?  
 स्वामी हे ! सेवक जीवित है, चिन्ता न करें,—  
 अपनी प्रमदता में मुझमें उत्साह भरें  
 खल-बल-विनाश-हित में केवल पर्याप्त बन्धु !  
 कर सकता मैं ही अरि को स्वयम् ममाप्त बन्धु !  
 मेरे रहते चिन्ता न करें, चिन्ता न करें,  
 आ गए क्षुपथ पर जो, वे ही कापुस्य डरें  
 जो सत्य-मार्ग पर है, उनकी जय निश्चिन है  
 सेना को लाना चित्रकूट में अनुचित है !  
 हे राम ! आपके जो प्रिय हैं, वे मेरे भी  
 सह लेता हूँ मैं, यदि कोई कुछ छेडे भी  
 पर, छत्री व्यक्ति के लिए व्याल बन जाऊँगा  
 मैं कुटिल पुरुष के लिए काल बन जाऊँगा  
 सब्बत जब दुर्जन बन कर सम्मुख आता है,  
 तब उसे देख कर मेरा मन अकुशला है  
 अपना बन कर जो मनुज पराया हो जाता,  
 उसके छोटेपन से मेरा जी घबराना  
 हे देव ! ठिठई करता हूँ कुछ कह कर मैं  
 चुप रहूँ भला आपका निरादर सह पर मैं ?  
 हैं आप सभी के लिए सुहृद्, हितवागी भी  
 सिंहासन तज कर बने आप बनचारी भी !  
 पर, जिसको सबकुछ दिया, वही अत्र दानु विकट  
 किमके कारण है फँस रही यह कपट-रूप ?  
 होता है प्रकट ममय पर अमली अरि-स्वरूप  
 भाई से भी विस्वासघात कर रहा भूप  
 प्रभुता के गज-मस्तक में मद घुना ही है  
 कपटी नामक तो अहम्-गिह्वर छूना ही है  
 पद का मद जिसमें, मर्यादा उसमें न तनिक  
 सेना लेकर आ गया भरन बन में ? धिन्-धिन् !  
 हे निर्दामित ! आपमें यहाँ वैराग्य-भाव  
 फिर भी कंबेयीपुत्र कर रहा है दुराव !

नैनिकना उनमे कहां राजमद के कारण  
 उनमे न तनिक भी प्रेम, प्राप्त पद के कारण  
 ललकारा है—उनने हमको लडकारा है  
 स्यारो ने निहो को ही आज पुकारा है  
 आखिर कितना हम सहें और मन को मारें ?  
 कायर बन कर अब रिपु-दल को कैसे टारें ?  
 आपकी कृपा मे लक्ष्मण-बाप अबूक बन्धु !  
 रण मे क्षत्रिय कैसे रह सकना मूक बन्धु ?  
 नक्षम हैं शत्रु-दमन-हित मेरे शक्ति-पीर  
 एक ही बाण से छंट जाएगी न्यार-भीड  
 मारने हमे जो आया, मारा जाएगा  
 अपनी करनी के कारण अरि पछनाएगा  
 अवसर आया है राम ! आज कुछ करन का  
 फल मिल जाएगा उसे बन्धु से लडन का  
 मक्रोध वीरता जाग उठी मेरे मन मे  
 अपना कौशल दिखनाएगा लक्ष्मण रण मे  
 जागा है मेरे मन का नोषित शेष नाग  
 मैं भूठ गया है बन्धु ! आज वन का विराग  
 डोलेगी धरती, डोलेगा आकाश आज  
 उत्क्रान्त वीररत्न का मुझमे वात्तान आज  
 होगी—होगी हे राम ! सत्य की महाविजय  
 जीतेगा-जीतेगा लक्ष्मण रण को निश्चय  
 पाएगा शत्रु निरादर का मुझसे ही फल  
 देखेगा वह कि राम-सेवक मे कितना बल  
 उसकी कुटिला माता भी रण मे आई है  
 हे राम ! समर की घटा चमक कर छाई है !  
 सग्राम आज जम कर होगा इस कानन मे  
 भर गई आग ही आग आज मेरे मन .  
 होता है कभी-कभी ही नू पर रक्त-पवं  
 आज ही शत्रु का हो जाएगा नष्ट गर्व  
 वस, आना हो कि गगन मे छोड़ू प्रथम बाण,—  
 दूँ तान तुरन् ही घूँ का श्यामल वितान

हो जाए घूमिल एक वाण से आसमान  
लग जाय धडकने जरा झनु के प्राण-प्राण ।'

मुन, तेजस्वी लक्ष्मण की ओजस्वी पुकार,  
राम ने निहारा सीता-मुख को एक वार  
विपरीत परिस्थिति में भी राम अधीर नहीं,  
उनके कोमल कर में कोई भी धीर नहीं !  
घोड़े के—'हे भाई ! तुम निश्चय नीति-कुशल  
अवगत है मुझे कि तुममें कितना क्षत्रिय-बल  
तुम-जैसे अनुजों पर अग्रज को गर्व सदा  
आई न तुम्हारे कारण कोई भी विपदा  
में धन्य कि मेरे सभी बन्धु आज्ञाकारी  
अशुण्ण रहे बन्धुत्व-भाव की फुलवारी  
भ्रातृत्वहीन, मंत्री-विहीन जीवन दरिद्र  
इनके अभाव में मानव-सुखसाधन दरिद्र  
अज्ञानी भाई ही भाई से लड़ता है  
भय के कारण भय ही तो भय से डरता है  
प्रतिकूल दशा में भी सत्प्रीति अटल रहती  
पथरीले पथ में भी मन की गंगा बहती  
अविवेकी शासक में अधिकाधिक मद होता  
मद के कारण ही व्यक्ति एक दिन अनि रोता  
सत्सगहीन शासक मद-मदिरा पीता है—  
जीने के लिए सिर्फ वह जीवन जीता है !  
हे लक्ष्मण ! भरत-समान बन्धु दुर्लभ जग में  
खिन्ते हैं प्रेम-प्रसून सदा उसके मग में  
जिस घर में एक भरत, उस घर में प्रेम-दीप  
मिगता है किसी-किसी गृह को ही उर-महीप  
गुण ही गुण जिसमें, वही भरत शुचि शीशुवान  
बंने में कहूँ तुम्हें कि भरत कितना महान  
अनि भाग्यवान वह, जिसे भरत-ना बन्धु मिला  
जिम कुल में एक भरत, उसमें कुन्देन्दु खिला !

हे लक्ष्मण ! अपने भाई पर विद्वाम करो  
सदेह-धरे मन में स्वाभाविक स्नेह भरो  
पावन जन के होते हैं पावन नाशन भी  
उत्तम आराधक का होता उत्तम मन भी  
तुम चाहो तो वह तुम्हें राज्य दे नरना है  
घन में भी सुन्दर चन्द्र-प्रबान छिटकना है  
माना कि वा रही सेना पर, किन्हीं वन्धु ?  
मानूँ कैसे, मद-भुरा भग्न है पिण्ड वन्धु !  
क्या भरत राम-हत्या करने को आएगा ?—  
निज माना को इस कारण ही वह लाएगा ?  
लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! तुमने क्या ऐसा नोच लिया ?  
सर्वोत्तम भ्राता पर तुमने मन्देह किया ?  
हे दैव ! हुई मन-भलिन राम की तपम्यली  
भाई के प्रति भाई के मन में बाग जली  
क्या चित्रकूट में मुझसे कुछ अपराध हुआ ?  
भाई का शक्ति मन भ्राता-हित व्याध हुआ ?  
लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! प्रिय भरत तुम्हारा है  
वनवास-काल में भरत धर्म-ध्रुवनारा है  
प्यारा है, भरत राम का अनिर्गम्य प्यारा है  
व्यर्थ ही आज तुमने उसको दूरकारा है  
विद्वान्त करो मत झटपट उठती बातों पर  
जीवन में ममल-बूत कर ही चटना हिनकर !  
दुश्चिन्ता से मन उत्तेजित हो जाता है  
शका के कारण सबका जी अकृशाना ह  
मेरे प्रति तुममें अतुष्ट भक्ति, तुम स्नेह-मवल  
तुम सजग, सतर्क मदा ही है भाई ! निरुद्ध  
अति शक्ति-भाव के कारण ही तुम उत्तेजित  
अन्यथा भरत का राम-प्रेम तो तुम्हें विदिन !  
सेना है अभी सुन्दर और है मौज निरुद्ध  
नूरज को छिपा रहा है देवों, वह प्रिय वट  
उम पावल की पुनगी पर लगी छार्द है  
पावर, रत्नाल पर सान्ध्य विरप छिनगट है

लगता कि उधर ही होगा सेना का पडाव  
 मेरे उर मे हे बन्धु ! छलकता प्रेम-भाव  
 भाई से मिलने को उत्सुक मेरे लोचन  
 जाने किस क्षण छू पाऊंगा मैं मातृ-चरण !  
 लक्ष्मण ! सुबन्धु-माता-हित कुछ फल ले जाओ  
 घट मे पयस्विनी का भी प्रिय जल ले जाओ  
 अर्पित कर आओ तुम्ही राम का प्रिय प्रणाम  
 करना ही है हे बन्धु ! तुम्हे यह आज काम  
 मेरा जाना इस समय कदाचित उचित नही  
 वनवास-धर्म मे मोह-दोष आ जाय कही !  
 रख दो इस कुटिया मे ही अपना धनुष-बाण  
 देना है तुम्हे वहाँ सात्विकता का प्रमाण  
 कैसे मैं कहूँ, यही माता को ले आओ  
 जाओ भाई ! फल-जल लेकर जन्दी जाओ  
 अब आस्रकु ज से सूर्य सुनहला झाँक रहा  
 जाने क्यों इस क्षण शीतल स्नेह-समीर बहा !

सुन राम-वचन, लक्ष्मण के उर मे परिवर्तन  
 सन्देह-शमित मन मे आस्था का विधु-विचरण  
 अनुचित प्रलाप के लिए क्षमा-याचना तुरत  
 उज्ज्वल आँखो मे चमक उठे प्रिय बन्धु भरत !  
 सुन राम-वचन, दोनो ही भीलकृमार द्रवित  
 भ्राता के प्रति श्रीराम-प्रेम लग्य, हृदय चवित  
 दोनो ही—तीनो ही, प्रनु-पग पर भक्ति-नमित  
 जानकी-नयन यह दृश्य देख, चुपचाप मुदित !  
 आ गए उसी क्षण शस्त्र लिए संबद्धो भील,  
 आ गए धनुर्धर अनगिन कोट-विरात नील  
 सब मे वीरोचित भाव, दीप्ति मुखमण्डल पर  
 वन-सेना युद्ध-हेतु सब विधि तत्पर-तत्पर !  
 पर, सत्वर अवगत राम-भाव, सत्वर प्रभाव  
 मीठी बोली से घट-घट कर मिट गया ताव

शीतल वाणी के जादू से मन वदत्र गया  
 सेना-समूह सेना-नेवा-हित निवृत्त गया ।  
 रख निकट गुफा में अस्त्र-शस्त्र मग्न चले वहाँ,—  
 उस चित्रकूट-सीमा पर भरत-पडाव जहाँ  
 निकले लक्ष्मण फल-जल-समेत, वे विन्तु रिक्त  
 कुछ दूर पहुँच कर सब का मन आतिथ्य-सिक्त ।  
 दाँडे वे जहाँ-तहाँ लेने को वन्द-मूल  
 चुभ गए अनेको चपल चरण में सरणि-मूल  
 विह्वलता के कारण कितने को लगी ठेम  
 बहुतो के - लल्ल गए झाड़ी में वमन-वेश ।  
 गिर पड़े पड से कितने फट तोड़ते हुए  
 कुछ लेकर कुछ निकले, कुछ को छोड़ते हुए  
 कुछ ने छालों के छिट्टों का निर्माण किया  
 तत्परता से सघने सबको सहयोग दिया  
 सब हुए इकट्ठे एक जगह, तब पुनः चले  
 भागते हुए वछड़ों-से वे आगे निकले  
 पथ में ही चाँद निकल आया, ज्योत्स्ना छल्की  
 शिविरो की उजली छटा नामने अब झलकी ।  
 अनगिनत सेवकों की सेना जा रही उधर  
 चौंके कोसल-सेनापति अधिक भीड़ गूँथ कर  
 आज्ञा पाकर कुछ अश्वारोही निकल पड़े  
 आस्था के कारण शस्त्रहीन जन नहीं डरे  
 अभिप्राय जानकर अश्वारोही हुए मुदित  
 वनवासी-प्रेमभाव से सैनिक-प्राण चकित  
 शिविरो के बाहर मेवा-रत प्रिय भील-कोठ  
 भीतर लक्ष्मण नुन रहे भरत के मजल बोल ।  
 आँसू की धारा से भीगे-भीगे कपोल  
 चाहता हृदय कहना अब मक्कुछ खोल-खोल,  
 पर, श्रोता में नुनने का साहस नहीं आज  
 रस इतना करुण कि मन को टाड़म नहीं आज  
 रोना ही रोना यहाँ-वहाँ इन शिविरो में  
 उर धिरा-धिरा-सा उर की करुणा-ग्रहरो में



रो-रोकर लेते मभी राम का भधुर नाम  
 लक्ष्मण के लिए असह है अब गृह-व्यया राम !  
 बनवास-दण्ड देनवागी भी आज दुखी  
 लगता है, इन शिविरा मे कोई नही मुखी  
 इस मोह-रात्रि से बाहर में कैसे निकलूँ ?  
 इस ओर चलूँ ? उस ओर चलूँ ? किम ओर चलूँ ?  
 हो गई रात आधी कुम्बिया सूनी होगी  
 कंकेयी माँ ! तुम नही मुचे जामे दोगी ?  
 हे राम ! आपन मुने कहीं पर भेज दिया ?  
 आई है मजके सग विरहिणी प्राण प्रिया !  
 किम किस स यहाँ मिलूँ ? सब तो अपन ही हैं  
 इन शिविरो मे सब के सब मेरे स्नेही हैं  
 मित्रते मित्रन क्या यही विता दूँ आज रात ?  
 अब बाहर मुझे निकटो ह शत्रुघ्न तात ! —  
 मेरा मन तो प्रभु निकट, वही अब जाना है  
 उनके उठने के पूर्व पुष्प-जल लाना है  
 सूर्योदय से पहले ही करते राम स्नान  
 लगता है अब होन को है उज्ज्वल विहान !  
 हा ! भरत-जननि से चलने का आग्रह न किया !  
 दुख को लहरो ने मुषको कुछ कहने न दिया  
 आई हैं तीनी माताएँ, कहता किससे ?  
 इस कारण होंगे हर्षहीन क्या प्रभु मुचसे ?  
 करते होंगे क्या वहाँ प्रतोक्षा माता की ?  
 क्या कहूँ, यहाँ की अतिशय वरुण-वरुण साँकी  
 हा ! मुचमे भूल हुई कि भरत को धिक्कारा,—  
 राम क सामन ही भाई को ललकारा !  
 श्रीभरत राम के उर-रत्न म ही सराबोर  
 इनके मन म तो सदा प्रेम की ही हिलोर  
 क्या इसी रूप को उन्ह दिखाना था अभीष्ट ?  
 अब क्षमा करें हे लक्ष्मण के आराध्य इष्ट !  
 निर्दोष भरत गुण-दुग्ध पान कर बन हस  
 इनके उज्ज्वल यश स आलोकित मूर्यवंश

कर दिया राम के लिए भरत ने राज्य-त्याग  
 अनुपम है इनका शील-सजल प्रेमानुराग ।  
 —मन-ही-मन यह सोचते हुए लक्ष्मण निकले  
 उस ओर उन्हें के साथ-साथ ही भरत चले  
 सग मे अनुज सत्रुघ्न, प्रफुल्ल निपादराज  
 अनुमति देकर माता, गुरु, मंत्री मुदित बाज  
 गिर्विरो को और निकट लाने की तैयारी  
 आई फिर कोल-भील-सेवा की नव वारी  
 उस ओर पुन. हलचल, इस ओर भरत विह्वल,—  
 दयनीय नयन मे मनस्ताप का निर्मल जल :  
 'क्या रुठ गए होंगे मुझसे मेरे भाई '  
 उनके दर्शन की आकुलता अति नक्रुचाई  
 वे ठुकराएँ या अपनाएँ, मैं उनका ही  
 मैं तो उनके ही प्रेम-पथ का हूँ राही  
 स्वामी सेवक का दोष वहाँ तक देखेंगे ।  
 क्या स्नेह-भुजाओ मे वे मुझे न भर लेंगे ?  
 अपराधी तो मैं नहीं किन्तु अपराधी हूँ  
 अपने कारण ही मैं अनर्य-अवसादी हूँ ।  
 हूँ क्रूर ग्रहों का अधमाधम परिणाम एक  
 इस विपम घडी मे आश्रयदाता राम एक  
 पतिनाबन्धा में उनका एक सहारा है  
 मेरे प्राणों ने केवल उन्हें पुकारा है ।  
 जननी ने जो कुछ किया, दोष मुत्त पर केवल  
 मेरे कारण ही किया काल ने उथल-पुथल  
 मुझको ही क्षमा-याचना प्रभु से करनी है  
 भरनी है—खाई मुझको ही तो भरनी है !  
 आशा-विश्राम-भरा उर कभी अधीर नहीं  
 बहता है प्रेम-प्रवाह, प्रेम का तीर नहीं  
 भीरो-भा मन गुनगुन करता प्रभु-चिन्तन मे  
 वस, एक राम ही गूँज रहे मेरे मन मे ।'

सब आए चलते-चलते मन्दाकिनी-निबट  
 नूतन पल्लव से हरा-भरा विश्वाम-विटप  
 स्थिर मन से सवने विया प्रेममय स्नान-ध्यान  
 देखा तब भक्त भरत ने प्रभु का वन-वितान  
 इस वन-प्रदेश में दिव्य शान्ति की स्वर्ग-छटा  
 पर्वत के शिखरों पर छाई-सी आत्म-घटा  
 अनगिनत ज्ञान-तरु में विवेक के फूल खिले  
 जड़-चेतन तन-मन के समान ही हिलेमिले  
 खग-मृग-मानव में व्याप्त घना एकत्व भाव  
 सर्वत्र दीखता-मा सत्-शिव-मुन्दर प्रभाव  
 साधना भूमि पर आते ही प्रिय भरत मोन  
 भीतर ही भीतर प्रदत्त कि मेरे राम कौन ?  
 इस मिलन-रामगिरि पर आलोकित भरत-विरह  
 चित्त में दिव्य आनन्द-विहग करता चहचह  
 नयनों का अश्रुवृत्त अवलोकित सभी ओर  
 अन्तर्मन प्रेम विभोर, हृदय रस-मरावोर !  
 विरहिणी भक्ति की घटा प्राण-नभ में छाई  
 उरमुक्ता की उजली विजली भी छितराई  
 जा रहा उमड़ता ही श्रद्धा से स्नेह-मेह  
 कुछ क्षण के लिए विदेह हो गई भरत-देह !  
 गुह की भी कुछ ऐसी ही स्थिति, पर गति नवीन—  
 नूतन वर्षा से जल-चंचल ज्यो पक-मीन  
 रामाश्रम के सन्निकट समाधि सुभग हुई, —  
 जब लक्ष्मण की वाणी नव शब्द-तरंग हुई  
 'वह, उधर राम की पर्णकुटी है बन्धु भरत !  
 देखिए कर रहे हैं वे वन-मुनि का स्वागत  
 रे नहीं, विदा कर रहे उन्हें अब वे सहर्ष  
 लगता कि परस्पर हुआ आज उत्तम विमर्श !  
 देखिए आम, जामुन, पावर, तरुवर तमाल  
 शोभायमान है मध्य भाग में वट विनाश  
 वेदेही की वाटिका नदी से सटी हुई  
 है अरुण पुष्पलतिवा नुटिया पर चढ़ी हुई !

तुलसी ही तुलसी वहाँ, जहाँ पर हवनकुण्ड  
 उसके पीछे कोमल बदली के हरित भ्रुण्ड  
 सैकड़ों तरह के खग करते तरु पर निवास  
 करते हैं सब प्रकार से हम सुखमय प्रवास  
 देखिए जनकनन्दिनी हरिण को खिला रही  
 निज मृदु मृणाल-वर से पीठी थपथपा रही  
 वे दोनों टीठ कपोत पेड़ से उड़ आए  
 देखिए मोर को देख, राम भी मुमकाए ।”

दिललाया भाई को भाई ने प्रथम वार  
 दर्शन पाकर आल्लादित अन्तर निर्विकार  
 सागर में जैसे ज्वार ज्वार पर ज्वार-ज्वार,—  
 हिन्दोलित भरत-हृदय दर्शन से उस प्रकार ।  
 मुनियों के बीच राम-सीता शोभायमान  
 ज्यों ज्ञानकुञ्ज आनन्द-भक्ति से रस-प्रधान  
 ‘भैया !’ वस, केवल एक शब्द निकला मुख से  
 होकर विमुक्त उस क्षण जीवन के दुख-सुख से,—  
 भैया के चरणों पर गिर पड़ा भरत भैया  
 अपने तट पर आ गई आज अपनी नैया  
 ‘भैया ! मैं ही हूँ भरत, उवारो मुझे नाथ ।  
 पकड़ो हे मेरे प्रभु ! अब मेरे घृणित हाथ ॥”

पद-पद्मों पर ही पड़ा रहा अपित मस्तक  
 सुधिहीन रहे कुछ क्षण तक प्रेम-विभोर भरत  
 सर्वस्व समर्पण से मानस में दिव्य शान्ति  
 भिन्न गई छात्र-सन्देश-भरी मन-भेंवर-भ्रान्ति ।  
 देखी न अनुज की मुख-छवि अग्रज ने अवतक  
 बोली से ही पहचान लिया कि सुशील भरत  
 झट उठे राम होकर अधीर, गिर पड़ा तीर  
 गिर पड़े वस्त्र-तरकस, इतना ज्वारित शरीर !

पृथ्वी पर गिरे बन्धु को तत्क्षण उठा लिया,—  
 कोमल भाई को तुरत हृदय से लगा लिया  
 सट गए प्राण से प्राण, हृदय से हृदय तुरत  
 बाँहों में बँधे रहे दोनो—प्रिय राम-भरत !  
 दोनो की प्रेम-समाधि देख, निर्वाक सभी  
 तन-मन की तन्द्रा हुई नहीं है भगं अभी  
 वे इनके लोचन में, ये उनके लोचन में !  
 दोनो ही समा गए दोनो के ही मन में  
 देखा न किसी मुनि ने अबतक ऐसा मिलाप  
 दोनो ने प्रेम-सिन्धु को सब विधि लिया नाप  
 आत्मा की गहराई में अब आनन्द-नाद  
 इस समय न कोई हर्ष, न कोई भी विपाद !  
 पी आत्म सुधा अन्तमन में अध्यात्म तृप्ति  
 अब छुले नयन में अश्रु-निवेदिन प्रीति-दीप्ति  
 नयनों से ही नयनों की दो क्षण वातचीत  
 इस प्रेम-मिलन में नहीं किसी की हारजीत !  
 सबसे सब मिले तुरन्त स्नेह-विह्वल होकर  
 गिर पड़ा निपाद-नरेश राम के चरणों पर  
 शत्रुघ्न और गृह बंधे राम की बाँहों में  
 सन्तुष्ट हुए सब प्रभु की दीतल छाँहों में !  
 सबके शुभागमन से प्रसन्न वैदेही-मन  
 अधरों पर नव मुम्कान, प्रसन्न करण चितवन  
 भगल-भगल कामना-कलित अव्यक्त वचन  
 जमनी-जैसी डर में उदारता सघन-मघन !  
 यह जान सुमित्रानन्दन से कि सभी आए,—  
 शुकगुरु, मंत्री, सेना, पुरजन, सब माताएँ,  
 चल पड़े राम शट शिविर-ओर सत्वर-सत्वर,—  
 सीता-समीप शत्रुघ्न अनुज को ही रख कर  
 मिलनालुर पग-गति तीव्र—तीव्रतर वन-भय पर,  
 गुरु-माता-दर्शन-हेतु विवल रघुकु-दिनकर  
 राम को देख कर सभी मुदित अति दुःख-सहित  
 मुनिवर वसिष्ठ ही व्यथा-रहित केवल पुलकित !

माताओं में केवल कैंवेयी अधिक् व्यथित  
 राम के सामने मजल नयन अतिशय लज्जित  
 अपने पर ही धिक् धिक्, अपने पर ही धिक्-धिक्  
 दयनीय दुर्दशा देव, राम अति द्रवित-द्रवित  
 'विचलित मत हो माँ ! तेरा कोई दोष नहीं  
 होता जो होने को, होता है सदा वही  
 तुझमें जो प्यार मिला उसमें है बहुत अमृत  
 चारों पुत्रों के रहते माँ ! मत हो विचलित !'

मुधि-चित्र लिए लौटे लक्ष्मण के मग राम,  
 निज पर्णकुटी में प्रिया-भग वार्ता अकाम  
 आई कुलगुरु के मग मनिगण—मानाएँ,—  
 गुरुपत्नी अरुन्धती, पुरवामी—रुलनाएँ  
 हरिणी-भी मीना कुटिया में निकरी बाहर  
 एक ही गीग मत आज अनेको चरणों पर  
 अवद्व ष्ठ में आशीर्वचन-प्रमून झरे  
 आँवों में आँसू के अनगिन मोती बिखरे !  
 पर्णामन पर गुरु-मुत्र स नव परमार्य-कथा  
 सुन दशरथ-स्वर्गगमन, रघुवर को प्राण-व्यया !  
 लक्ष्मण, मीना अति विकल, दृगों में अश्रु-धार  
 श्रीराम विमूर्च्छित हुए उसी क्षण बार-बार !  
 उस श्रेष्ठ पिता की पावन स्मृति में मन कम्पित  
 तन-प्राण व्यथित, मन-प्राण व्यथित, प्रभु-प्राण व्यथित !  
 मन-ही-मन लक्ष्मण अति नोषित, जानकी चकित  
 इस चित्रकूट में प्रथम बार श्रीराम व्यथित !  
 अगले दिन मन्दाकिनी-तटी पर श्राद्ध-कर्म  
 गुरु-आज्ञा से सरक्षित नुत का पितृ-धर्म  
 दो दिनों बाद गुरु में ही राम निवेदन यह .  
 'अति दुखी सभी को देख, दुःख हो रहा असह !  
 अच्छा होता सबको ले जाते लौटा कर  
 सूना होगा हे देव ! अयोध्या-राजनगर

कैसे मैं कहूँ कि जाना ही है उचित नाथ ।  
 पर, लगता है यह उचिन कि जाएँ मभी साथ'  
 बोले वमिष्ठ हे राम, घर्म के प्राण तुम्हीं  
 आएँ हैं सब यह सोच कि वरुणा घाम तुम्हीं  
 सब शान्ति-लाभ कर रहे तुम्हारे दशन स  
 दुख में प्रिय सुख की प्राप्ति स्थान-परिवर्तन से  
 पावन पयस्विनी-स्नान और गिरि वन विचरण  
 हहराते शरनो का चट्टानो पर नर्तन  
 वृक्षो की छाया में पशु-पक्षी का विहार  
 अनगिन फूलों को देख, नयन को सुख अपार  
 पुरवासी का सम्पकं यहाँ के वन-जन से  
 अति मग्न सभी इनके साधन आराधन से  
 फिर भी भीतर का दुःख भीतर है छिपा हुआ  
 आनन्द मिलन में भी वियोग है जगा हुआ ।  
 हे राम ! भरत के प्राणों में है अमह व्यथा  
 मूर्च्छित कर देती मन को उसकी आत्म-कथा  
 दुःख ही दुःख जिसमें व्याप्त, उमी का नाम भरत  
 बन्धुत्व-भाषना ही उसका है जीवन-व्रत  
 तन में वन में उसका कोमल मन वनवासी  
 है भरत विश्व में अतः प्रेम का सन्यासी  
 साकार हृदय की मूर्ति वही है वही एक  
 भ्रातृत्व भावना से विभोर उमका विवेक  
 जिस क्षण बानो ने सुनी जननि की कुटिल कथा,  
 भर गई प्राण में तुरत व्यथा ही व्यथा-व्यथा ।  
 स्वीकारा उमने नहीं राज्य-सभार राम,  
 उसके मत से उस पर न भरत-अधिकार राम ।  
 आया है वह अपनी उज्ज्वलता लिए यहाँ  
 उस प्रेम-पुरुष की आँसों में है नर्द बहाँ ।  
 लगती न भूख उसको, लगती है प्यास नहीं  
 निर्मल आशा के वारण भरत निराश नहीं ।  
 लौटाने आया है वह अपने भाई के  
 लेकर आया है यहाँ साथ में भाई को

सब के सब आए हैं इस कारण ही वन में  
 एक ही विमल अभिलाषा है सब के मन में ।  
 सबका अभिमत है यही कि लौटें सीतापति  
 सबकी साँसों में एक प्रेम की पावन गति  
 तब हुई सभाओं में वस केवल एक बात  
 'लौटें अब अवधपुरी अति सहृदय श्रेष्ठ तान  
 हे राम ! मुझे भी सब्रह्म जाना पडा यहाँ  
 है वहाँ-वहाँ आनन्द व्याप्त तुम जहाँ जहाँ  
 अब तुम्हीं बताओ सत्यपुरुष ! मुन्दर उपाय  
 अब तुम्हो बताओ सर्वमान्य हितकर उपाय ।'  
 बोले धीराम कि 'आप धर्म के संरक्षक  
 आदेश आपका रघुकुल से पालित अवतक  
 जाना दें हे गुरुदेव, कि अब क्या करे राम—  
 प्रिय भरत-दुःख को किन प्रकार अब हरे राम'  
 बोले वशिष्ठ 'हे तात ! भरत में भ्रातृ-भक्ति  
 सबको वन में कर लेती है प्रिय प्रेम-शक्ति  
 है प्रेम-धर्म से श्रेष्ठ न कोई विश्व-धर्म  
 सत्पुरुषों को ही अवगत मर्यादा प्रेम-धर्म  
 इत नमय यहाँ पर भरत नहीं, ऋषि ही केवल  
 सुन वचन तुम्हारा, सबका अति हर्षित हृत्तल  
 आशा की भाषा में अपूर्व आनन्द एक  
 है दिव्य प्रेम-रत्न में द्रुवा नहृदय विवेक ।  
 मैं ही हूँ कोई जाना, मैं चाहता नहीं  
 भाए जो सबको सचमुच ही, हो वान वही  
 आज ही विशाल सभा में हो कोई निश्चय  
 करना है भरत-समक्ष तुम्हें अन्तिम निर्णय'

आगा-उमग से भरी सभा में सभी आज,—  
 अनुत्तल परिस्थिति के कारण हर्षित समाज  
 ऋषियों की वाणी सुन कर राम-अधर सस्मित  
 उनकी प्रसन्नता से ही सभी प्रसन्न अधिक् ।



बोले श्रीरामचन्द्र उठ कर शीतल स्वर से  
 'मैं दूर कभी भी नहीं भरत के अन्तर से  
 मैं धन्य कि मुझे भरत-सा सहृदय बन्धु मिला  
 मेरे मानस-सर मे उसका उर-कमल खिला  
 उसमे जो प्रेम-सुगन्ध मधुर, वह नहीं कही  
 उसमे जैसी सज्जनता, वैसी कही नहीं  
 जननी वह धन्य, भरत को जिनम जन्म दिया  
 मेरे भाई ने मेरे हित अति त्याग किया  
 गुण ही गुण जिसमे, ऐमा वह मेरा भाई  
 सम्पूर्ण देश मे उनकी प्रेम-प्रभा छाई  
 मेरी आज्ञा का जिसने सदा किया पालन,—  
 मैं कट न क्यो थदा मे उसका आराधन ?  
 उस साधु पुत्र का करता है नित दिव्य स्मरण  
 उस भाई को पाकर मेरा उज्ज्वल जीवन  
 उसके समक्ष क्या कहूँ और क्या नहीं कहूँ  
 लगता कि प्रेम की धारा पर ही आज वहूँ !  
 उस प्रेम-सरित पर ही आए है सब वह कर  
 है भरत-भाव से भरा आज सबका अन्तर  
 जो कहे भरत, मैं वही करूँ, यह उचित आज,—  
 हे जनगण, ऋषि, मंत्री, माता, कोसल-समाज !'  
 —इतना कह, बैठे राम, उठा कर हृष्य-ज्वार,  
 देखा सबने उनका मुखमण्डल वार-वार  
 गुरु-आज्ञा से सकोच त्याग कर उठे भरत  
 आँसू ने किया उसी क्षण नयनो का स्वागत ।  
 उठने को वे उठ गए किन्तु मुँह खुला नहीं ।  
 सूझा न प्रीति के कारण कोई शब्द कही  
 वाणी-विहीन मन की गति मे सब हुए द्रवित  
 उनके आँसू से सबकी आँखें अश्रु-नमित ।  
 वस प्रेम-देदा को देख, मजल श्रीराम-नयन  
 सुधि के विशाल पट पर सजीव चित्रित बचपन  
 सुधि आई सहमा सौ-सौ प्यार-दुलारो की  
 छा गई चाँदनी मन पर भरत-पुकारो की !

जो कभी नहीं मुँह खोल सका, वह क्या बोले  
जिसका उर-द्वार खुला ही है, वह क्या खोले  
देखी न हँसी मुस्कान-भरे उन अधरो पर  
सब दिन से शील-सुगन्ध-भरा उसका अन्तर  
दुर्लभ है, दुर्लभ इस जग में ऐसा भाई  
उसके प्राणों पर सदा प्रीति की अरुणाई  
है उचित यही कि मान लूँ उसकी आज बात  
आया है अति आशा लेकर ही यहाँ तात  
पर, हाय ! उधर देखूँ या अभी इधर देखूँ ?  
दुविधा में है मैं स्वयं कि आज किधर देखूँ !  
मानव की मर्यादा को रखूँ कि तोड़ूँ मैं ?  
दो राहों में किस पथ से नाता जाँडूँ मैं ?

—यह मौच, राम लपके भाई की ओर अभी  
मिलता है ऐसा प्यार किसी को कभी-कभी  
अगुणियों ने बहते आँसू को पोछ दिया  
इस महज प्रेम से प्रभु ने सबको नृप्त किया !  
भाई ने अपने निकट भरत को बैठाया  
कोमल हाथों ने कोमल तन को सहलाया  
यह देख, शान्ति छा गई सभा में सभी ओर  
सच्चिदानन्द-घन देख, प्राण-मन हुए मोर !  
करुणा की सपन घटा सहसा सुधि से चमकी  
निर्मला स्नेह की सीदामिनी अभी दमकी  
आई नम्रमुख कँकेयी करुणा-ज्वार लिए,—  
उज्ज्वला अन्तरात्मा में एक पुकार लिए :  
हे राम ! भरत तो अमृतपुत्र, मैं विषमाता  
मृगसे ही मलिन हुआ उस दिन पावन नाता  
सर्पिणी बनी मैं ही उस दिन हे पुरुषोत्तम,  
पर, नाघु पुत्र ने मिटा दिए मेरे सब भ्रम  
मेरे निर पर ही कञ्चु-कुटिलता का कलक  
मैंने ही मारा शुभ मुहूर्त में अशुभ डक  
उस कपट-रानि में लोभ-आलिमा व्याप्त हुई  
जानते सभी, कँकेयी को क्या प्राप्त हुई !

इस पृथ्वी पर मुझ-सी पापिनी नहीं कोई  
 अपनी करनी के कारण मैं न कभी सोई  
 भीतर ही भीतर रोती जो, वह नारी मैं  
 वस, सिर्फ पाप ही ढोती जो, वह नारी मैं !  
 रण-कुशल कभी थी मैं, अब तो है पाप-कुशल  
 वरदान प्राप्त कर बना हृदय अभिगाप-कुशल  
 सन्ताप-कुशल वैदेयी ने बन-दण्ड दिया  
 है राम ! इसी नारी ने अतुल अनर्थ किया !  
 चाहो तो बाण चला कर इसे पवित्र करो,—  
 या हे पुरुपोत्तम ! मुझमें नूतन स्नेह भरो  
 कुछ भी है लेकिन माँ है, क्षमा प्रदान करो  
 मेरा, इनका, उनका—सबका कल्याण करो !  
 यदि माँ है मैं तो मेरी आज्ञा मान राम,  
 कर इसी समय मेरा समुचित सम्मान राम  
 मैंने भी अपना दूध पिलाया था तुझको  
 अपनी छाती पर कभी सुलाया था तुझको  
 कौसल्या से ही पूछ कि कितना किया प्यार  
 क्या नहीं सुनेगा तू मेरी नन्ही पुकार ?  
 था दिया दण्ड मैंने, भूपति ने नहीं पुत्र !  
 ईश्वर साक्षी है, कहती है सब सही पुत्र !  
 स्वर्गीय नृपति ने निज मुख से कुछ भी न कहा  
 उनका तो धीरज टूट चुका था रहा-सहा  
 मैं ही बोली, मैं ही बोली, मैं ही बोली  
 क्या म्लान पिता ने दो क्षण भी आँखें खोली ?  
 सारा का सारा पाप किया मैंने ही तो  
 वस हुआ वही तो, मैंने वहाँ कहा जो-जो  
 मेरी ही आज्ञा से तुम आए हो बन में  
 थे मिले मुझे ही दो वरदान महा रण में !  
 ये वैयक्तिक अधिकार, मात्र वैदेयी के  
 ये दोनो बुद्धि-विकार, मात्र वैदेयी के  
 हे ऋषियो ! सभासदो ! मैं सच कहती कि नहीं ?  
 मत क्षमा करें यदि गलत बात मैं कहूँ कही

शका के कारण धर्मवृद्धि हो गई भ्रष्ट  
 मेरे चलते ही सबको हुआ अपार कष्ट  
 मेरे कारण रक् गया राम-राज्याभिषेक  
 छिप गया स्वार्थ घन मे उस दिन मेरा विवेक  
 मैं हार गई उस दिन, जीती मेरी दासी  
 मेरा लोभी मन बना लाभ का विश्वासी  
 जल उठा विभेद-अन्तः शका-कलुषित मन मे  
 बन गई राक्षसी मैं उस दिन दुर्बल क्षण मे  
 प्रिय पति को जो खा गई, वही हूँ मैं नारी  
 तम बन कर जो छा गई वही हूँ मैं नारी  
 जो सबको तडपा गई, वही हूँ मैं नारी  
 जो खुद ही शरमा गई, वही हूँ मैं नारी  
 जो छिप कर छिप न सकी, वह आग अकेली मैं  
 थी जिसमे गरल-गघ, वह जुही-चमेनी मैं  
 हूँ स्वयं घोर अपराध एक मैं क्षमाहीन  
 हूँ महापाप के कारण मेरा मुख मलीन ।  
 जो हूँ न सकी उस दिन से, ऐसी मैं पापिन  
 सुत पर ही लपकी, ऐसी मैं भूखी वाधिन  
 गिल गई सत्य को ऐसी मैं उजली बगुली  
 छिल लिया स्वयम् अपने को, मैं ऐसी वसुली ।  
 धन के प्रलोभ से जो निर्धन, मैं वही दीन  
 कादो मे जो छटपटा रही, मैं वही मीन  
 जो स्वयं नरक मे आई, मैं ऐसी नारी  
 मैं एक घृणित अभिशाप-घटा कारी कारी ।  
 घर को ही जला दिया, ऐसी मैं हूँ विजुरी  
 अपने को घायल किया हाथ, मैं वही छुरी  
 धीहीन हुई जो स्वयम्, लिया मैं वही एक  
 मैं कुटिल वृद्धि, जिसमे न वही कोई विवेक !  
 हूँ एक विन्दु, जिसमे दो सुन्दर कमल खिले  
 दोनों कमलों को दो ही भ्रातृ-सरोज मिले  
 चारों पुत्रों ने अतुल प्रेम का जन्म दिया  
 चारों ने मिल कर सूर्यवंश को धन्य किया !

लगना कि काल ने उनकी प्रेम-परीक्षा ली  
 मेरे स्वामी ने मुझे अग्नि की भिक्षा दी  
 कँकेयी तो जल गई, किन्तु वचन न जला  
 रघुवशी भाई ने भाई को नहीं छला ।  
 पुत्रो ने प्रेम सम्हाल लिया अपने दल से  
 वे रहे बहुत ऊपर मेरे चचल छल से  
 मातृत्व मिटा कर भी कँकेयी माता क्या ?  
 है रामचन्द्र से मेरा अब भी नाता क्या ?  
 क्या मैं कहलाने योग्य अभी तक कँकेयी ?  
 आशाकारी क्या उसी तरह मेरे स्नेही ?  
 वापस लेती है राम ! आज वनवाम-दण्ड  
 माता के मन में पुन व्याप्त ममता अखण्ड  
 मिहासन के अधिकारी तुम हो, भरत नहीं  
 कर रही प्रतीक्षा तात ! तुम्हारी अवध-मही  
 भोगा तुमने अति कष्ट मात्र मेरे कारण  
 कैसे मैं कहूँ कि कितना दुःखमय मेरा मन !  
 आँखों से अश्रु नहीं, अब आग निकलती है  
 आग ही आग मेरे प्राणों पर जलती है  
 फल भोग रही है मैं अब अपने पापों का  
 परिणाम मिल रहा मुझे पुत्र-मन्तापो का ।  
 जीवित है इसीलिए कि तुम्हीं से आशा है  
 तुम लौट चलो, अब मेरी यह अभिलाषा है  
 अरु सिर्फ मुझे दण्डकारण्य में जाने दो,—  
 चौदह वर्षों तक पाप-कलक मिटाने दो !  
 तुम तो निर्मल, निर्दोष, कलकित मैं ही हूँ  
 तुम ज्योति-भुगधित, तम-दुर्गन्धित मैं ही हूँ  
 धन-गज दे कुचरु मुझे या व्याघ्र चवा जाए  
 वाराह लहू पी ले, शृगाल धव खा जाए—  
 या, अजगर ही अपने मुग्न में मुझको भर ले  
 कोई भी पशु—कोई भी पशु जीवन हर ले  
 पर, ऐसी मृत्यु वीर माता-हित उचित नहीं  
 भेज दो राम, राक्षस-रण में ही मुझे वही !

चुनती है, असुरराज रावण अत्याचारी  
 उसके शमन में पीड़ित उत्तम नर-नारी  
 प्रतिदिन उत्पात जहाँ, उस भू पर जाने दो  
 लड़ कर ही मुझे वीर गति रण में पाने दो !  
 हे राम ! चलो वापन पहले, तब करूँ बात  
 रघुबल-रवि ! तुम्हीं मिटा सकते हो दुन्दुभ रात  
 सिंहासन सूना है, अब राजमुकुट पहनो  
 तिज पिता-मदृश अब शीघ्र भवतु सम्राट् बनो !

फैला सम्राटा कैकेयी-सभापण से  
 अनगिन जन हर्षित उसके आत्म-निवेदन से  
 कुछ लोग चकित, कुछ लोग भ्रमित, कुछ लोग मुदित  
 सुन स्पष्ट बात, कुछ लोग हुए निश्चक नमित !  
 जीवन्त वाक्-पटुता से ऋषि-मुनि भी गंभीर  
 भावुक नयनों का सूख गया अब स्नेह-भीर  
 छलकी आँखें कैकेयी के भाषण से भी  
 टपकी करुणा इन मन से भी, उन मन से भी !  
 लगता कि किमी नागिन ने गरल निकाल दिया,  
 निर्वाक भरत को माँ ने स्वयम् सम्हाल लिया  
 लगता कि राम ने भी आज्ञा को मान लिया  
 उनकी चुप्पी से जनमन ने यह जान लिया !  
 कैकेयी का जयकार राम के संग-संग  
 उठ गई बहुत ऊँची मन की हर्षित तरंग  
 अब उठे राम गुरु-आज्ञा से सबके समक्ष  
 पावन मन में अक्षुण्ण पितृ का वचन-लक्ष्य  
 बोले वे—'मातृ-कथन मुन, मेरा हृदय द्रवित  
 प्रत्येक शब्द से श्वास-श्वास करुणा-कम्पित  
 निश्चल मन ही अपना भवकुछ कह सकता है  
 करुणा-प्रवाह पर सहज मत्य वह मकता है !  
 हे माँ ! तुमने अपने को कितना धिक्कारा  
 की प्रकट वहाँ से तुमने अति दुख की धारा ?

कुछ बातों को सुन कर मैंने अपराध किया  
 लगता कि वान को तुमने आँसू पिला दिया !  
 फिर कहता हूँ, जिस जननी से उत्पन्न भग्न,  
 उसकी हर स्थिति का राम करेगा निन भ्वागन  
 जिस माता की गोदी में खेला अभय राम,  
 उस पूजनीय माता को मेरा निन प्रणाम !  
 माँ-बेटे का सम्बन्ध कभी टूटता नहीं  
 अघरों पर अकित अमृत-चिह्न छूटना नहीं  
 माता के कारण पिता-पुत्र-सम्बन्ध घना  
 मानना धर्मवत् सुत-हित दोनों का कहना !  
 यदि पितृ-समक्ष मातृ-आज्ञा सुतको प्रेषित,—  
 तो वह निश्चय ही पूज्य पिता से अनुमोदित  
 इसलिए राम-वनवाम पितृ-आदेश-सहित  
 है पितृवचन का पालन करना धर्मोचित !  
 जिस भूपति ने सुत को भी त्यागा मृत्यु-हेतु,  
 यह उचित नहीं माँ ! भग कर मैं वचन-संतु  
 प्रण के कारण जिसने शरीर को दिया छोड़,  
 कैसे उस नृप के वचनो को हूँ आज तोड़ ?  
 रघुकुल की रीति नहीं यह माँ, कि वचन टूट  
 उस वचन-सत्य-हित चाहे प्राण भले छूट  
 हूँ माँ ! तुमने तो मुझ पर स्नेह उभर दिया  
 मय दिन तुमने सब विधि मेरा कयाण किया !  
 कैसे चाहेगी माँ कि पुत्र का हो अनिष्ट  
 ममता ही तो माता के उर का अमृत-डण्ड  
 जननी में जितना स्नेह, नहीं बह और कहीं  
 माता के कारण ही पवित्र है मनुज-मही !  
 जिस माता ने मुझको अरण्य आनन्द दिया,  
 उमने निश्चय ही मंगलमय उपहार किया  
 उसकी आज्ञा का पालन करना परम धर्म  
 उसकी बातों में लिपा निगूढ भविष्य-मर्म !  
 देखर मत छीनो हे माँ, अब अपना प्रमाद,  
 इससे होगा निश्चय ही इस जग को विपाद

रविकुल की मर्यादा रखनी है तुम्हें आज  
 हे चौर जननि ! ससार करगा तुम्हें याद !  
 शुभ ही फल निकलेगा माना की बाणी का  
 अपमान करो मत अब आँवों के पानी का  
 जो बात समय पर निकली, वह सम्मानित हो  
 आए सक्कट पर, वचन नहीं अपमानित हो !  
 रहना है अटल तुम्हें अब अपनी बातों पर  
 बनवास-दण्ड अब सब प्रकार ने है हितकर  
 यह दण्ड नहा, यह तो आत्मा का पुरस्कार  
 उस आज्ञा के नभ में न कहीं भी अन्धकार  
 हे भरत ! तुम्हीं अब कहो कि क्या करना अच्छा,—  
 प्रण को रखना या उसमें अब टरना अच्छा  
 तुम कर्मनिष्ठ तुम धर्मनिष्ठ, तुम प्रेमनिष्ठ  
 बोलो हे भाई ! विघ्न तुम्हारा है अभीष्ट ?  
 जो कहो, वही मैं करूँ वग्नूँ हे ! अति निर्मल,  
 तुम उतना ही पावन जितना है गगाजल  
 तुम उतना ही उज्ज्वल जितना हिमगिरि महान्  
 है तप्त ! फरो अब तुम्हीं मुझे आज्ञा प्रदान  
 माता इस समय बहुत भावुक, मुनि-जनगण भी  
 उनकी बातों से डोल गया गुरु का मन भी  
 मैं बहुत अकेला हूँ फिर भी उर-हीन नहीं,—  
 है दूर स्नेह-जल से मेरा मन-मीन नहीं !  
 दृढता से पालन किया राम ने जनमत का  
 ऊँचा है मूल्य हृदय के निश्छल स्वागत का  
 बनवास-प्रश्न लौकिकता से सम्बद्ध नहीं  
 सोचना पड़ेगा हमें सदा ही तथ्य सही  
 यह नहीं लोकमत का निर्णय, यह गृह-प्रसाद  
 क्या पितृवचन पर शोभनीय कोई विवाद ?  
 आगे बट कर पीछे हटना अब उत्तम क्या ?  
 क्या वचनहीन हो जाय राम की सत्य-कथा ?  
 हे भरत ! तुम्हीं अब कहो कि क्या करना अच्छा  
 प्रण को रखना या उसमें अब टरना अच्छा !



ममता के कारण करूँ आज आचरण-भंग ?  
 पथ से वापस हो जाऊँ सबके मग-सग ?  
 निर्णय लेना है तुम्हें कि अब क्या करना है  
 हे भरत ! तुम्हें ही इस उच्छ्वसन को हरना है  
 जीवित होते यदि पिता और यदि वे आते  
 तब भी क्या मेरे प्राण स्नेहवश मूड जाते ?  
 हे वन्धु ! वचन की महिमा निया बटाती है  
 उसके अभाव में मर्यादा घट जाती है  
 है जहाँ वचन का मूल्य नहीं, श्रद्धा न वहाँ  
 है जहाँ कर्म में कल-वल-छल ममता न वहाँ  
 बातों के अदल-धदल में मन दुबल होना  
 दुबल मन तो अपनी दुबलना ही होता  
 जिसका मन मत्स्य-मवल उमकी आत्मा मवला  
 मन-वचन-कर्म से मलिन प्राण इच्छा अबला !  
 हे अनुज ! यहाँ पर तो गुरुजन, ज्ञानी, ध्यानी  
 छोटे मुँह की छोटी ही होनी है वाणी  
 ऊँची बातों को सचमुच कैसे करूँ व्यक्त  
 है नहीं तुम्हारा राम अधिष्ठ वाणी-संगत !  
 मेरे कथनों का सरल मार है मात्र यही,—  
 तुम सोच-समझ कर कहो बात अब सही-सही  
 सुमने न कही है अबतक अनुचित वान कभी  
 चोलो हे भाई ! देते क्या आदेश अभी '

सुन राम-वचन, छा गई दान्ति की सात्विकता  
 पावन प्रभाव डालती अभोक्त राम-कथा  
 आदर्श त्याग का उत्प्रेरक, मग उदायक  
 है राजतंत्र में राम ज्योतिमय जननायक  
 सुविशाल मभा गभीर-धीर पर, आनामय  
 लगता कि सभी के लिए आज अनुकूल ममय  
 सबकी अर्धों उन एक भरत पर टिकी हुईं  
 उनकी इच्छा इनकी इच्छा में पिकी हुईं !

करना है आज प्रेम को ही पावन निर्णय  
 देखे किसकी होती है आज प्रसन्न विजय  
 कितनी आस्था, कितना विश्वास भरत पर है  
 लगता कि सत्य से श्रेष्ठ आज शिव मुन्दर है !  
 चिति चिन्तन मे तल्लीन भरत हो गए खड़े  
 क्या धर्मनीति का न्याय प्रेम ही आज करे ?  
 इनके मन से उनका भी मन है मिश्र हुआ  
 एक ही कमल दोनो के उर मे खिला हुआ  
 पर, आज बात कुछ और, परीक्षा की बेला  
 है चित्रकूट मे लगा प्रेम का ही मेला  
 सबके उर पर दशि-सूर्य-दीप का प्रिय प्रकाश  
 अरणोज्ज्वल दृग मे दो भाई के रुदन-हास  
 बस, कह दे भरत कि बन्धु ! अयोध्या चलना है  
 गृह-छल के कारण नही सभी को छलना है  
 होते है बड़ी-बड़ी भूलो मे भी सुधार  
 रवि ही तो करता दूर रात्रि का अन्धकार !  
 पर, निशि मे ही चन्द्रमा सुधा बरसाता है  
 सुन्दर दशशङ्क सागर मे ज्वार उठाता है  
 —उठ रहे अनेका भाव अभी जन के मन मे  
 पर टिकी भरत पर सभी दृष्टियाँ इस क्षण मे !  
 बोले प्रिय भरत कि 'प्रभु हे ! मुझ पर कृपा अमित  
 अति स्नेह-भार से मेरा अन्तर आज नमित  
 हे देव ! आपने अतिशय प्रेम प्रदान किया  
 पर, मेरे कारण विधि ने सबको दु ख दिया !  
 धुख-तिमिर व्याप्त, रवि के अनुचित निर्वासन से  
 उठ गया न्याय ही अपने उज्ज्वल आसन से  
 हर ओर कष्ट, हर ओर व्यथा, हर ओर बलेश  
 है घोर विपद् मे पडा हुआ सम्पूर्ण देश  
 ऐसी विपत्ति आई न कभी होगी भू पर  
 सबकी आँखें हैं लगी हुई प्रभु के ऊपर  
 हर ओर निराशा का सत्राटा छाया है  
 हर ओर कर्म-चैतन्य बहुत मुरझाया है !

कु ठित है तन, कु ठित है मन, कु ठित जीवन  
 कुम्हलाया है—कुम्हलाया है हर प्राण-सुमन  
 लगता कि सत्य के बिना मभी माघन निष्प्रिय  
 हे राम ! आपका निर्वासन किनना अप्रिय !  
 निर्वासन इतना असह कि जन आकुल-व्याकुल  
 निर्वासन इतना अमह कि मन आकुल-व्याकुल  
 हे नाय ! अयोध्या में अनहोनी बात हुई  
 दिन के रहते भी अन्धकारमय रात हुई !  
 सबकी इच्छा है यही कि प्रभु अब लौट चलें  
 जो स्नेह-दीप वृक्ष गया वहाँ, वह पुन जले  
 सम्मिलित प्रार्थना की पुकार फलहीन न हो  
 आशा-अभिलाषा-मीन आज जलहीन न हो !  
 वीणा का टूटा तार पुन जुड़ जाय आज  
 धारा उद्गम की ओर पुन मुड़ जाय आज  
 सबकी इच्छा है यही कि शिशिर बसन्त बने,—  
 शोकित नीरमता फिर सुखमय रसवन्त बने !  
 अगुआ हूँ मैं ही, वन में आनेवाला का  
 हूँ मैं ही सबके प्राणों के दुख का शोका  
 मेरे उर पर विद्वाम-दीप जल रहा एक  
 दुस्तह दुख-ज्वाला से भ्रुमा मेरा विवक  
 मैं अपनी व्यथा-बया को कैसे व्यक्त करूँ,—  
 प्रभु के चरणों पर अश्रु-कूल किस तरह घरूँ !  
 जो कहना चाह रहा, वह कह पाता न अभी  
 अति करुण कठ में उचित शब्द आता न अभी !  
 यो भी मुझमें वह जान कहीं जो बरूँ बात  
 मेरे मन पर तो विछी हुई है विरह-रात  
 लगता कि मिलन में मिटा नहीं है विरह-तिमिर  
 हूँ यही देवता किन्तु बहुत मूना मन्दिर !  
 अपने को देगूँ या उनको, यह द्वन्द्व आज  
 मेरी आशा पर आश्रित है कोसल-भ्रमाज  
 किसके हित में सोचूँ कि अहित का लेश न हो  
 किसका पल्ला पकडूँ कि किसी को बनेश न हो !

प्रभु को ले चलने को ही नो हम आए हैं  
 अनगिन लोचन इन कारण ही अकूलाए हैं  
 है स्वार्थ यही नवका कि देवता लौट चले  
 जो स्नेह-दीप बुझ गया वहाँ, वह धुनः जले !  
 अपनी गलती को माता ने स्वीकार किया  
 अगर गिरा कर उमने फिर मे प्यार किया  
 मैं जो कहता उनको भी उमने किया व्यक्त  
 टपकाया उमने आँवों से ही अश्रु-रक्त !

हे राम ! आप तो प्रेमपूरण, मैं प्रेमभक्त  
 मेरी निर्णायक बुद्धि नहीं उतनी मयाक्त  
 मेरे मन मे उठ रही स्वार्थ की सजल लहर  
 मेरी आँखें देखती एक ही प्रेम-डगर  
 शत्रुघ्न-मग मुझको ही जाने दें वन मे  
 उठ रहा भाव इन समय यही, मेरे मन में !  
 मैं ही भोगूँ वनवान-दण्ड, अब यही उचित  
 अब यह विचार का तार हो रहा है सकृत् !  
 हे देव ! आपको जो भाए, अब वही करें  
 इस दीन बन्धु के मन मे आप नदा विचरें  
 छोटा भाई हूँ, कैसे निर्णय करूँ देव !  
 आपके चरण पर व्यथा-फूल बयो घमूँ देव !

हे घमंपुरष ! जो आप कहें, स्वीकार वही  
 जो आज्ञा दें, होगा जीवन-आधार वही  
 आए हैं चित्रहूट मे हम आशा लेकर—  
 उत एक प्रेम की शब्दहीन भाषा लेकर !  
 करने आए हैं हम प्रभु का राज्याभिषेक  
 इसलिए यहाँ आए हैं हम नेना-समेत  
 आए हैं कुलगुरु, मुनि-महर्षि, पुरजन-परिजन  
 आए हैं लते पृथक्-पृथक् भी मनी-मण  
 उत शोक-निष्ठु पर हृष-यान बहना आया  
 दुख-यात्री को सुख-सुम्बल कुछ कहता आया  
 हे राम ! आपको ही चन्ना है अब विचार  
 रवि के रहते बयो रहे दिपद्घन-अग्रवार ?

भटके क्यो आज अयोध्या-धो भीषण वन मे ?  
 दहके क्यो आम किसी परिणीता के मन मे ?  
 हैं स्वय आप ही सर्व-समस्या-समाधान  
 हे करुणामय भगवान ! आप ही दुख-निदान !  
 जो करें आप हे नाथ ! वही स्वीकार हमे  
 जो देना चाहें दें समुचित उपहार हमे  
 सब के मुख पर इम ममय हर्ष-हरियाली है  
 करुणा पर फैली आशा की नव लाली है !  
 है राम ! आप की इच्छा पर ही सब निर्भर  
 आलोकित करें सभी को हे भूतल-भाम्बर !  
 पाएँ हम चित्रकूट मे पुरपोत्तम-प्रकाश  
 हे राम ! करें सबके उर मे पावन प्रवाम !

वर्षा ऋतु मे ज्यो चढ जाता है जल पर जल,  
 सभापण सुन कर वैसा ही जनमन हूतल  
 दायित्व-भार से बौसल्यानन्दन विमूक  
 क्या प्रिय-विनम्रता-वाण आज इतना अचूक ?  
 देखा वसिष्ठ ने सीतापति को बार-बार  
 आँखो को छूकर लीटी आँखें चार बार  
 इतने मे जनक-आगमन का सवाद मिला  
 मानो इस कठिन काल मे तृप्ति-सरोज खिला !  
 क्या भमतावश ही योगिराज आ रहे यहाँ ?  
 —यह जिज्ञासा सबके मन मे अब यहाँ-वहाँ  
 आ रही सुनयना रानी भी मिथिलेश-सग  
 —सब के मन मे अनुकूल भावना की तरंग !  
 हो गई म्यगित यह मन्ना आज निर्णय-विहीन  
 तरने लगा आशा-प्रवाह पर हृदय-मीन  
 सीता-ममेत श्रीराम चले निज बुटी-ओर  
 पीछे-पीछे लदमण जैसे मारन हिलोर  
 'अब क्या होगा ?'—सीता ने प्रन्न दिया पति मे  
 दोनो ही परिचित, दोनो के उर की गति मे

‘अब क्या होगा ?’—भाई से पूछा लक्ष्मण ने  
 कुछ कहा नहीं इनके मन को उनके मन ने !  
 चीती विभावरी विमल विदेह-प्रतीक्षा मे  
 लज्जा की लहरें अब कँकेयी-इच्छा मे,—  
 पछता-पछता कर प्राणो मे सकलित व्यथा  
 अपने को रूखा रही अपनी ही कुटिल क्या !  
 नतन प्रभात मे जनक-मिलन की उत्सुकता  
 ऋषियो के मन की फूरी-सी आनन्द-लता  
 माँ से मिलने को सभी वेदियाँ अति आतुर  
 आ रही याद बचपन की बातें मधुर-मधुर  
 शैशव से लेकर त्रिय विवाह तक की स्मृतियाँ  
 मन-ही-मन धनुष-यज्ञ-घटना की झकुरियाँ  
 जानकी देखनी अपनी छवि जल-दर्पण मे  
 गुनती माण्डवी मान की मति अपने मन मे  
 श्रुतिकीर्ति मोचती है कि उसे कुछ करना है  
 अपनी माँ से कुछ कहने मे क्या डरना है ?  
 डूबी-सी है उमिल्ला हृदय-गहराई मे,  
 वह लिपटी है अपनी पवित्र नरणाई मे !—  
 ‘बीते कितने दिन किन्तु मिलन हो सका नहीं  
 लोचनदल दर्शन-पुण्य अभी टो सका नहीं  
 आए थे वे पर, बिना मिले ही चले गए  
 भर गए भाव के मेरे मन मे नए-नए !  
 इतना ही क्या कम है कि यहाँ तक आए वे  
 कैसे मैं कहूँ कि आकर कुछ सकुचाए वे  
 अपने बादल से उन्हे घेर मैं लेती क्या ?  
 उनके तन-मन की भन्ना फेर में देती क्या ?  
 संकल्प ले चुकी हूँ मैं भी उनके समक्ष  
 मेरे मन मे चौदह वर्षों का विरह-लक्ष  
 आ गई यहाँ इसलिए कि आए सभी यहाँ  
 एकाकी रहने दिया किमी ने नहीं वहाँ !  
 यदि इसमे भी कुछ भूल, क्षमा माँगूँ किससे ?  
 अपराध हुआ क्या देव ! यहाँ कोई मुझसे ?

उर्मिले ! तुम्हारे तप में लगा बलक एक  
 विरहिणी ! सुरक्षित ग्वाँ मदा अपना विवेक  
 मन के डोरे से मत बाँधो वन के मृग को  
 अपने दृग में अत्र भरो नहीं उनके दृग को  
 करना है केवल तुम्हें लक्ष्य का धवल ध्यान  
 दृवने नहीं पाए नुधि-रस में विरह-ज्ञान !  
 तुम योगिगज की प्रिय पुत्री, यह स्मरण रहे  
 मन के भू पर निर्वृन्द आत्म का चरण रहे  
 उज्ज्वल वियोग भी याग एव, यह रहे याद  
 करना है नहीं कभी कोई कोमल विपाद !  
 उर्मिले ! तुम्हें अपनी सीमा में रहना है  
 उज्ज्वल मन को उज्ज्वल गंगा-भा वहना है  
 तप का पीयूष तुम्हें पीना है यौवन में  
 सुख-गरल घोरना नहीं तुम्हें है अत्र मन में !  
 प्रत्यक्ष नहीं है अमृत त्रिविध त्रिप के समान  
 तप-मुधा प्राप्त करते हैं केवल महाप्राण  
 उर्मिले ! तुम्हें उत्तम माधना-मुयोग मिला  
 उर-मानमगेवर में ही विरह-मरोन खिला !

दार्शनिक जनन के शुभागमन से मभी मुदिन  
 उनके आने से गोताम्बर में मूर्य उदित  
 बनवास-वेश को देख, न चिन्तित योगिराज  
 अनुभूत हृदय की आगामी प्रभु राम-काज  
 रघुवीर-भाव में तक्षण ही परिचित विदेह  
 नाव से जित्त तक परिलक्षित गनि-जनुबूल स्नेह  
 प्रिय धर्मपुत्र को लगा लिया निज छानी से  
 निकली आभा दोनों के उर की बाती से !  
 मोता को देख, कहा कि 'नुते ! अब तू गुन्दर  
 अब तुझमें उठने लगी योग की विरण-उदर  
 अब तू निकाल सकती है आत्म-विभा मन की  
 तू अब मम्हाए सकती प्रनिविम्ब-प्रभा तन की ।

लख मौन उमिला को, विदेह ने कहा यही :  
 'बेटी ! तू तो बन गई योग की प्रेम-नही  
 तेरे मुख पर भी सीता-नी आभा नवीन  
 तू नही आज—तू नहीं आज है ज्योतिहीन !'  
 श्रुतिकीर्ति-नाण्डवी को भी नृप ने स्नेह दिया—  
 सत्यानुसार ही सबको आज प्रमत्त किया  
 लक्ष्मण को कहा कि 'तुम तो सचमुच महावीर  
 दृग मे न तुम्हारे, दुर्बलता का अशु-नीर !'  
 देखकर भरत को जनकराज गभीर तनिक  
 त्यागानुराग के निकट योग की दृष्टि नमित  
 मिलता-जुलता-मा भीतर का भूतल प्रकाश  
 चेतना-प्रेम का अर्धपूर्ण पावन मनास !  
 बोले विदेह 'हे भरत ! तुम्हारा त्याग घन्य,—  
 अग्रज के प्रति शिवमय मुन्दर अनुराग घन्य  
 अबतक तुमने जो किया, अतुल्य वह उदाहरण  
 है भक्तिगद्य में भरा तुम्हारा प्रेम-मुमन !'  
 देखने योग्य था जनक-निष्ठ-मिलन उन क्षण  
 देखते रहे वह दृश्य सभी मुनिगण, ऋषिगण  
 दोनों कुल की देवियां परस्पर हिरीमिली  
 इस चित्रकूट में मिलन-लताएँ बहुत खिली !  
 सीता को देख, मुनयना घोटी मुसकाई,—  
 उमिला-निकट वह अनायास कुछ अकुलाई  
 लज्जित कँकेयी को उसने अति स्नेह दिया  
 गुणवती मुनयना ने सबका सत्कार किया  
 कौसल्या-पग पर पद्म-शीत शोभायमान  
 समघिन से मिल लक्ष्मण-माता के खिले प्राण  
 वह मिलन-दिवस, वह मिलन-गत, वह मिलन-प्रात  
 लगता कि समस्त व्यथाओं की कट गई रात !  
 वन-भ्रमण एक दिन जनक-भरत का सग-भग  
 प्रिय चित्रकूट में विविध मूढम वार्ता-प्रसंग  
 चलते-चलते ही गूढ तत्त्व का अनुचिन्तन  
 समयानुसार स्थिति-गति में नूतन परिवर्तन !



कामदगिरि का भी अवलोकन निम्नापूर्वक  
 राजपि-भाव से भरत हृदय मे नई चमक  
 विश्वास, राम की नित्य नई लीलाओ पर  
 लक्षित उनका निर्वासन भी जग-हित हितकर ।  
 हे भरत ! काल की गति पर तुम विश्वास करो  
 आंसू से धुले हुए दृग मे अब ज्योति भरो  
 छोट जाएगी प्रेमाम्बर से जब मोह-घटा,—  
 देखोगे सब तुम अपने मे आनन्द-छटा ।  
 भौतिक सुख दुख से ऊपर जो उठ मका नहीं,  
 जीवन-रहस्य वह नहीं जानता सही-मही  
 हम सभी एक ही परमचेतना से निकले  
 उस एक दीप से प्राण प्रदीप अमन्य जले ।  
 हे भरत ! चित्त-दर्पण मे देखो विश्व-चित्र  
 सागर-तरंग-ही तो कुटुम्ब-जन-शत्रु-मित्र  
 एकात्मा का अमिन्त्व मानना होगा ही  
 इसके अभाव मे ही तो मानव-मन मोही ।  
 सबका समान अधिकार तत्त्वत भूतल पर  
 बल-बल-छल के कारण ही दीव रहा अन्तर  
 आलोकित होगा जिस दिन विश्व विवक कभी,  
 आएगा महामनुजता का ऋतुराज तभी ।  
 प्रभु-इच्छा से ही मनुज-वृद्धि मे निमल गति  
 है जिसका शुद्ध हृदय, उसकी ही पावन मति  
 है प्रेम नहीं जिममे, उममे है त्याग कहीं ।  
 जिममे न ज्ञान, उममे उत्पन्न विराग कहीं ।  
 हे रामानुज ! तुम राम-कार्य स्वीकार करो  
 जीवन-अभाव मे अब तुम पूरक भाव भरो  
 निज भक्ति-ज्ञान का करो समन्वय कर्मों मे  
 है प्रेम बहुत ऊँचा जग के सत्र घर्मों मे ।  
 मिथिला से मे ममनावन यहाँ नही आया  
 दारुण घटनाओ मे भी चित्त न अकुटाया  
 घटना-दुष्टटना तो होती ही रहती है  
 उज्ज्वल गंगा चट्टानों पर भी बहती है ।

मैं तो आया इसलिए कि प्रेम प्रदीप बने,—  
 मन की मानवता स्वयम् अकाम महीप बने  
 घेरे न निराना कभी सुमगल आशा को  
 उलझा मत ले भावुकता भोगी भाषा को !  
 हे भरत ! भक्ति का भाव-योग निष्क्रिय न कभी  
 आलसी पुरुष-नारी ईश्वर के प्रिय न कभी  
 कर्तव्यहीन मानव का कोई धर्म नहीं  
 अज्ञानी ही जानता कर्म का मर्म नहीं !  
 मेरी सीता न चल्क-वसन किया धारण  
 मैं दुखी नहीं हूँ किंचित् भी इसके कारण  
 मैं देख रहा हूँ केवल काल-प्रवाह एक  
 है वही जनक दुःख में अमलिन जिसका विवेक !  
 दुःख-सुख से जो ऊपर है भरत ! विदेह वही  
 है तात ! तुम्हें बतलाता हूँ यह बात सही  
 उत्तम योगी में विष्व-प्रेम का योग व्याप्त  
 ससार-धन का ज्ञान उमीको सदा प्राप्त !  
 जलता है योग-भोग-सगम पर प्रेम-दीप  
 स्वीकार रहा है यही तथ्य मेरा महीप  
 अन्यथा नृपति बनना भी है अपराध घोर  
 हे भरत ! भोग का कहो नहीं है ओर-छोर !  
 शासक जितना ही अनासक्त, सुविधा उतनी  
 शासक जितना ही भोग-भ्रान्त, दुविधा उतनी  
 भीतर-बाहर का सत्य एक ही होता है  
 दोनो प्रकार का भार सत्पुरुष ढोता है !  
 जो लोग दुरगी कर्मनीति अपनाते हैं,  
 वे निश्चय ही पछाते हैं, अकुलाते हैं  
 भीतर-बाहर का ऐक्य दिव्यता से सम्भव  
 होता है प्रेम-योग से समता का अनुभव  
 ममता की महिमा बड़ी किन्तु समता उत्तम  
 इनके अभाव में कोई कर्म नही निर्भ्रम  
 कर्मों के आगे-पीछे जिसका धर्म नहीं  
 हे भरत ! समझता वह मनुष्यता-मर्म नहीं !

सत-शिव-सुन्दर के विना धर्म-आदर्श नहीं  
 उद्देश्यहीन उत्तम कोई सघर्ष नहीं  
 एकात्म-दृष्टि के विना अपूर्ण माधना भी  
 सत्य के विना अमुन्दर रचिर भावना भी ।  
 अन्तर पवित्र हो इसीलिए प्रार्थना मधुर  
 जो सदाचार से हीन, वही तो मनुज अमुर  
 देवत्व मिद्धि से श्रेष्ठ तुम्हारे बन्धु राम  
 हे भरत ! तुम्हे भी तो करना है राम-काम  
 वे कौन ? कहीं जा रहे ? इसीका करो ध्यान  
 नव योग-दृष्टि से देखो नव घटना महान  
 देखो निज प्रेम-शिखर पर चढ़ कि कहीं है वे  
 देखो, वे इधर, उधर, उस ओर, यहाँ हैं वे !  
 अग्रज को तुमने जाना, इनको पहचानो  
 उनको तुमने माना तो अब इनको मानो  
 प्रेमात्मा ही परमात्मा को पहचानेगी  
 दिव्यास्था ही उनके स्वरूप को जानेगी  
 हे भरत ! राम ही पुरपोत्तम, यह स्मरण रखो  
 उनके निर्वासन से तुम कभी अधीर न हो  
 करने दो लीला उन्हें विपिन-रण में अनेक  
 हैं सर्व शक्ति से पूर्ण मात्र राम ही एव !  
 उनकी इच्छा ही बाण निमिर-संहार-हेतु  
 उनकी वरणा ही कृपा सजग समार-हेतु  
 घाँघो न विश्वपति को लघुता के बन्धन में  
 तुम इस रहस्य को रखो मात्र अपने मन में  
 तौड़ा जिसने शिव का पिनाक, वह महाविष्णु  
 वह कालपुरय सब विधि मुशील, मय विधि सहिष्णु  
 उज्ज्वल चरित्र का मापदण्ड श्रीराम स्वयम्  
 भोगते अभय वनवाम-दण्ड श्रीराम स्वयम् !

राजपि जनक की योग-दृष्टि ने गुले नयन  
 मुद्र गया प्रेममय उर का मृदुद्र मोह-बन्धन

आयोजित चित्रकूट में सभा विशाङ्क एक  
 फिर वही राम न मर्मभरी बातें अनेक  
 इस वार राम की वाणी स पीयूष झरा  
 शब्दों का पुष्प-समूह हृदय पर ही बिखरा  
 इस वार राम ने सबके मन को मोह लिया—  
 निज सरस तर्क से सबके उर को तृप्त किया  
 समधी राजपि-निवट ककेयी आ न सकी,—  
 कुछ कहती भी ता उस क्षण उस सुना न सकी  
 गुरु से आदेश मांग कर भरत उठे कतल  
 इस वार हृदय—इस वार प्रेम अविक्ल-अविक्ल ।  
 इस वार प्रार्थना में आस्था की अरुणाई  
 आँसू-बिहीन इस वार भरत की तरणाई  
 इस वार राम को देख आत्म-गभीर प्राण  
 इस वार भक्ति के निवट भाव स भरा ज्ञान  
 'प्रभु हे ! अब आज कहूँ क्या ? —व बोले सविनय,—  
 'अपित है हूँ भाई ! चरणों पर अनुज-हृदय  
 जैसी आज्ञा हो नाथ ! उसीको ग्रहण करूँ  
 अपने आँसू में आज आपकी विरण भरूँ ।  
 मिल गया मुझे सबकुछ, अब ऐसा लगता है  
 सतोष उसीको जो कि रहस्य समझता है  
 चौदह वर्षों की अवधि बहुत लम्बी है प्रभु !  
 यह विरह-शिखा तो सचमुच नभ-चुम्बी है प्रभु !  
 कैसे कट पाएँगे दिन केवल आशा में  
 धीरज कबतक टिक पाएगा अभिलाषा में  
 हे दीनवन्धु ! हे दीनवन्धु ! हे दीनवन्धु !  
 कैसे हम पार करेंगे पथ, हे कृपासिन्धु !  
 लगता कि गगन का सूर्य गगन से दूर हुआ  
 लगता कि स्वयं मन ही अब तन से दूर हुआ  
 प्राणों को स्वयं सम्हालें हे करुणानिधान !  
 राम के बिना कब पाएँगे क्या भरत-प्राण ?  
 पर, प्राणों का क्या मोह ? सभी को मिले स्नेह  
 जिसमें न प्रेम का वाम, निरर्थक वही देह

मिनती मेरी बस यही कि प्रीति नहीं छूट  
 टूटे माटी का तन, विश्वास नहीं टूट ।  
 मजबूत छूटे पर, मेरे राम नहीं छूटे  
 मरन की बला उनका नाम नहीं छूटे  
 हे भाई । मेरी भूलो को अब विसरा दें  
 अब अपनी विरणो को उर-पथ पर विखरा दें  
 दें शक्ति कि आज्ञा का पालन कर मके भरत  
 दें शक्ति कि कर पाऊँ चुपचाप विरह-स्वागत  
 घरणानुरक्ति दे ताकि मिलन की आम रहे  
 पावन विरक्ति द ताकि समीप प्रकाश रहे ।”

मुन भरत-प्रार्थना, नमिन राम का मुखमण्डल  
 नयना क भीतर-भीतर ही नयनो का जल  
 लोचन-उत्पल्लव दो क्षण तक खुल मके नहीं  
 पूछते अधुक्कण—‘दृग हे । तुम धुल सके नहीं ?’  
 इस अवसर पर मिथिलापति मौन रहे केवल  
 देखा बस एक उन्होंने ही आँसो का जल  
 सरसग नहीं यह, मभा अपूर्व विदाई की  
 है दर्शनीय प्रिय मुद्रा राम गुमाई की ।  
 सचमुच चौदह वर्षों की अवधि नहीं थोड़ी  
 वास्तव में क्रूर नियति ने की है बरजोरी  
 —भाण्डवी देखती वार-वार उमिला-नयन  
 आणा निश्चय ही इन आँसों में सावन !  
 बोले श्रीराम : ‘भरत हे ! तुम कर्तव्य-सजग  
 टेढ़ा-मेढ़ा होता ही है जीवन का मग  
 पुरपार्य धर्म को करना है स्वीकार तुम्हें  
 श्रद्धापूर्वक मुनती है आत्म-पुकार तुम्हें  
 बन्ध्याण इमी में है कि पितृ-आज्ञा मानो  
 उनकी आज्ञा को ही मेरी आज्ञा जानो  
 बन्ध्याण इमी में है कि सम्हारो राज-राज  
 छोड़ो हे भाई । उचित बर्ण-हित लोन-राज

एक ही बात कहता है तुमसे आज राम :  
 है नाम तुम्हारा जैसा, वैसा करो काम  
 शोभित हो मिहासन समता के मूरज-भा  
 ममता-विकास हो शरद-भुगन्धित पवज-भा !  
 इस मूल मंत्र से ही मानवता का विकास  
 इस दृष्टि-सत्य से ही फँले भू पर प्रगाढ  
 ममदर्शी शासन में ही सभव पूर्ण न्याय  
 करना है तुम्हें प्रेम से ही सक्षम उपाय ।'

सुन रामाज्ञा, प्रिय भरत नमिन पर, मुदित नहीं  
 उर के अम्बर में सूर्य उदित, नगि उदित नहीं :  
 'मिहासन पर मैं बैठूँ, यह कैसे सम्भव ?  
 सोचना पड़ेगा अब उपाय कोई अभिनव  
 आज्ञानुसार ही होगा शासन-मचालन  
 समता-मुनीति से होगा राज्य-प्रजा-पादन  
 सब कुछ होगा पर होऊँगा भूपात्र नहीं  
 बैठेगा भरत राम-आसन पर भला कहीं !  
 होगा, होगा, सबकुछ होगा, सब होगा ही  
 बैठेगा भरत राम-आसन पर भला कभी ?  
 मैं रामराज्य का सेवक ही हो मचना हूँ  
 है जितनी मृद्धमे शक्ति, भार तो मचता हूँ  
 योग्यता नहीं मुझमें, पर आज्ञा शिरोधार्य  
 पालन न करूँ तो मोचेंगे क्या आज आर्य  
 करना ही है उनके सिंहासन का पूजन  
 करना ही है जनता-हित ममता-जाराधन  
 पर, नृप-शासन में समता-सूर्योदय कैसे ?  
 मिल पाएगी सबको सम-शक्ति-विजय कैसे ?  
 फिर भी, चेष्टा करनी ही है, करनी ही है  
 रामाभा यथाशक्ति जग में भरनी ही है  
 लगता कि राम ही हैं समता के पुरपोत्तम  
 इस विश्व-कार्य के लिए राम ही हैं नक्षम

पर, करना है मवको सत्रिय उनका विचार  
 तज दिया उन्होंने इमी हेतु राज्याधिकार ?  
 करना है राजा-रहित राज्य का सचालन  
 करना है उनकी आज्ञा का विधिवत् पालन  
 चौदह वर्षों तक होगा भरत-प्रयोग एक  
 फेंगे अगजग में उनका शासन-विवेक  
 राम की चरणपादुका रहेगी गद्दी पर  
 फूटेगा उससे दिव्य प्रेरणा का निक्षर  
 माँगूँ मैं उनसे चरणपीठ इच्छानुसार  
 निश्चय ही राम सुनगे मेरी यह पुरार ।

इच्छानुसार प्रभु ने दे दी पादुका आज  
 हर्षित बभ्रु, मिथिलेश, मन्निगण, प्रिय-समाज  
 मवके सब हर्षित, बंकेयी केवल उदास  
 उसका निर्मल मन एक राम के आम्रपाम !  
 हर्षित आँसू से सजल विदाई की घड़ियाँ  
 है टूट रही अब मोह-पुष्प की हयकड़ियाँ  
 सहृदय सीता की इच्छा में उमिला मुदिन  
 उसके समक्ष श्रीराम-कुटी में चन्द्र उदिन !  
 केवळ दो बातें हुईं कि दोनों हुए मौन  
 दोनों प्रदीप की मिलन-क्याएँ बहे कौन !  
 सीता की सहृदयता से विरह-प्रमूढ क्विले  
 मिल कर जो मिल न सके, वैसे दो प्राण मिटे !  
 हर्षित आँसू से सजल विदाई की बेला  
 अब लगा उजड़ने चित्रकूट का प्रिय मेरा  
 ऐसा सयोग नहीं मिलता है बार-बार  
 इस प्रेम-युद्ध में नहीं किसीकी जीत-हार !  
 मव साथ-साथ ही चले किन्तु रह गए राम  
 रह गई जानकी, रहे रहे लक्ष्मण ललाम  
 वे ही रह गए यहाँ जो रहने आए थे  
 वे ही बादल रुक गए यहाँ, जो छाए थे !

सुधि की लहरों इनके मन में, उनके मन में  
संकल्प-दोष जन्मते हैं सबल-सबल तन में  
उस मूनेपन में हुआ राम-बाल्मीकि-मिलन  
खिले उठे मौन भीतापति के राजीवनयन !





## अरण्यकाण्ड

फिर चित्रकूट में पहले जैसी शान्ति व्याप्त  
 कोलाहलहीन प्रकृति में आत्मिक शान्ति व्याप्त  
 फिर गिरिनिकुञ्ज में सीता के संग राम-भ्रमण  
 दैनिक सेवा में लीन धनुर्धर प्रिय लक्ष्मण  
 निर्झर के निकट बंठ कर फिर वार्ता विमर्श  
 फिर हिरण्य मोर को देख, नयन में हरित हृष्य  
 खिलते सरोज को देख, पुन उर आनन्दित  
 क्षरतो के गीतो को सुनकर मन भी झकून ।  
 फिर हवन-कर्म के बाद माघु-सत्संग नित्य  
 फिर को-किरात-भीरु में प्रेम-तरंग नित्य  
 निज घर से मुन्दर पूरु चयन कर एक बार,—  
 गूँथा रघुवर ने स्फटिक शिला पर मुमनहार  
 पहनाया सीता को प्रभु ने पुष्पाभूषण  
 सार्विक श्रृंगार देखकर अपञ्च अमञ्च मन ।  
 लगता कि राजपद्मिनी अठकून हुई आज  
 लगता कि शक्ति-मुन्दरता झकून हुई आज ।  
 अच्युत दिव्य सौन्दर्य-भाव में राम ही राम  
 बनवामी-जीवन का मधुमय यह प्रथम दिवस  
 वस, राम ही राम, वस राम ही राम, वस राम ही राम  
 निर्मन्त्रता के कारण न वही भी अममजम  
 लगता कि ब्रह्मा ने माया का अभिषेक किया  
 लगता कि रूप को ही अम्प न अमृत दिया  
 इस महाधीनि की पावनता में राम अनेप  
 आ रहा स्मरण बैलास-कुञ्ज का उमा-वेश ।

धृगार देख, उस कोए का मन ललचाया  
सहसा सुदूर से उडता-उडता वह आया  
जानकी-चरण मे चोट भार कर भागा वह  
बहते हैं, इन्द्रपुन या वडा लभागा वह  
उसके दृग मे लग गया राम का दृष्टि-वाण  
बच गए वृपा के कारण दृष्ट जयन्त-प्राण  
जानकी-मग कुछ देर वहाँ पर राम रहे  
दोनो ने एक दूमरे को प्रिय वचन बहे  
अन्त मे कहा प्रभु ने कि 'दिव्य यह गिरिप्रदेग,  
पर, करनी है आगे की अब यात्रा विभेप  
दण्डकारण्य की ओर हमे अब जाना है  
वचनानुसार अपना कर्तव्य निभाना है  
प्रिय चित्रकूट मे हमे सभी पहचान गए  
ऋषि-मुनि ही नही, विपिनवामी भी जान गए  
सबके प्रति मुझमे श्रद्धा, प्रेम और आदर  
वहते ही रहे यहाँ मुख-भरे म्मह-निर्झर ।  
रहते-रहते हो जाता सबको म्यान-मोह  
होता है दुखद, प्रीति के कारण ही विछोह  
पर, हम तो तापम पथिक, प्रात ही चत्र देंगे,—  
अपनी प्रिय पणकुटी से देवि । विदा लेंगे  
तेरी सुन्दर वाटिका यही रह जाएगी  
तर-रतिवा तेरे विना कभी अकुत्राएगी  
पाकर न तुझे, अकुत्रा सकते हैं मृग-मयूर  
उड कर आ सकते हैं कपोत भी दूर-दूर ।'

लेकर मुनि-जन से विदा, बटे तीनो पथ पर  
नयनों मे दृश्यो के झोंके सुन्दर-सुन्दर  
सतरगी विहग-पक्तियों की चचल उडान  
इस ओर कभी, उस ओर कभी जा रहा ध्यान  
दौडते हुए वारहसिगे जा रहे उधर  
वह हरिण-भुण्ड आ रहा इधर—आ रहा इधर

उम एक वृक्ष पर केवट मुग्गे ही मुग्गे—  
 कुछ तो पीले, कुछ लाल और कुछ हरे-हरे !  
 आए मव अत्रि महामुनि के आश्रम में जब,  
 मुन राम-जागमन, रहे न वे कुटिया में अब,—  
 निकले बाहर, आए आगे, बट चट चरण  
 मि गया देखने ही दोनों का अलमन  
 स्नेहादिगन, मन्त्रा और फिर प्रभु-पूजन  
 मानन्द प्रायेना-वेग में नयनों में घन  
 आह्लादिन अन्तर में अदृश्य की दृश्य-भूति  
 दिव्यास्या से होनी अनृप्ति की तृप्ति-भूति !  
 रम-भग्न अत्रि की चिनवन में चन्द्रमा-कान्ति  
 धामिक आनन्द-ज्वार पर अमृत-प्रमत्त गान्ति  
 जैमी मन की भावना, प्राप्ति भी वैसी ही  
 जैमी उनकी इच्छा वैसी ही इनकी भी !  
 मुनि-मन-पट पर उद्गामिन विष्णु-स्वरूप रचिर  
 निगुण-नयनों में सगुण-प्रकाश आज ही स्थिर  
 साक्षात् विष्णु-रश्मी श्रीराम-जानकी-शिव  
 दशरथनन्दन केवल न श्रेष्ठ रघुकुल के रवि !  
 उम महामनस्वी मुनि ने सबकुछ जान लिया  
 उनकी आंखों ने उन्हें तुरन् पहचान लिया  
 अपित चरणों पर भक्ति-भाव के फूल सभी  
 मिलता है जनम-जनम पर दर्शन-योग कभी !  
 निष्काम राम, तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम  
 अभिराम ध्याम ! तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम  
 ॥ ज्योति-निन्दु ! तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम  
 हे सूर्य-इन्दु ! तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम  
 तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम,—  
 हे मर्यादा पुरुषोत्तम, हे अवनरित राम !  
 अवलोकित श्रेष्ठि-मुनि मगुण लोक-नीला लताम  
 हे त्रिगुणातीत पुनीत सच्चिदानन्द राम !  
 हे अमुर-विनाशक, मुर-नर-मुनि के उदारक,  
 हे अगुभ भक्ति के महारक प्रभु शुभकारक !

हो सफल तुम्हारी जय-यात्रा हे जगनायक,  
 सब विधि हो यह वनवास विश्व-हित सुखदायक  
 हे महामहिम ! असुरों का अब उत्पात असह  
 दक्षिण दिशि में तो नित्य दानवी दुःख दुःस्तह  
 बस, वही-वही ही उधर नम्र मानव-निवास  
 हर रहा असुर द्रुत गति से अब मुर का प्रकाश !  
 असहाय मनुज का रक्त पी रहा है दानव  
 मानव को खाकर आज जी रहा है दानव  
 मोटे-मोटे राक्षस के निर मे स्वर्ण-शृंग  
 असुरों का कामी मन ही चंचल वनव-भृंग !  
 हीरे-मोती-चांदी के उनके दाँत मभी  
 तामसी शक्ति पाकर न उह नलोप वभी  
 उठ रही लोभ की लहर, उठ रही नोव-रूप  
 मोहान्धकार में गीन अंगु में वनव-कण्ट !  
 नित नारी का अपहरण नित्य ही कल-वल-छल  
 निर्भीक विचरता है नर-भक्षी निशिचर-दल  
 घर विविध रूप, उत्पात मचाता नित राक्षस  
 उसकी आँखों में मात्र रात ही, नहीं दिवस !  
 शोणित-मदिग पी-पीकर उमका फूला तन  
 हिंसा करते-करते उमका गर्वाला मन  
 बस, अहंकार ही अहंकार है राक्षस में  
 उसका तन-मन भी नहीं रहा उमके वश में !  
 वृषि-वर्म न करना असुर, लूटना वह पशु-घन  
 तृष्णा ही उनकी तृप्ति, भोग उसका माघन  
 भौतिक विद्यास ही असुर-रक्ष्य, कुछ नहीं और  
 तम-भ्रान्त निरवुज इच्छा करती भागदोड !  
 भुनना है, नागर के उम पार वनव-नगरी  
 उटनी है वहाँ निरलस मदिग की गहरी  
 दानव की अतुलित शक्ति-केन्द्र है वहीं एक  
 है वहाँ बुद्धि ही प्रवृत्त, नहीं जीवित विवेक  
 हे राम ! आपकी यात्रा होगी व्यर्थ नहीं  
 प्रभु-चरणों से होगी पवित्र, सनस्त मही

लेता है असुर-रूप में जन्म कर नर ही  
 पापी मानव बनता पृथ्वी पर निश्चिन्त ही ।  
 जो जितना रक्त श्रुमता, वह उतना दानव  
 शोषण करने वाले को कौन कहे मानव ?  
 धन-सचय ही आजीवन जिसका लक्ष्य एक,  
 उसके प्राणों से बनते हैं राक्षस अनेक ।  
 जो बहुत अधिक लेकर बैठा, वह मनुज असुर  
 निष्क्रिय भोगी जो निन हँठा, वह मनुज असुर  
 जो जितना अनुचिन्त करता, वह उतना पापी  
 जीवित राक्षस ने ही मोना-चाँदी चाँपी ।  
 यज्ञों के बल पर करना जो पड़ यन्त्र मन्दा —  
 क्या वह भी मानव रहाने के योग्य भगा ?  
 हे राम ! कहाँ तक कहें असुर की बनक-बन्धा  
 उत्तम जन-मन में ध्यात युगों में घोर व्यथा  
 समदर्शी भाव विलुप्त, व्यक्तिगत बित-होड़  
 है पकड़ रही हर ओर असुरता आज जोर  
 पूछना कौन किमको ? इन ओर सभी चिन्तित  
 ऋषि-मुनि आलोक-प्रतीक्षित, सज्जन जन विचलित  
 असुरों के चंगुल में विद्या-विज्ञान-बला  
 कचन-कानन में शुभ्र चेतना भी अबला  
 सच बात सुनाने से जिह्वा पाटी जाती  
 कचन-प्रधान भूतल पर आत्मा अबु-गती ।  
 आसुरी सभ्यता गरज रही हे राम ! आज  
 सोने की विजली लरज रही हे राम ! आज  
 मदिरा की काली घटा उमड़नी उधर-उधर  
 होना अयम-आभाम, दीटनी दृष्टि जिघर  
 दानव भी करते यज्ञ दान की सिद्धि-हेतु  
 चाहते बनाना अन्न के नूतन स्वर्ग-नेनु  
 पीते हैं गून विन्नु करते वे भी पूजन,—  
 मुनते हैं वे भी तत्र-मत्र वा उच्चारण  
 कहते हैं कुछ, करने हैं कुछ, गुनते हैं कुछ,  
 तोड़ते यहाँ कुछ किन्तु यहाँ चुनने हैं कुछ

टेटिमेटो होती है चाय निशाचर की  
 बाहर की बान न वानी, जैसी भीतर की !  
 हे राम ! हमें भी वैदिकता का तनिक ज्ञान  
 नम्रपूर्ण नृष्टि में ज्योति और तम का वितान  
 है ज्ञात वृत्त की शक्ति इन्द्र की क्षमता भी,—  
 दिति-जरिनि-शक्तिया की नभेद-भुगमता भी  
 हम भी नमुद्र-नघन का अथ नमस्त लेते  
 भू-अन्तर्गिप्त-ब्रह्माण्ड हमें भी धुनि देते  
 देवामुर की मग्नान-चतना हमें ज्ञान  
 हम जान रहे कि मयं-गति से ही दिवन-रात  
 अथगत है अग्नि-रहस्य रद्र षा ताण्डव नी  
 सचिन मानन में ब्रह्म-विष्णु का अनुभव भी  
 एक ही नियम से नचात्त है निखिल नृष्टि  
 एक ही मत्य पर टिकी हुई विश्वास-दृष्टि  
 हे राम ! कार्य-वारण तब ही धृति-योग नहीं  
 ब्रह्माण्ड स्वत ही रचना का संयोग नहीं  
 प्रभु-इच्छा पर ही आधारित निम्नीम जगत  
 नित परम शक्ति की नृष्टि में अपि-मुनि-मस्तक नत ।  
 वमुष्ठावासी हम, नभ की अधिव न बात करें,—  
 प्रभु के कानों में युग का करण-मंत्र भरें  
 आभासित चारों ओर समर की फिर अमान्ति  
 हे राम ! आपके दर्शन से मिट गई आन्ति  
 कर रहे प्रतीक्षा दक्षिण में अब मुर-वानर  
 हैं बाट जोहते बब में उघर नृक्ष-विन्नर  
 पशु-पक्षी में भी दिव्य शक्ति का समावेश  
 कालानुसार ही हैं हरि ! हरे असह्य क्लेश  
 करते हैं कपिल नोक-शोक दानव-दल से  
 तुलना करते अपने बल की उनके बल से  
 पर, रक्षल का अरुल भारी है बहुत राम,  
 वह आंस मूँद कर करता है अब घणित काम  
 निर्भीक वानरों ने अमुरों को छेड़ा है—  
 उन लोगों ने वन-पथ पर उनको घेरा है

पेशों पर चढ़ कर, चत्रा रहे मुँह पर थपड़  
 भागे हैं दुर्बल दनुज उधर गाकर ठोकर  
 दुर्भाग्य कि अमुर-राज्य में उतन नर न अभी  
 पर, दीव पड़ेंगे वे भी पर कभी-कभी  
 हठियाँ दिनाई देगी उनकी,—मुनिगा की  
 आ जाती उन्हें सब कर बाद मृत्यु-क्षण की ।  
 प्रेतात्मा की आवाज मुनाई देगी ही  
 परमाणुमयी आकृतियाँ दीव पड़ेंगी ही  
 तैरेंगे धीरे-धीरे प्राण प्रकाश-रहस्य पर भी  
 दौड़ेंगी चेतन छाया विपिन-डगर पर भी ।  
 हे राम ! बानरा में अग्रनग नर भी हैं  
 अमुरों में अधिक घनतं भग्न-दगर भी हैं  
 पर, कहीं दनुज विकराऊ, कहीं वे निरुद्धल जन  
 राक्षस के पास अपरिमित माया के माघन  
 अपराध मनुज का ही कि दनुज इतना सशक्त  
 मघटन-माघना में मानव अबनक विरक्त  
 ममुचिन कर्मों के कारण ही नर-वतन हुआ  
 हिमगिरि पर भी तो अमुरों का आक्रमण हुआ !  
 जब-जब स्वधर्म का पतन, दनुज-वृत्थान तभी  
 जब-जब अधर्म की वृद्धि, ध्याप्त अभिमान तभी  
 जब-जब मानव दुर्बल, दानव की शक्ति बड़ी  
 कायरता के कारण वतंव्य-विरक्ति बड़ी  
 राक्षस-विनाश के लिए हुआ रामावतार  
 सुन ली हे प्रभु ! आपने तपस्वी की पुकार  
 सर्वज्ञ पुरुष ! दुर्दशा आपसे छिपी नहीं  
 अन्तर्दृग् से जो आप जानते, वही सही !  
 हे देव-काल से परे विद्व-गूजित अनन्त !  
 भर दें अरण्य में आप मनुजता का वसन्त  
 हो प्राप्त विश्व की पुरयोत्तम-लीला-प्रमाद  
 भिट जाए मन से घोर निराशा का विषाद  
 वन-तपसी-मा गृह-तपसी निष्प्रिय बने नहीं  
 आन्ध्र-विनाश कभी प्राणों पर तने नहीं

उलझे विलासिता में न कभी उन्नत मानव  
 भौतिक समृद्धि के कारण नर न बने दानव  
 सतुलित भोगमय योग विश्व-आदर्श बने  
 सत्कर्म सदा ही सामाजिक उत्कर्ष बने  
 हे राम ! आपके चरणों में मन लगा रहे  
 चेतन मानव-जीवन हर म्थिनि में जगा रहे ।”

सुन अग्नि-वचन, श्री राम अधिक गभीर आज  
 अमुरों की चर्चा सुन कर मन में पीर आज  
 छिप कर भी छिप न रहा उनका आशोक-वदन  
 बिल्वराते अमृत-प्रदान प्रसन्न पद्मलोचन ।  
 अनभिज्ञ नहीं, अपियो से दिव्य अलौकिकता  
 दृष्ट आस्था से ही दृष्टि-मुग्ध आलोक-गता  
 निर्गुण का समुप-स्वरूप आज अज्ञात नहीं  
 ज्योतिष जल से विहीन जीवन-जराजात नहीं ।  
 आत्मा के मन्दिर में ही तो परमात्म-शलक  
 बाहर-भीतर दोनों में उसकी चमक-दमक  
 विश्वास-मुग्धा पीकर ही होती चित्त-मुद्धि,—  
 सतुलित नहीं होती विवेक के बिना युद्धि ।  
 इस समय राम ही अग्नि-भग, लक्ष्मण न अभी  
 मिलता ऐसा एकान्त ज्योतिमय कभी कभी  
 निज पर्णकुटी में मुनि ने मन की वही बात  
 है भक्ति-भरी उज्ज्वल आँखों से नहीं गत ।  
 बोले प्रभु—‘हे मुनिवर ! मैं तो दशरथनन्दन  
 चौदह वर्षों तक करना मुझे अरण्य-भ्रमण  
 अमुरों से अपनी रक्षा तो रगनी ही है  
 उससे भी मेरे सग अनुक, वैदेही हैं !  
 देखें, प्रवास में कितना क्या कर पाना है  
 देखें, मैं कहीं-कहीं दक्षिण में जाता हूँ  
 निर्धारित मेरे हित तो दण्डकवन ही है  
 वनवान-धर्म का सब ठ पितृवचन ही है ।



तापम के घर्म-ध्येय पर आघृत धनुष-बाण  
 दूंगा प्रवास मे कैसे में शक्तिम-प्रमाण !  
 पर, ऋषि-मुनि की रक्षा करना कर्त्तव्य परम  
 धर्मतः विश्व-सेवा ही तो उद्देश्य चरम  
 समुचित अवसर पर निश्चय ही कुछ सोचूँगा  
 खलने पर ही अपने खल को उत्तर दूँगा  
 हँ आशीर्वाद यही कि घर्म-निर्वाह करूँ  
 अति सक्कट मे ही धनु पर लक्षित तीर घरूँ !  
 कौशिक मुनि की आज्ञा मे धनुष उठाया था,—  
 अमुरो पर मैंने लोहित बाण चलाया था  
 पर, जहाँ असुर ही अनुर वहाँ हम दो भाई !  
 दानव-वर्चा सुनकर मन मे चिन्ना छाई  
 मेरी वन्दना आपने की हे मुनि महान !  
 उल्टी गंगा को देव, भुके हँ घर्म-प्राण  
 ऋषियो का सेवक राम स्वय, हे महागज !  
 सच कहता हूँ, शब्दों की मुनकर लगी लाज'

इस ओर राम का विनयशील सहृदय उत्तर,  
 मुनि-पत्नी अनुसूया उस ओर सहृपं मुखर  
 कुटिया मे जमने सीता का श्रृंगार किया,—  
 माता-समान ही वंदेही को प्यार किया !  
 पहनाया दिव्य वसन-आभूषण स्नेह-महित  
 पुत्री-जंसी ही जनयनन्दिनी आज मुदित  
 उसके मृगलोचन की पलकें मुँद-मुँद जाती  
 वचपन के प्यार-दुलारों की प्रिय मुग्धि आनी !  
 अनुसूया आज मुनयना-की रम मे विभोर  
 माता की ममता फूट चली है नभी ओर  
 विखरे केशों को ठीकठाक कर रही अभी  
 वह तैल-सिक्त सिर मे सेन्दुर भर रही अभी !  
 ले आई भर कर तुरन्त कठाँठी मे पानी  
 मुच देव रही जलदर्पण मे अब बन-रानी

दृग मे आनन्द-अथु, अधरो पर टिकी हँसी  
 श्रृंगारमयी आवृत्ति पलकों के बीच बसी !  
 हर्षित अनुसूया बोली—‘राजकुमारी हे !  
 हे जन्मदुःखारी ! रामचन्द्र की प्यारी हे !  
 हे सीते ! तू तो पूजनीय अतुलित नारी  
 चाँदनी-समान कीर्ति की तेरी उजियारी !  
 नर के समान नारी भी एक समान नहीं  
 नारी-समता का मिलना ठोस प्रमाण नहीं  
 उत्तम नारी ही पति की सेवा करती है,—  
 सुख को सम्हालती है, गृह-दुख को हरती है !  
 उत्तम नारी की बोली भी उत्तम होती  
 अपनी मिठास में वह मर्यादा को ढोती  
 चुप रहती है वह अधिक, बहुत बोलती नहीं  
 परनिन्दा की गठरी को वह खोलती नहीं  
 उत्तम नारी करती है उत्तम कर्म सदा  
 पालन करती वह मदाचार का धर्म सदा  
 लडती न किमीसे और न कभी शगडती है  
 उत्तम नारी ही आत्म-श्रेष्ठ से डरती है !  
 वह नहीं आलसी, वह न अधिक विश्राममयी  
 वह शील-सुशोभित सदा प्रसन्न, सदा विनयी-  
 प्रिय पतिव्रता गृह-नपस्विनी प्रतिपल उदार,  
 उत्तम नारी ही पाती पति से सदा प्यार !  
 ऐसी ही अर्द्धाङ्गिणी आत्म-सुख पाती है,—  
 मरने पर स्वर्ग-लोक में पूजी जाती है !  
 उत्तम नारी ही गृह को स्वर्ग बना देती—  
 सत्कर्मों से निज सुज्जनता विखरा देती !  
 सब विधि से धर्म बचा लेती उत्तम नारी  
 अपनी सुगन्ध फैला देती उत्तम नारी  
 उत्तम नारी से देश-प्रतिष्ठा बढ़ती है  
 गौरव-गिरि पर संयमित सम्पत्ता चढ़ती है !  
 होती है कुछ वाचाल अधिक, मध्यम नारी  
 वह अधिक सीचती है अपनी ही फुलवारी

होनी वह मृदुभाषिणी चतुरता के कारण  
 अपने मे नगा हुआ रहता है अपना मन ।  
 मजती अपने को अत्रि, काम भी करती है  
 विजली सी कभी-कभी वह बहुत दिखरती है  
 करती व्यतीत वह अधिक समय गप बग्न म  
 उतनी वह निपुण न होनी गृह-दुग्ध हरने में ।  
 पति में भी करती नोक-झोंक मध्यम नागे  
 बीनी बातें भूलनी तुरत वह बेचारी  
 होनी तुरन्त ठडी, तुरन्त गरमानी है  
 वह नुरत तमतमाती, तुरन्त सबुचानी है ।  
 आग भी लगाती है पर, उमें बुझानी है  
 हँसनी है अधिक, अत्रि आँसू दिखगती है  
 गैनी आँसुओं को देय, दया भी आनी है  
 रगडा-झगडा करके भी गने लगानी है ।  
 वह स्वय अधिक खानी भी, खूब विलाती भी  
 रोती ही केवड नहीं, महपं रगती भी  
 आगे ही रहती वह त्योहार मनाने में  
 पीछे न कभी वह सहानुभूति दिखान में ।  
 वह भेद बडा कर स्वय विभेद मिटाती है  
 धरमाती शब्द-कूल जब सम्मुख आती है  
 वह बहुत अधिक कोशहल स धरमानी है  
 यह तीर छोड कर कभी-कभी छिप जाती है ।  
 कटुता पसन्द करती न अधिक मध्यम नारी  
 बनती महिष्णु, आनी है जत्र उसकी वाणी  
 नीरम गृह-नाटक को वह मरम बनाती है  
 वह बार-बार मर कर भू पर ही आनी है ।  
 साधारण नारी सहनशील होती न कभी  
 वस, अभी तुरत मंत्री, तुरन्त धनुना अभी  
 उसकी बातें, इसके कानों तक पहुँचानी  
 चुपके-चुपके वह कपट-भाव्य-रम धरमानी !  
 विचित् दुख में भी बहुत जोर में चिगनी  
 छाती को पीट-पीट कर वह दुखडा गानी

अपनी कुरूपता आजीवन न ममज्ञ पाती  
 वह काँय-काँय करती आती—करती जाती !  
 कृत्रिम त्रन्दन-कोलाहल में लगता है मन  
 क्रोधावस्था में करती वह गर्जन-नर्जन  
 प्रतिकूल बात से तुरत फनफना उठनी वह  
 अनुकूल लाभ से तुरत झनझना उठनी वह !  
 पर-दुख से मन-ही-मन प्रसन्न होती रहती  
 पर-भुख की ईर्ष्या से आँखें रोती रहती  
 निल-मिल कर स्वयं विछुडती साधारण नारी  
 नित स्वतः टूट कर जुडती साधारण नारी  
 सेवा के बदले स्वार्थ-भाव उनके मन में  
 जो प्रेमहीन, माध्यं न उसके जीवन में  
 जैसे-तैसे वह अपनी नैया खेती है—  
 पति को वह सुख से अधिक दुख ही देती है !  
 उसके कारण ही होती गृह की शान्ति भंग,—  
 उठती रहती है नित्य कुटिलता की तरंग  
 उसमें कुबुद्धि ही अधिक, मुबुद्धि नहीं उतनी  
 रहती है वह सर्वदा शोध से तनी-तनी  
 भूकती-भूकनी गज्जा पर सो जाती वह  
 अपने ओछे विचार में ही खो जाती वह  
 ऐसी नारी दानवी रूप धारण करती  
 उनकी दुश्चिन्ता भीतर ही भीतर सड़ती !  
 दुख ही दुख पहुँचाती है मदा अधम नारी  
 उनके कारण पतझर बन जाती, फुटवारी  
 उनके आते ही उथल-पुथल मच जाता है  
 उसका मन अपने तन से भी टकराता है  
 दिनरात लडाई-झगड़ा ही वह करती है  
 वह क्रूर निहिनी नहीं किसी से डरती है  
 वह शीलहीन, कर्कशा काग-सी टकती है  
 जाती है वह जिन जगह, वही कुछ बचती है  
 उसके डर से कांपा करनी घर की घरती  
 उसके दर्शन करने में भी आँखें डरती

अवगुण ही अवगुण जिसमे, वही जघम नारी  
 साक्षात् राक्षसी त्रिवा-रूप मे बेचारी !  
 हँसती तो हिलने लगता है घर का छप्पर  
 रोनी तो श्रौणा का अन्तर करता थर-थर  
 वह आँधी-सी आनी, झझा-सी जाती है  
 सज्जनना ऐसी शोभा से घवराती है !  
 ऐसी उग्रा को नमस्कार मत्र करते हैं  
 ऐसी देवी से ऋषि-मुनिगण भी डरते हैं  
 पचम प्रकार की नारी अधमाधम होती  
 वह एर साय मुमकाती, हँसती औ' रोती  
 वह जहाँ-जहाँ जाती है, आग लगाती है,—  
 अनुपम लीला से विष की लहर उठानी है  
 अपनी इच्छा मे नरक लिए वह आनी है  
 मवरो दुख देने मे ही वह सुख पाती है !  
 ऐसी विकराल दशू से प्रति प्रवजाना है—  
 वह जीवन भर अकृलाता है, पछताता है  
 ऐसी नारी मी बार राक्षसी बनती है,—  
 मी बार मर्ष-विच्छू-भी यहाँ जनमती है !  
 मीने ! तू सर्वोत्तम नारी मत्र विधि मुन्दर  
 तू पनि-विपत्ति मे माय-माय ज्यो मिन्धु-रुहर  
 दृष्टान्त अनुठ तू अपनी धर्म-परीक्षा का  
 तू अमिट ज्योति-आदर्श विन्द-हित शिक्षा का  
 है देवि ! तुने जाना है अब भीषण वन मे  
 नारी-स्वभाव की क्या याद रमना मन मे  
 यात्रा मे विविध नारियाँ तुजे मिलेंगी ही  
 मिठने वाली आँखें तुझने कुछ देंगी ही !  
 नारी-दर्शन नून, तीन बार तू मुननाई  
 तेगी पावन निन्द-ना स्वय छटक आई  
 बटु मन्य-वचन मे कोई भी अत्युक्ति नही  
 अपगन्दो मे मेरी किंचित् अनुरक्ति नही  
 तात्पर्य कथन का यही कि दृष्टि मतकं रहे  
 सेरी मुर्धाग्ना वचनो का भी कष्ट सहे

नारी ही नारी को सदैव ज्वनाती है  
 अच्छी नारी अच्छी ही दान बनानी है  
 दुर्गुण अनेक रहने पर भी नारी महदय  
 सहृदयता के कारण ही जन्मे स्नेह-विनय  
 पापाणों पर भी हरित द्वज उग जाती है  
 सत्सग-प्रभा सात्विक निरण विचरानी है  
 हो जाती उग्रा नारी कभी पगिन्धिनियम  
 गृहकलह-वृष्टि में भी मूलना हृदय का न्न  
 सदनारी जब घापी का दान चरनी है,  
 उसकी गुण-भरिमा स्वयं मग्नि हो जाती है ।  
 मुन्दर गुण, उज्ज्वल चरित \* कीर्तिमय आभूषण  
 श्रीहीन नहीं गुणवती नारियो का जीवन  
 अपनी महानता के कारण प्रजिन नारी  
 अपनी सुगन्ध से ही होनी नुरभिन नारी ।  
 नर से नारी का, नारी ने नर का महत्व  
 है भिन्न नहीं दोनों का मिथिन प्रेम-नत्व ।  
 नारी में मुता-बधू-माना—तीना स्वप्न  
 गतिनील नारियाँ नहीं कभी भी अग्र हूय  
 हे राम-रमा ! हे भू-पुत्री ! हे दिव्य कान्ति  
 तेरे दर्शन से अनुसूया को मित्रि नान्ति  
 अध्यात्म पतिनी ! बारम्बार प्रणाम तुझे  
 वनवान-काल में हृदय-पुष्प दें राम तुझे  
 तेरी अनुपम शोभा से विश्व विभान्ति हो  
 तेरे चरित्र से नारी-जगत नुवान्ति हो  
 हे महाशक्ति ! तुझसे विनष्ट हो तम-भाया  
 प्रेरणा प्रदान करे जग को तेरी छाया ।'

सुन तपस्विनी अनुसूया का नकेत-वचन,  
 मर्यादा से बाहर न हुआ नीता का मन  
 इतना ही कहा कि 'हे माँ ! तेरा मग्ग स्नेह  
 कुछ बातों को सुन, देह हुई तत्क्षण विदेह ।'

उस ओर अग्नि की भक्ति देखकर राम मुदित  
 मुन कर असुरों की चर्चाएँ, वे हुए चकित  
 थ्रदा से सबको कर प्रणाम, चल पडे सभी  
 मैथिली राम-लक्ष्मण के बीच प्रसन्न अभी  
 दुर्गम बन-पर्वत-घाटी को कर पार-पार  
 इच्छित पढाव पर रुक-रुक कर प्रभु वार-वार,—  
 आगे बढ़ते ही गए दृश्य को देख-देख  
 सीता निहारती रही राम की चरण-रेख !  
 चलते-चलते वीहड दण्डकवन में प्रवेश  
 अब कहीं-कहीं ऋषि-दग्गा देख कर आत्म-क्लेश  
 मुनियों के आश्रम-अतिथि बने तीनों प्राणी  
 सुन कर प्रमुदित श्रीराम, तपस्वी की वाणी  
 अब और भयानक जमल, और भयानक पथ  
 सिंहों के गर्जन से बनयात्री का स्वागत  
 गज का भीषण चिन्धार, व्याघ्र-हुंकार कभी  
 निर्जन अरण्य में झंझा वारम्बार कभी !  
 सरसरा रहे हैं रग-विरगे सर्प उधर  
 सोए हैं भीमकाय अजगर निश्चिन्त उधर  
 जा रहा उधर दौड़ता हुआ वाराह भुण्ड  
 बिल्लरे है जहाँ-तहाँ भूतल पर मनुज-भुण्ड !  
 भय से सीता राम के वदन में सट जाती,—  
 अनुकूल दृश्य को देख पुन कुछ हट जाती  
 उठती-गिरती लहरो-सी कोमल मन की गति  
 जैसी सीता, वैसी ही उसकी कोमल मति !  
 आरण्यक अन्धकार में सहसा बोलाहल  
 दौड़ती हुई शोषित आँधी-सी नव हलधल  
 काँपते हुए पंखों की टूट रही डाली  
 देवने-देवते छाई अतिगम अंधियाली !  
 पर्वतानार राक्षस सम्मुख हो गया खडा  
 बादल-ना विद्युत्-दार बिखरा कर वह गरजा  
 भयभीत जानकी काँपी पत्तों के समान  
 यह देख, राम ने लिया हाथ में धनुष-बाण

पूछा राक्षस ने लक्ष्मण से—'रे ऋषिकुमार !  
निष्फल हो जाएगा निश्चय ही शर-प्रहार  
ये दोनों तेरे कौन ? कहां से आया तू ?  
इस रमणी को इस वन में कैसे लाया तू ?  
मैं हूँ विराघ राक्षस, तुम सबको खा लूंगा,—  
दो ही क्षण में यमपुरी तुम्हें पहुँचा दूंगा ।'

—इतना कह कर वह क्रूर असुर लपका तत्क्षण  
बोले भ्राता से साहसपूर्वक प्रिय लक्ष्मण  
'हे वीर बन्धु ! छोड़िए वाण—छोड़िए वाण  
दीजिए असुर को तुरत वीरता का प्रमाण  
यह दुष्ट अकारण ही हम सबको छेड़ रहा—  
अपनी माया से हमें अकारण घेर रहा ।'  
फँलाया अब विराघ ने अपना हाथ एक  
वह एक हाथ हो गया अचानक अब अनेक  
दो-तीन वृक्ष को उसने तुरत उखाड़ लिया  
राम ने असुर-इच्छा को सत्वर ताड़ लिया  
बस, एक वाण से ही उड़ने लग गए प्राण  
गूँजा उसकी चिल्लाहट से अब आसमान  
बोला विराघ—'हे देव ! पाप-परिणाम मिला  
मेरे जघन्य जीवन को आज विराम मिला !  
मानव था पहले मैं, परन्तु था क्रूर कृपण  
करता था अनुचित विधि से सचय केवल धन  
लूटता रहा जनगण को शत व्यापारों से  
ठगता था सबको मैं मिथ्या उद्गारों से  
कुछ सामाजिक नेताओं से थी साँठगाँठ  
हम सभी असुर बन गए भूमि पर साथ-साथ  
नेताओं ने मुझसे भी अधिक नुकर्म किया,—  
निज लाभ-लौभ के कारण सदा अधर्म किया !  
घोखा ही घोखा दिया उन्होंने शासन को,—  
छल-बल से प्राप्त किया मदमय पद-आसन को  
रच कर सुरत्व का स्वांग, असुरता फैलाई  
अत्याचारों के कारण दुख-बदली छाई ।



निर्घन घन गए और निर्घन, कुछ ही दिन मे  
 घनवानो को वस, घन ही घन, कुछ ही दिन मे  
 छा गया एक दिन ऊँच-नीच का भेद-भाव  
 घनहीन और घनवानो का फँला दुराव  
 हे देव ! स्वार्थ का फँस गया जब जटिल जाल,  
 अतिशय अधर्म से भुका धर्म का न्याय-भाल  
 नर-दानव ने ही किया विपमता का प्रचार  
 हो गई शिथिल नैतिकता की सास्कृतिक धार !  
 दोषी ने दुगुंण को ही सद्गुण मान लिया  
 भूठ को सत्य कह कर सबने मम्मान किया  
 वगुले बढ़ते ही गए हस घट गए हाय,  
 अत्यन्त कष्टकर उनके घडियाली उपाय  
 विद्या बलकिनी हुई, बुद्धि भी हुई मलिन  
 देखते-देखते व्याप्त घरातल पर दुर्दिन  
 पडित मूरख बन गया और मूरख पडित  
 सत्र विधि से होने लगे निरपराधी दण्डित !  
 बनते है पाप तिमिर से ही आसुरी प्राण  
 पापी के कारण हो जाता है मलिन ज्ञान  
 शोषण के कारण होता सदा विवेक-पतन  
 हैं साक्षी अत्याचारो के, अनगिन निर्घन !  
 आखेट खेलते घनी सदा निर्घनता का,—  
 शोषक पीता है स्वर्ण-रक्त नित जनता का  
 ऐसे घनवान बहुत ही कम जो दयावान  
 ऐसे कितने जन जो कि करें सम-सुख प्रदान ?  
 हे देव ! तुम्हारे शर से मेरी मृत्यु निकट  
 दण्डकारण्य मे रहते राक्षस विकट-विकट  
 अनगिन दनुजो में मनुजो-नी मोहक माया  
 क्षण मे प्रकाश, क्षण मे छिनरा जाती छाया !  
 लगता कि शरो मे नही, शक्ति तुममे ही है  
 प्रभु ! ज्योति-स्वरूप तुम्हारा, मात्र न देही है !  
 मेरे इस मरणशील मन मे नव परिवर्तन  
 है अभी अमुर ही पर, मुझमे चिन्मय चिन्तन

मारोगे सारे राक्षस को हे राम ! तुम्ही  
जो नहीं किसी ने किया, वरोगे काम तुम्ही  
मुनियो ने अन्तिम घड़ी राम का नाम लिया  
उनकी पुकार पर ही तुमने अभियान किया ?  
पर, राक्षस बड़े चतुर, चंचल, तम-शक्ति-सबल  
असुरो मे सबसे अधिक आज वैज्ञानिक ब्रह्म  
वे सुरा, सुन्दरी और स्वर्ण के अतुल घनी  
उनकी माया की छटा मेघ-नी घनी-घनी  
स्थल मे भी वे, जल मे भी वे, नभ मे भी वे  
हे राम ! आज तो वे ही वे—हैं वे ही वे !  
वे यन्त्र तन्त्र, भौतिक मन्त्रो के अधिकारी  
उनके अधीन सागर, पर्वत, जगल-झाडी  
वे जल को अनल, अनल को सग्ल बना सकते  
वे अम्बर से भी आयुध को बरसा सकते  
वे करते रहते कभी-कभी विस्फोट धोर  
उनके अन्तर्गत विश्व-समर-साधन अछोर  
उनके प्रधान सेनापति उनका अहकार  
सुनता है अन्तरिक्ष भी अब उनकी पुकार  
ग्रह-नक्षत्रो पर भी उनका एकाधिकार  
उनकी हलचल से हिलती धरती वार-वार  
वे कभी सूक्ष्म, वे कभी स्थूल, वे बहुत विपम  
देखकर उन्हें, हो सकता है मानव का भ्रम  
हे राम ! सम्हल कर तुम्हे अनुर से लडना है  
वन मे सतर्क होकर ही तुम्हे विचरना है !  
हैं काम-क्रोध औ' लीभ-मोह की सेनाएँ  
हैं कपट-अस्त्र-दास्यो मे कर्म-कुटिलताएँ  
वासनाचक्र का व्यूह बडा ही वृद्धि-जटिल  
अत्यधिक भोग-भावना प्रमत्त बनक-पकिल  
हे राम ! तुम्हारी यात्रा केवल स्थूल नहीं  
सात्त्विक विचरण वैदिकता के प्रतिकूल नहीं  
है तथ्यपूर्ण ऊपर से अब नीचे जाना  
सुर-असुर-रहस्यो को ऋषियो ने ही जाना